आचार्य चतुरसेन

चतुरसेन का सम्पूर्ण कहानी साहित्य

३

धरती और आसमान

चतुरसेन कहानी-साहित्य

[आ]चार्य चतुरसेन के कहानी-साहित्य को हिन्दी
[ऐति]हासिक महत्त्व प्राप्त है। उन्होंने साढ़े चार
[सौ] लगभग कहानियां लिखीं, जिनमें अधिकांश
[क]ला-वैशिष्ट्य के लिए अमर हो गईं।

[आ]चार्य चतुरसेन का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य
[पुस्]तकमाला के रूप में प्रकाशित किया जा रहा
[य]ह इस माला का तीसरा खंड है।

[शै]ली की दृष्टि से आचार्यजी का नाम हिन्दी के
[क]हानीकारों में आदर से लिया जाता है।
विभिन्न विषयों पर कहानियां लिखी हैं। विषय
[दृष्टि] से प्रस्तुत खण्ड की कहानियों को इस प्रकार
[विभाजि]त किया जा सकता है :

[...]लीन : पानवाली, बुलबुल हज़ार दास्तां,
फूलवालों की सैल

[...]लीन : अम्बपालिका, क्रीता, प्रतिदान

[...]तक : द्वन्द्व, पत्थर में अंकुर, विश्वास पर विश्वास

[...]तिक : सफेद कौआ, लम्बग्रीव, मुखबिर

[...]ी : मुहब्बत, अकस्मात्, ठकुरानी

[...]ान : फिर, प्रणयवध, टार्चलाइट

[...]धान : धरती और आसमान, नहीं

[नि]स्सन्देह यह पुस्तकमाला कहानी के पाठकों
[आ]लोचकों के लिए समान रूप से उपयोगी होगी।

४.००

चतुरसेन का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य—३
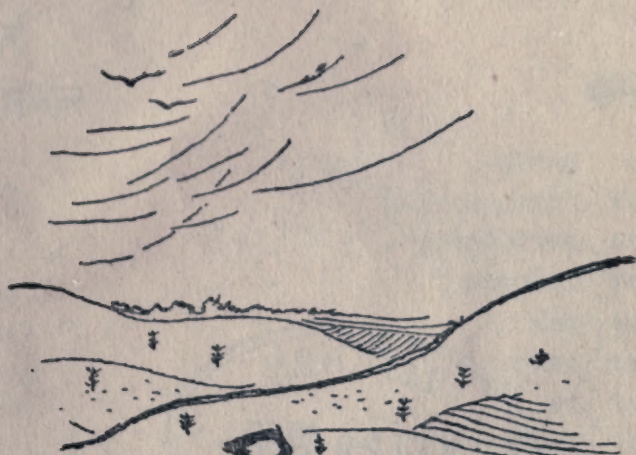
धरती और आसमान

आचार्य चतुरसेन

मूल्य	:	चार रुपये
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	भारत मुद्रणालय, शाहदरा, दिल्ली

धरती
और
आसमान

क्रम

प्रकाशकीय

आचार्य चतुरसेन का कहानी-साहित्य में जो विशिष्ट स्थान है उससे हिन्दी के पाठक भली भांति परिचित हैं। उन्होंने १६०६ या १६०७ से लिखना आरंभ किया था और अन्त तक लिखते रहे। आधी सदी के अपने दीर्घकाल में उन्होंने लगभग साढ़े चार सौ कहानियां लिखीं, जिनमें अधिकांश अपने कला-वैशिष्ट्य के लिए सुविख्यात हो गईं। शैली की दृष्टि से तो आपका नाम हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में आदर से लिया जाता है।

आचार्यजी की कहानियों के दो-तीन संग्रह बहुत पहले निकले थे, परन्तु उनका सारा कहानी-साहित्य एक जगह संकलित नहीं हो पाया था। यह एक बहुत बड़ा अभाव था, जिसकी पूर्ति के लिए आचार्यजी के ही जीवन-काल में उनके समग्र कहानी-साहित्य को पुस्तक-माला के रूप में प्रकाशित करने की एक रूपरेखा हमने बनाई थी। इतना ही नहीं, कहानियों का संकलन-सम्पादन भी उनकी देख-रेख में शुरू हो गया था और इस माला के लिए उन्होंने स्वयं 'कहानीकार का वक्तव्य' भी लिखा था (जो इस पुस्तकमाला के पहले खण्ड में दिया गया है), किन्तु दुर्भाग्य-वश इस बीच उनका देहावसान हो गया।

सम्प्रति, हमारे सामने पहली आवश्यकता यह थी कि लेखक का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य, प्रामाणिक रूप से, एक जगह उपलब्ध हो सके, जिससे हिन्दी-कथा-साहित्य के पाठक आचार्यजी की कहानी-कला का रसास्वादन और यथेष्ट अध्ययन कर सकें। इसके लिए आचार्यजी के निर्देशों के अनुसार, उनके छोटे भाई श्री चन्द्र-सेनजी ने अथक परिश्रम से इस महान लेखक की, पत्र-पत्रिकाओं व पांडुलिपियों में बिखरी हुई सामग्री को संकलित तथा सम्पादित किया है, जिसे हम क्रमशः पुस्तक-माला के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं।

हरएक कहानी के ऊपर संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है, आशा है इससे पाठकों को कहानी की पृष्ठभूमि जानने में सुविधा होगी।

आचार्यजी की कहानियों को साधारणतया इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—मुगल-कालीन, बौद्ध-कालीन, ऐतिहासिक, राजपूती, सामाजिक, समस्या-प्रधान, राजनीतिक, वीरता-प्रधान, भाव-प्रधान, प्रेम-प्रधान, कौतुक-प्रधान और पारिवारिक।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक-माला हिंदी-साहित्य के एक अभाव की पूरक होगी एवं विद्वानों, कथा-साहित्य के विद्यार्थियों तथा रस के इच्छुक पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

पानवाली

पानवाली लेखक की प्रसिद्ध कहानी है। मदिरा और नैशोत्सवों में लखनऊ का तख्त डूब गया। मुगल-काल की सबसे श्रेष्ठ कहानियों में इस कहानी की गणना है।

लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में इस समय जहां घंटाघर है, वहां अब से सौ वर्ष पूर्व एक छोटी-सी टूटी हुई मस्जिद थी, जो भूतोंवाली मस्जिद कहलाती थी, और अब जहां बाला जी का मंदिर है, वहां एक छोटा-सा कच्चा एकमंजिला घर था। चारों तरफ न आज की-सी बहार थी न बिजली की चमक, न बढ़िया सड़कें न मोटर, न मेम साहबाओं का इतना जमघट।

लखनऊ के आखिरी बादशाह वाजिदअली शाह की अमलदारी थी। ऐयाशी और ठाट-बाट के दौरदौरे थे। मगर इस मुहल्ले में रौनक न थी। उस घर में एक टूटी-सी कोठरी में एक बुढ़िया—मनहूस सूरत, सन के समान बालों को बखेरे—बैठी किसीकी प्रतीक्षा कर रही थी। घर में एक दिया धीमी आभा से टिमटिमा रहा था। रात के दस बज गए थे, जाड़ों के दिन थे ; सभी लोग अपने-अपने घरों में रज़ाइयों में मुंह लपेटे पड़े थे। गली और सड़क पर सन्नाटा था।

धीरे-धीरे बढ़िया वस्त्रों से आच्छादित एक पालकी इस टूटे घर के द्वार पर चुपचाप आ लगी, और काले वस्त्रों से आच्छादित एक स्त्री-मूर्ति ने पालकी से बाहर निकलकर धीरे से द्वार पर थपकी दी। तत्काल द्वार खुला और स्त्री ने घर में प्रवेश किया।

बुढ़िया ने कहा—खैर तो है ?

'सब ठीक है ; क्या मौलवी साहब मौके पर मौजूद हैं ?'

'कब के इंतज़ारी कर रहे हैं, कुछ ज़्यादा जांफिशानी तो नहीं उठानी पड़ी ?'

'जांफिशानी ? बेखुश, जान पर खेलकर लाई हूं। करती भी क्या ? गर्दन थोड़े ही उतरवानी थी।'

'होश में तो है ?'

'अभी बेहोश है। किसी तरह राज़ी न होती थी। मजबूरन यह किया गया।'

'तब चलो।'

बुढ़िया उठी। दोनों पालकी में जा बैठीं। पालकी संकेत पर चलकर मस्जिद की सीढ़ियां चढ़ती हुई भीतर चली गई।

मस्जिद में सन्नाटा और अंधकार था, मानो वहां कोई जीवित पुरुष नहीं है। पालकी के आरोहियों को इसकी परवाह न थी। वे पालकी को सीधे मस्जिद के भीतरी भाग के एक कक्ष में ले गए। यहां पालकी रखी। बुढ़िया ने बाहर आकर बगल की कोठरी में प्रवेश किया। वहां एक आदमी सिर से पैर तक चादर ओढ़े सो रहा था। बुढ़िया ने कहा—उठिए मौलवी साहब, मुरादों को तावीज़ इनायत कीजिए। क्या अभी बुखार नहीं उतरा?

'अभी तो चढ़ा ही है', कहकर मौलवी साहब उठ बैठे। बुढ़िया ने कुछ कान में कहा। मौलवी साहब सफेद दाढ़ी हिलाकर बोले—समझा गया, कुछ खटका नहीं है। हैदर खोजा मौके पर रोशनी लिए हाज़िर मिलेगा। मगर तुम लोग बेहोशी की हालत में उसे किस तरह……

'आप बेफिक्र रहें। बस, सुरंग की चाभी इनायत करें।'

मौलवी साहब ने उठकर मस्जिद के बाईं ओर के चबूतरे के पीछेवाले भाग में जाकर एक कब्र का पत्थर किसी तरकीब से हटा दिया। वहां सीढ़ियां निकल आईं। बुढ़िया उसी तंग तहखाने के रास्ते, उसी काले वस्त्र से आच्छादित लम्बी स्त्री के सहारे, एक बेहोश स्त्री को नीचे उतारने लगी। उनके चले आने पर मौलवी साहब ने गौर से इधर-उधर देखा, और फिर किसी गुप्त तरकीब से तहखाने का द्वार बंद कर दिया। तहखाना फिर कब्र बन गया।

चार हज़ार फानूसों में काफूरी बत्तियां जल रही थीं, और कमरे की दीवार गुलाबी साटन के पर्दों से छिप रही थी। फर्श पर ईरानी कालीन बिछा था, जिसपर निहायत नफीस और खुशरंग काम बना हुआ था। कमरा खूब लम्बा-चौड़ा था। उसमें तरह-तरह के ताज़े फूलों के गुलदस्ते सजे हुए थे, और हिना की तेज़ महक से कमरा महक रहा था। कमरे के एक बाज़ू में मखमल का बालिश्त-भर ऊंचा गद्दा बिछा था, जिसपर कारचोबी का उभरा हुआ

बहुत ही खुशनुमा काम था। उसपर एक बड़ी-सी मसनद लगी थी, जिसपर सुनहरी खंभों पर मोती की झालर का चंदोवा तना था।

मसनद पर एक बलिष्ठ पुरुष उत्सुकता से, किंतु अलसाया बैठा था। इसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। इसका मोती के समान उज्ज्वल रंग, कामदेव को मात करनेवाला प्रदीप्त सौंदर्य, झब्बेदार मूंछें, रसभरी आंखें और मदिरा से प्रस्फुरित होंठ कुछ और ही समा बना रहे थे। सामने पानदान में सुनहरी गिलौरियां भरी थीं। इत्रदान में शीशियां लुढ़क रही थीं। शराब की प्याली और सुराही क्षण-क्षण पर खाली हो रही थी। वह सुगंधित मदिरा मानो उसके उज्ज्वल रंग पर सुनहरी निखार ला रही थी। उसके कंठ में पन्ने का एक बड़ा-सा कंठा पड़ा था, और उंगलियों में हीरे की अंगूठियां बिजली की तरह दमक रही थीं। यही लाखों में दर्शनीय पुरुष लखनऊ के प्रख्यात नवाब वाजिदअली शाह थे।

कमरे में कोई न था। वे बड़ी आतुरता से किसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यह आतुरता क्षण-क्षण पर बढ़ रही थी। एकाएक एक खटका हुआ। बादशाह ने ताली बजाई, और वही लंबी स्त्री-मूर्ति, सिर से पैर तक काले वस्त्रों से शरीर को लपेटे, मानो दीवार फाड़कर आ उपस्थित हुई।

'ओह मेरी गबरू! तुमने तो इंतज़ारी ही में मार डाला! क्या गिलौरियां लाई हो?'

'मैं हुज़ूर पर कुर्बान!' इतना कहकर उसने वह काला लबादा उतार डाला। उफ्, ग़ज़ब! उस काले आवेष्टन में मानो सूर्य का तेज छिप रहा था। कमरा चमक उठा। बहुत बढ़िया चमकीले विलायती साटन की पोशाक पहने एक सौंदर्य की प्रतिमा इस तरह निकल आई, जैसे राख के ढेर में से अंगार। इस अग्नि-सौंदर्य की रूप-रेखा कैसे बयान की जाए? इस अंगरेज़ी राज्य और अंगरेज़ी सभ्यता में जहां क्षणभर चमककर बादलों में विलीन हो जानेवाली बिजली सड़क पर अयाचित ढेरों प्रकाश बखेरती रहती है, इस रूप-ज्वाला की उपमा कहां ढूंढ़ी जाए? उस अंधकारमय रात्रि में यदि उसे खड़ा कर दिया जाए, तो वह कसौटी पर स्वर्ण-रेखा की तरह दिप उठे; और यदि वह दिन के ज्वलंत प्रकाश में खड़ी कर दी जाए, तो उसे देखने का साहस कौन करे? किन आंखों में इतना तेज है?

उस सुगंधित और मधुर प्रकाश में मदिरा-रंजित नेत्रों से उस रूप-ज्वाला को देखते ही वाजिदअली की वासना भड़क उठी। उन्होंने कहा—रूपा, ज़रा नज़दीक आओ। एक प्याला शीराज़ी और अपनी लगाई हुई अंबरी पान की बीड़ियां दो तो। तुमने तो तरसा-तरसाकर ही मार डाला।

रूपा आगे बढ़ी, सुराही से शराब उंडेली, और ज़मीन में घुटने टेककर आगे बढ़ा दी। इसके बाद उसने चार सोने के वर्क़-लपेटी बीड़ियां निकालकर बादशाह के सामने पेश कीं, और दस्तबस्ता अर्ज़ की—हुज़ूर की खिदमत में लौंडी वह तोहफा ले आई है।

वाजिदअली शाह की बाछें खिल गईं। उन्होंने रूपा को घूरकर कहा—वाह! तब तो आज······रूपा ने संकेत किया। हैदर खोजा उस फूल-सी मुरझाई कुसुम-कली को फूल की तरह हाथों पर उठाकर, पान-गिलौरी की तश्तरी की तरह, बादशाह के रूबरू कालीन पर डाल गया। रूपा ने बांकी अदा से कहा—हुज़ूर को आदाब!—और चल दी।

एक चौदह वर्ष की भयभीत, मूर्च्छित, असहाय, कुमारी बालिका अकस्मात् आंख खुलने पर सम्मुख शाही ठाठ से सजे हुए महल और दैत्य के समान नर-पशु को पाप-वासना से प्रमत्त देखकर क्या समझेगी? कौन अब इस भयानक क्षण की कल्पना करे। पर वही क्षण होश में आते ही उस बालिका के सामने आया। वह एकदम चीत्कार करके फिर से बेहोश हो गई। पर इस बार शीघ्र ही उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। एक अतर्क्य साहस, जो ऐसी अवस्था में प्रत्येक जीवित प्राणी में हो जाता है, उस बालिका के शरीर में भी उदय हो आया। वह सिमटकर बैठ गई, और पागल की तरह चारों तरफ एक दृष्टि डालकर एकटक उस मत्त पुरुष की ओर देखने लगी।

उस भयानक क्षण में भी उस विशाल पुरुष का सौंदर्य और प्रभा देखकर उसे कुछ साहस हुआ। वह बोली तो नहीं, पर कुछ स्वस्थ होने लगी।

नवाब ज़ोर से हंस दिए। उन्होंने गले का वह बहुमूल्य कंठा उतारकर बालिका की ओर फेंक दिया। इसके बाद वे नेत्रों के तीर निरंतर फेंकते बैठे रहे।

बालिका ने कंठा देखा भी नहीं, छुआ भी नहीं। वह वैसी ही सिकुड़ी हुई,

वैसी ही निर्निमेष दृष्टि से भयभीत हुई नवाब को देखती रही।

नवाब ने दस्तक दी। दो बांदियां दस्तबस्ता आ हाज़िर हुईं। नवाब ने हुक्म दिया, इसे ग़ुस्ल कराकर और सब्ज़परी बनाकर हाज़िर करो। उस पुरुष-पाषाण की अपेक्षा स्त्रियों का संसर्ग गनीमत जानकर बालिका मंत्रमुग्ध-सी उठकर उनके साथ चली गई।

इसी समय एक खोजे ने आकर अर्ज़ की—खुदावंद! रेज़ीडेंट उटरम साहब बहादुर बड़ी देर से हाज़िर हैं।

'उनसे कह दो, अभी मुलाकात नहीं होगी।'

'आलीजाह! कलकत्ता से एक ज़रूरी······'

'दूर हो मुर्दार।'

खोजा चला गया।

लखनऊ के खास चौक-बाज़ार की बहार देखने योग्य थी। शाम हो चली थी, और छिड़काव हो गया था। इक्कों और बहलियों, पालकियों और घोड़ों का अजीब जमघट था। आज तो उजाड़ अमीनाबाद का रंग ही कुछ और है। तब यही रौनक चौक को प्राप्त थी। बीच चौक में रूपा की पानों की दूकान थी। फानूसों और रंगीन झाड़ों से जगमगाती गुलाबी रोशनी के बीच, स्वच्छ बोतल में मदिरा की तरह, रूपा दूकान पर बैठी थी। दो निहायत हसीन लौंडियां पान की गिलौरियां बनाकर उनमें सोने के वर्क लपेट रही थीं। बीच-बीच में अठखेलियां भी कर रही थीं। आजकल के कलकत्ता-दिल्ली के रंगमंचों पर भी ऐसा मोहक और आकर्षक दृश्य नहीं देख पड़ता, जैसा उस समय रूपा की दूकान पर था। ग्राहकों की भीड़ का पार न था। रूपा खास-खास ग्राहकों का स्वागत कर पान दे रही थी। बदले में खनाखन अशर्फियों से उसकी गंगा-जमनी काम की तश्तरी भर रही थी। वे अशर्फियां रूपा की एक अदा, एक मुसकराहट—केवल एक कटाक्ष का मोल थीं। पान की गिलौरियां तो लोगों को घाते में पड़ती थीं। एक नाज़ुकअंदाज़ नवाबज़ादे तामजाम में बैठे अपने मुसाहबों और कहारों के झुरमुट के साथ आए और रूपा की दूकान पर तामजाम रोका। रूपा ने सलाम करके कहा—मैं सदके शाहज़ादा साहब, ज़री बांदी की एक गिलौरी कुबूल फर्मावें।—रूपा ने लौंडी की तरफ इशारा किया। लौंडी सहमती हुई, सोने की

रकाबी में पांच-सात गिलौरियां लेकर तामजाम तक गई। शाहज़ादे ने मुसकराकर दो गिलौरियां उठाईं, और एक मुट्ठी अशर्फियां तश्तरी में डालकर आगे बढ़े। एक खां साहब बालों में मेंहदी लगाए, दिल्ली के वसली के जूते पहने, तनज़ेब की चपकन कसे, सिर पर लैसदार ऊंची टोपी लगाए आए। रूपा ने बड़े तपाक से कहा—अख्खा खां साहब! आज तो हुजूर रास्ता भूल गए! अरे कोई है, आपको बैठने को जगह दे! अरी, गिलौरियां तो लाओ।

खां साहब रूपा के रूप की तरह चुपचाप गिलौरियों के रस का घूंट पीने लगे। थोड़ी देर में एक अधेड़ मुसलमान अमीरज़ादे की शकल में आए। उन्हें देखते ही रूपा ने कहा—अरे हुजूर तशरीफ ला रहे हैं! मेरे सरकार! आप तो ईद के चांद हो गए। कहिए, खैराफियत है? अरी! मिर्ज़ा साहब को गिलौरियां दीं?—तश्तरी में खनाखन हो रही थी, और रूपा का रूप और पान की हाट खूब गरमा रही थी। ज्यों-ज्यों अंधकार बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों रूपा पर रूप की दुपहरी चढ़ रही थी। धीरे-धीरे एक पहर रात बीत गई। ग्राहकों की भीड़ कुछ कम हुई। रूपा अब सिर्फ कुछ चुने हुए प्रेमी ग्राहकों से घुल-घुलकर बातें कर रही थी। धीरे-धीरे एक अजनबी आदमी दूकान पर आकर खड़ा हो गया। रूपा ने अप्रतिभ होकर पूछा:

'आपको क्या चाहिए?'

'आपके पास क्या-क्या मिलता है?'

'बहुत-सी चीज़ें। क्या पान खाइएगा?'

'क्या हर्ज है।'

रूपा के संकेत से दासी बालिका ने पान की तश्तरी अजनबी के आगे धर दी। दो बीड़ियां हाथ में लेते हुए उसने कहा—इनकी कीमत क्या है बी साहबा!

'जो कुछ जनाब दे सकें!'

'यह बात है? तब ठीक, जो कुछ मैं लेना चाहूं वह लूंगा भी!' अजनबी हंसा नहीं। उसने भेदभरी दृष्टि से रूपा को देखा।

रूपा की भृकुटी ज़रा टेढ़ी पड़ी, और वह एक बार अजनबी को तीव्र दृष्टि से देखकर फिर अपने मित्रों के साथ बातचीत में लग गई। पर बातचीत का रंग जमा नहीं। धीरे-धीरे मित्रगण उठ गए। रूपा ने एकांत पाकर कहा:

'क्या हुज़ूर का मुझसे कोई खास काम है?'

'मेरा तो नहीं, मगर कंपनी बहादुर का है।'

रूपा कांप उठी। वह बोली—कंपनी बहादुर का क्या हुक्म है ?

'भीतर चलो तो कहा जाए।'

'मगर माफ कीजिए—आपपर यकीन कैसे···'

'ओह ! समझ गया। बड़े साहब की यह चीज तो तुम शायद पहचानती ही होगी ?'

यह कहकर उन्होंने एक अंगूठी रूपा को दूर से दिखा दी।

'समझ गई ! आप अन्दर तशरीफ लाइए।'

रूपा ने एक दासी को अपने स्थान पर बैठाकर अजनबी के साथ दूकान के भीतरी कक्ष में प्रवेश किया।

दोनों व्यक्तियों में क्या-क्या बातें हुईं, यह तो हम नहीं जानते; मगर उसके ठीक तीन घंटे बाद दो व्यक्ति काला लबादा ओढ़े दूकान से निकले, और किनारे लगी हुई पालकी में बैठ गए। पालकी धीरे-धीरे उसी भूतोंवाली मस्जिद में पहुंची। उसी प्रकार मौलवी ने कब्र का पत्थर हटाया, और एक मूर्ति ने कब्र के तहखाने में प्रवेश किया। दूसरे व्यक्ति ने एकाएक मौलवी को पटककर मुश्कें बांध लीं, और एक संकेत किया। क्षणभर में पचास सुसज्जित काली-काली मूर्तियां आ खड़ी हुईं और बिना एक शब्द मुंह से निकाले चुपचाप कब्र के अन्दर उतर गईं।

अब फिर चलिए अनंगदेव के उसी रंग-मंदिर में। सुख-साधनों से भरपूर वही कक्ष आज सजावट खतम कर गया था। सहस्रों उल्कापात की तरह रंगीन हांडियां, बिल्लौरी फानूस और हज़ार झाड़ सब जल रहे थे। तत्परता से, किन्तु नीरव बांदियां और ग़ुलाम दौड़-धूप कर रहे थे। अनगिनत रमणियां अपने मद-भरे होंठों की प्यालियों में भाव की मदिरा उंडेल रही थीं। उन सुरीले रागों की बौछारों में बैठे बादशाह वाजिदअली शाह शराबोर हो रहे थे। उस गायनोन्माद में मालूम होता था, कमरे के जड़ पदार्थ भी मतवाले होकर नाच उठेंगे। नाचनेवालियों के ठुमके और नूपुर की ध्वनि सोते हुए यौवन से ठोकर मारकर कहती थी—उठ, उठ, ओ मतवाले, उठ !—उन नर्तकियों के बढ़िया चिकनदोज़ी

के सुवासित दुपट्टों से निकली हुई सुगन्ध उनके नृत्य-वेग से विचलित वायु के साथ घुल-मिलकर गदर मचा रही थी। पर सामने का सुनहरी फव्वारा, जो स्थिर ताल पर बीस हाथ ऊपर फेंककर रंगीन जलबिंदु-राशियों से हाथा-पाई कर रहा था, देखकर कलेजा बिना उछले कैसे रह सकता था।

उसी मसनद पर बादशाह वाजिदअली शाह बैठे थे। एक गंगा-जमनी काम का अलबेला वहां रखा था, जिसकी खमीरी मुश्की तम्बाकू जलकर एक अनोखी सुगन्ध फैला रही थी। चारों तरफ सुन्दरियों का झुरमुट उन्हें घेरकर बैठा था। सभी अधनंगी, उन्मत्त और निर्लज्ज हो रही थीं। पास ही सुराही और प्यालियां रखी थीं, और बारी-बारी से वे उन दुर्लभ होंठों को चूम रही थीं। आधा मद पी-पीकर वे सुन्दरियां उन प्यालियों को बादशाह के होंठों में लगा देती थीं। वे आंखें बन्द करके उन्हें पी जाते थे। कुछ सुंदरियां पान लगा रही थीं, कुछ अलबेले की निगाली पकड़े हुई थीं। दो सुन्दरियां दोनों तरफ पीकदान लिए खड़ी थीं, जिनमें बादशाह कभी-कभी पीक गिरा देते थे।

इस उल्लसित आमोद के बीचोबीच एक मुरझाया हुआ पुष्प। कुचली हुई पान की गिलौरी। वही बालिका, बहुमूल्य हीरे-खचित वस्त्र पहने, बादशाह के बिल्कुल अंक में लगभग मूर्च्छित और अस्त-व्यस्त पड़ी थी। रह-रहकर शराब की प्याली उसके मुख से लग रही थी, और वह खाली कर रही थी। एक निर्जीव दुशाले की तरह बादशाह उसे अपने बदन से सटाए मानो अपनी तमाम इन्द्रियों को एक ही रस में शराबोर कर रहे थे। गम्भीर आधी रात बीत रही थी। सहसा इसी आनन्द-वर्षा में बिजली गिरी। कक्ष के उसी गुप्त द्वार को विदीर्ण कर क्षणभर में वही रूपा, काले आवरण से नख-शिख ढके, निकल आई। दूसरे क्षण में एक और मूर्ति वैसे ही आवेष्टन में गुप्त बाहर निकल आई। क्षणभर बाद दोनों ने अपने आवेष्टन उतार फेंके। वही अग्नि-शिखा ज्वलन्त रूपा और उसके साथ गौरांग कर्नल उटरम!

नर्तकियों ने एकदम नाचना-गाना रोक दिया। बांदियां शराब की प्यालियां लिए काठ की पुतली की तरह खड़ी की खड़ी रह गईं। केवल फव्वारा ज्यों का त्यों आनन्द से उछल रहा था। बादशाह यद्यपि बिल्कुल बदहवास थे, मगर यह सब देख वे मानो आधे उठकर बोले—ओह! रूपा—दिलरुबा! तुम और ऐं—मेरे दोस्त कर्नल···इस वक्त? यह क्या माजरा है!

आगे बढ़कर और अपनी चुस्त पोशाक ठीक करते हुए तलवार की मूठ पर हाथ रख कर्नल उटरम ने कहा—कल आलीजाह की बन्दगी में हाज़िर हुआ था; मगर···

'ओफ्, मगर···इस वक्त इस रास्ते से ? ऐं, माजरा क्या है ! अच्छा बैठो, हां, ज़ोहरा, एक प्याला···मेरे दोस्त कर्नल के···'

'माफ कीजिए हुज़ूर ! इस वक्त मैं आनरेबल कम्पनी सरकार के एक काम से आपकी खिदमत में हाज़िर हुआ हूं।'

'कम्पनी सरकार का काम ? वह काम क्या है ?' बैठते हुए बादशाह ने कहा।

'मैं तखलिए में अर्ज़ किया चाहता हूं।'

'तखलिया ! अच्छा, अच्छा, ज़ोहरा ! ओ कादिर !'

धीरे-धीरे रूपा को छोड़कर सभी बाहर निकल गईं। उस सौन्दर्य-स्वप्न में अवशिष्ट रह गई अकेली रूपा। रूपा को लक्ष्य करके बादशाह ने कहा—यह तो गैर नहीं। रूपा ! दिलरुबा ! एक प्याला अपने हाथों से दो तो।—रूपा ने सुराही से शराब उंडेल लबालब प्याला भरकर बादशाह के होंठों से लगा दिया। हाय ! लखनऊ की नवाबी का वही अन्तिम प्याला था। उसे बादशाह ने आंखें बन्द कर पीकर कहा—वाह प्यारी !···हां, अब कहो वह बात ! मेरे दोस्त···

'हुज़ूर को ज़रा रेज़ीडेंसी तक चलना पड़ेगा।'

बादशाह ने उछलकर कहा—ऐं, यह कैसी बात ! रेज़ीडेंसी तक मुझे ?

'जहांपनाह, मैं मजबूर हूं, काम ऐसा ही है।'

'इसका मतलब ?'

'मैं अर्ज़ नहीं कर सकता। कल मैं यही तो अर्ज़ करने हाज़िर हुआ था।'

'गैरमुमकिन ! गैरमुमकिन !' बादशाह गुस्से से होंठ काटकर उठे और अपने हाथ से सुराही से उंडेलकर तीन-चार प्याले शराब पी गए। धीरे-धीरे उसी दीवार से एक-एक करके चालीस गोरे सैनिक, संगीनें और किर्चें सजाए, कक्ष में घुस आए।

बादशाह देखकर बोले—खुदा की कसम, यह तो दगा है ! कादिर !

'जहांपनाह अगर खुशी से मेरी अर्ज़ी कुबूल न करेंगे, तो खून-खराबी

होगी। कम्पनी बहादुर के गोरों ने महल घेर लिया है। अर्ज़ यही है कि सर-कार चुपचाप चले चलें।'

बादशाह धम से बैठ गए। मालूम होता है, क्षणभर के लिए उनका नशा उतर गया। उन्होंने कहा—तुम तब क्या मेरे दुश्मन होकर मुझे कैद करने आए हो?

'मैं हुज़ूर का दोस्त, हर तरह हुज़ूर के आराम और फरहत का खयाल रखता हूं, और हमेशा रखूंगा।'

बादशाह ने रूपा की ओर देखकर कहा—रूपा! रूपा! यह क्या माजरा है? तुम भी क्या इस मामले में हो? एक प्याला—मगर नहीं, अब नहीं, अच्छा सब साफ-साफ सच कहो! कर्नल···मेरे दोस्त···नहीं-नहीं, अच्छा कर्नल उटरम! सब खुलासावार बयान करो।

'सरकार, ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता। कंपनी बहादुर का खास परवाना लेकर खुद गवर्नर-जनरल के अंडर सेक्रेटरी तशरीफ लाए हैं, वे आलीजाह से कुछ मश्वरा किया चाहते हैं।'

'मगर यहां।'

'यह नामुमकिन है।'

बादशाह ने कर्नल की तरफ देखा। वह तना खड़ा था, और उसका हाथ तलवार की मूठ पर था।

'समझ गया, सब समझ गया।' यह कहकर बादशाह कुछ देर हाथों से आंखें ढांपकर बैठ गए। कदाचित् उनकी सुन्दर रसभरी आंखों में आंसू भर आए।

रूपा ने पास आकर कहा—मेरे खुदावंद, बांदी···

'हट जा ऐ नमकहराम रज़ील, बाज़ारू औरत!'

बादशाह ने यह कहकर उसे एक लात लगाई, और कहा—तब चलो! मैं चलता हूं। खुदा हाफिज़!

पहले बादशाह, पीछे कर्नल उटरम, उसके पीछे रूपा और सबके अन्त में एक-एक करके सिपाही उसी दरार में विलीन हो गए। महल में किसीको कुछ मालूम न था। वह मूर्तिमान संगीत, वह उमड़ता हुआ आनन्द-समुद्र सदा के लिए मानो किसी जादूगर ने निर्जीव कर दिया।

कलकत्ता के एक उजाड़-से भाग में, एक बहुत विशाल मकान में, वाजिद-अली शाह नज़रबन्द थे। ठाठ लगभग वही था, सैकड़ों दासियां, बांदियां और वेश्याएं भरी हुई थीं, पर वह लखनऊ का रंग कहां!

खाना खाने का वक्त हुआ, और जब दस्तरखान पर खाना चुना गया, तो बादशाह ने चख-चखकर फेंक दिया। अंगरेज़ अफसर ने घबराकर पूछा—खाने में क्या नुक्स है?

जवाब दिया गया—नमक खराब है।

'नवाब कैसा नमक खाते हैं?'

'एक मन का डला रखकर उसपर पानी की धार छोड़ी जाती है। जब घुलते-घुलते छोटा-सा टुकड़ा रह जाता है, तब बादशाह के खाने में वह नमक इस्तेमाल होता है।'

अंगरेज़ अधिकारी मुस्कराता हुआ चला गया। क्यों? ओह! सब लोगों के समझने के योग्य यह भेद नहीं।

उसी रस-रंग की दीवारों के भीतर अब सरकारी दफ्तर खुल गए हैं, और वह अमर कैसरबाग मानो रंडुए की तरह खड़ा उस रसीली रात की याद में सिर धुन रहा है।

बुलबुल हज़ारदास्तान

'बुलबुल हजारदास्तान' कहानी उर्दू लेखकों के लिखे तथ्यों पर आधारित है। इसमें मुगलों के अंतिम चिराग के गुल होने की दर्दभरी दास्तान है।

ठीक साढ़े तीन बजे सारी दिल्ली सो रही थी। लालकिले के बारूदखाने की ऊपरी मंज़िल में गंगा-जमनी पिंजरे के भीतर से, जिसपर कारचोबी की वस्तनी चढ़ी थी, बुलबुल हज़ारदास्तान ने अपनी कूक लगाई। रात के सन्नाटे में उस सुरीले पक्षी का यह प्रकृत राग रात की विदाई का सूचक था। कूक सुनते ही बहराम खां गोलन्दाज़ कल्मा पढ़ता हुआ उठ बैठा और तोप पर बत्ती दी। मोती मस्जिद में अजान का शब्द हुआ। चप्पी-मुक्कीवालियां शाही मसहरी पर आ हाजिर हुईं और धीरे-धीरे बादशाह के पांव दबाने लगीं। बादशाह बहादुरशाह 'ज़फ़र' की नींद खुली। वह तुरन्त उठ खड़े हुए, नित्यकृत्य से निपटे और मस्जिद में आ नमाज़ में सम्मिलित हुए। सबके साथ नमाज़ पढ़ी और फिर वज़ीफ़ा पढ़ने लगे।

सूर्योदय के साथ ही वे मस्जिद से निकले। चारों ओर मुजरा करनेवाले खड़े थे। दरवाज़े पर पहुंचते ही हाथ में सुनहरा बल्लम लिए जसोलिनी ने आगे बढ़कर पुकारा—पीरो मुर्शद, हुजूरे आली, बादशाह सलामत उम्रदराज़!—तीन बार यह वाक्य उसने घोषित किया, इसके बाद ही दरबारीगण अदब से झुके; एक सम्मिलित मर्मर शब्द हुआ—तरक्किए-इकबाल दराज़े-उम्र!—बादशाह ने दीवाने-फरहत में प्रवेश किया, असीलें अदब से सिर झुकाए खड़ी थीं। आंगन में एक सुसज्जित तख्ता बिछा था, बादशाह उसपर बैठ गए। जसोलिनी दारोगा दोनों हाथों में अतलस चढ़ी बुकचियां लिए आ हाज़िर हुई। ग़ुस्लखाने के दारोगा ने सामने आ सिर झुकाया। बादशाह उठकर ग़ुस्ल करने चल दिए।

जौनपुरी खली, सुगन्धित वेसन, चमेली-शब्बो, मोतिया, बेला, जुही-गुलाब के तेल बोतलों में भरे तरतीब से रखे थे। शकावे में एक ओर ठंडा और दूसरी

ग्रोर गर्म पानी भरा था। चांदी के लोटे ग्रौर सोने की लुटिया जगमगा रही थी। गुस्ल हुग्रा। बादशाह पोशाक के कमरे में चले गए। ख्वाजा हसन बेग दारोगा ने ग्राकर ग्रादाब बजाया। उसने लखनऊ की चिकन का कुर्ता, दोनों ग्रोर तुकमे घुंडियां, लट्ठे का चौड़े पायंते का पायजामा जिसमें दिल्ली का कमरबन्द पड़ा था—हाज़िर किया। बादशाह ने पोशाक पहनी। मखमली चप्पल पहनी।

ग्रब शमीमखाने का दारोगा ग्रा हाज़िर हुग्रा। उसने सिर में तेल डाला, कंघा किया, कपड़ों में इत्र लगाया। बादशाह तस्बीह खाने में ग्राए, माला फेरी ग्रौर दुग्राएं पढ़ीं। फिर दीवाने-खिलवत में चले गए। दवाखाने के मुन्तज़िम ने ग्रागे बढ़कर कोर्निश की ग्रौर हकीम ग्रहसन की सील-मुहरबन्द शीशियां पेश कीं। मुहर तोड़ी गई ग्रौर याकूती की प्याली तैयार की गई। तभी खवास ने चांदी की तश्तरी में छिलकों-समेत दो तोले भुने चने पेश किए। बादशाह ने याकूती की प्याली पी, फिर चनों से मुंह साफ किया ग्रौर बेगमी पान की एक गिलौरी खाकर मिट्टी के कागज़ी हुक्के को मुंह लगाया।

इतने में ही खबरों का ग्रफसर ग्रा उपस्थित हुग्रा। रातभर की खबरें सुनाई गईं। बादशाह ने पान की एक ग्रौर गिलौरी खाई ग्रौर उठकर दीवाने-खास को चले।

बादशाह तख्त पर बैठे। प्रत्येक विभाग के ग्रधिकारी तथा ग्रमीर-उमरा हाथ बांधे, नीची नज़र किए चुपचाप निश्चल खड़े थे। नकीब ने पुकारा—जल्लेइलाही बरामद कर्द–मुजरा ग्रदब से!—यह सुनते ही प्रत्येक ग्रमीर सहमता हुग्रा ग्रागे बढ़ा—बादशाह की कोर्निश की, ग्रौर हटकर पीछे ग्रपने स्थान पर ग्रा खड़ा हुग्रा। नकीब ने ग्रमीर की हैसियत के ग्रनुसार उसकी विरद बखानी। सब दरबारी मुजरे ग्रौर कोर्निश की रस्म पूरी कर चुके, तो बादशाह ने एक मृदु मुस्कान के साथ कृपापूर्ण दृष्टि से सबकी ग्रोर देखा ग्रौर फर्माया—ग्राज हमने एक ग़ज़ल कही है, उसका पहला शेर पेश करता हूं :

यारे देरीना[1] है, पर रोज़ है वह यार नया।
हर सितम उसका नया, उसका है हर प्यार नया।

दरबार में संयुक्त कण्ठों का एक शोर उठा—सुभानग्रल्ला कलामुलमलूक मलूकुलकलाम!

१. पुराना मित्र

बादशाह ने आगे ग़ज़ल पढ़ी—

नई अंदाज का है दामे बला[1] तुर्रए[2] यार ।
रोज है एक न एक उसमें गिरफ़्तार नया ॥
तेरी 'हाँ' में है 'नहीं' और 'नहीं' में 'हाँ' ।
तेरा इक़रार नया है, तेरा इंकार नया ॥
कैसे बेदर्द दिल आज़ार[3] को दिल हमने दिया ।
रोज है दर्द नया, रोज एक आज़ार नया ॥
क्या क़यामत है सितमगर तेरी तर्जे ख़राम[4] ।
फ़ितना[5] हर ग़ाम[6] पर उठा दमे रफ़्तार[7] नया ॥
करे वो किसकी दवा देखते हैं रोज तबीब ।
तेरे इस नर्गिसे बीमार का बीमार नया ॥
फेरे इसमें 'ज़फ़र' दिल का जो सौदा फिर जाय ।
एक मौजूद है उसका ख़रीदार नया ॥

ग़ज़ल के हर शेर और हर मिसरे पर दरबार में हलचल मच गई और बढ़-बढ़कर तारीफें हुईं ।

इस वक्त शाही दरबार में बादशाह के पीर, मौलाना फखर के पुत्र मियां कुतुबुद्दीन भी उपस्थित थे। वे बड़े आलिम समझे जाते थे। मियां कुतुबुद्दीन के पुत्र मियां नसीरुद्दीन उर्फ काले साहेब को बादशाह ने अपनी शाहज़ादी ब्याह दी थी। इनके अतिरिक्त शाह ग़ुलाम हसन चिश्ती एक पहुंचे हुए महात्मा भी दरबार में थे। इन सबने बादशाह की बेकसी और दर्द से भरी हुई ग़ज़ल में उनकी मजबूरियों को साक्षात् देखा तथा दाद दी। 'सुभान अल्लाह' कहा और बारम्बार 'कलामुलमलूक मलूकुलकलाम' कहा।

अभी यह वाहवाही हो ही रही थी और शाही दरबार एक मुशाइरे का रूप धारण कर चुका था कि एक चीत्कार ने सबका ध्यान भंग कर दिया। एक भंगिन रोती-चीखती दरबार में घुस आई और बादशाह सलामत के रूबरू जाकर वह धरती चूमकर और हाथ जोड़कर बोली :

---

१. आफत का जाल २. जुल्फ ३. दिल को दुखानेवाला ४. चलने की अदा ५. झगड़ा ६. कदम ७. चलने का समय

'जहांपनाह, मिर्ज़ा महमूद मेरी दो मुर्गियां ले गए।'

लालकिले के बादशाह भंगिन की फरियाद से खिन्न होकर बोले—रो मत, जा मुर्गियां आती हैं।

भंगिन ज़मीन चूमती हुई उल्टे पैर लौट गई, शाहज़ादा मिर्ज़ा महमूद की दरबार में तलबी हुई। वे आंखें नीची किए आ खड़े हुए।

'अरे महमूद, गरीब भंगिन की मुर्गियां, हाय, हाय!' बादशाह की आंखें करुणा से गीली हो गईं; वाणी गद्‌गद हो गई। उन्होंने अली अहमद दारोगा की ओर दृष्टि फेरी और हुक्म दिया—दिलवा दो, और एक बढ़ती।

मिर्ज़ा महमूद ने धरती चूमी, और दारोगा ने उन्हें संग ले जाकर तीन मुर्गियां भंगिन को दिलवा दीं।

तोशाखाने के घड़ियाल ने दस बजाए। विभागों के अधिकारियों ने अपने-अपने बस्ते खोलकर आवश्यक आज्ञाएं लीं। दस्तखत कराए। ग्यारह बजते ही बादशाह उठे। चोबदारों ने ऊंचे स्वर में जय-जयकार किया। रंगमहल के लिए जसोलिनी दण्ड लिए आगे बढ़ा और पुकारकर कहा—तरक्किए इकबाल-दराज़े उम्र!—महल में सब सावधान हो गए। अब आगे-आगे बादशाह और पीछे जसोलनियां, कहारनियां, कश्मीरनियां, हब्शिनें, तुर्कनें मोरछल करती चलीं। बीच-बीच में पुकारतीं—अदब होशियार! अदब होशियार!

महल में बड़ी बेगम ने खड़े होकर सलाम किया। अमीरों की खातूनों, और शाहज़ादियों ने भी सलाम किया। बादशाह आसन पर बैठे। सबको बैठने का हुक्म दिया। अब कश्मीरन महताब ने जरबफ्त और कमख्वाब के दो कसनों की मुहर तोड़ी। बेगम ने अपने हाथ से भण्डा तैयार किया। चांदी की सुराही से जल लिया, और लखनऊ की गंगा-जमनी तश्तरी में पेश किया। बादशाह ने भण्डा लिया। बेगम ने पान की गिलौरी बना नीचे चांदी और ऊपर सोने का वर्क लगा पेश की। इतने में महताब आई; अदब से झुककर निवेदन किया—भोजन परसा जाए?

हुक्म हुआ—अस्तु।

रोज़े के दिन। जामा मस्जिद पर आदमियों का जमघट। जाबजा लोग गुट बनाए बैठे थे। कहीं कुरान के दौर हो रहे हैं। कहीं कुरान सुनानेवाले

हाफिज़ एक-दूसरे को आयतें सुना रहे हैं। कहीं सूफी साधु अद्वैत—अनलहक—की चर्चा कर रहे हैं, कहीं मंतिख और हदीस की चर्चा हो रही है। दो आलिम इल्मी बहस कर रहे हैं, दस-बीस मज़े में ध्यान लगाए सुन रहे हैं। कहीं कोई चुपचाप समाधिस्थ बैठा है। कहीं कोई तस्वीह घुमा रहा है। उंगलियों पर तस्वीह के दाने जैसे-जैसे सरकते हैं, वैसे ही उसके होंठ भी फड़क रहे हैं। बहुत सैलानी इधर से उधर मटरगश्ती कर रहे हैं।

इसी तरह दिन बीत गया। रोज़ा खोलने का समय आ गया। अब सैकड़ों थाल विविध पकवानों से भरे चले आ रहे हैं। मुजाविर लोग उन्हें लोगों में बांट रहे हैं। श्रद्धालु सद्गृहस्थ थालों पर थाल भेज रहे हैं। उनका अन्त नहीं है। शाही महल से भी भिन्न-भिन्न स्वादिष्ट पकवानों से भरी किश्तियां आ रही हैं। मुहल्ले-मुहल्ले से मिठाइयों से भरे थाल चले आ रहे हैं। किले की प्रत्येक बेगम, प्रत्येक राजकुमारी अपने-अपने थाल भेज रही थी। शहर के सब अमीर-उमरा अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार थाल भेज रहे थे। उनका तांता लग रहा था। थालों की संख्या सैकड़ों तक पहुंच रही थी। और यह रोज़ का काम था, प्रत्येक अमीर कोशिश करता था कि उसका थाल दूसरों से बढ़कर रहे। थालों पर भिन्न-भिन्न रंग के रेशमी रूमाल और उनकी ज़री की झालरें भी एक से एक बढ़-चढ़कर थीं। मस्जिद में इस समय एक निराला समा बंधा था।

लालकिले से सैकड़ों फकीरों का भोजन भेजा जा रहा था। शाहज़ादियां और बेगमें इस काम में एक-दूसरे से होड़ ले रही थीं।

आज उन्नीसवां रोज़ा है। जो चांद की खबर सबसे पहले लाएगा, उसे शरई साक्षी के विश्वास पर पांच मोहरें और एक जोड़ा इनाम मिलेगा। इसीसे सहरी के बाद बीस सांडनी-सवार, जिनकी सांडनियां पचास-पचास, साठ-साठ कोस का धावा मारती थीं, दिल्ली से चारों दिशाओं को चल पड़े और आठ-आठ, नौ-नौ मंज़िल पर जाकर पड़ाव किए। सांडनी-सवार जंगल में, शहरवाले कोठों पर, स्त्रियां ममटियों पर, इसपर आज दिन छिपने में अभी देर है, पर लाखों आंखें आकाश को ताक रही हैं।

सूर्यास्त हुआ, बादशाह सलामत दीवाने-आम की छत पर आ रौनक-अफ-रोज़ हुए। यहीं आज हफ्तारी रोज़ा खोला जाएगा। कोरे-कोरे मटके, सोंधी-सोंधी सुराहियां, कागज़ी आबखोरे पंक्तियों में चुने रखे हैं। धुले-धुलाए। बड़े-

बड़े हंडों में जस्त की कुल्फियां और मटकैने मलाई और दूध से भरे रखे हैं। फालसे, खरबूजे, पिस्ते, बादाम की बर्फियां थालों में आरास्ता हैं। फिर दुनिया-भर की मिठाइयां, कचौरियां, समोसे, दालमोठ, सेम के बीज, कल्मी बड़े, फुल-कियां, दहीबड़े किश्तियों में संजोए रखे हैं। परन्तु आज इफ्तार पर किसीकी नज़र नहीं है—नज़र है—चांद पर। बस, चांद पर।

बादशाह ने सफ बांधकर नमाज़ पढ़ी और चांद को देखने उठ खड़े हुए। चारों ओर एक मन्द मर्मर शब्द सहस्रों कण्ठों से निकला—अल्लाह-बिस्मिल्लाह !—खाले में पांच मुहरें, एक बीड़ा, दो थान गुलबन्द के, एक थान जरबफ्त का मौजूद है। जो सबसे पहले चांद देखेगा उसे यह पुरस्कार मिलेगा।

आखिर चांद दिखाई दिया। यह था ईद का चांद ! यह जवान ईद थी। मुजरे प्रारम्भ हुए। जो सामने आया, झुककर सलाम की। लाहौरी दरवाज़े से ग्यारह तोपें दगीं। नौबतखाने पर धौंसे पर चोब पड़ीं। जामा मस्जिद के होज पर बत्तीस गोले छूटे, शहर को ईद की खबर मिल गई ; और सारी दिल्ली ईद की तैयारी में संलग्न हो गई। ईद की खुशियां तो मंझले रोज़ ही शुरू हो चुकी थीं। घर साफ किए गए थे। कमरे, दालान, अंगनई, दरीचों पर सफेदी की गई थी। फर्श धोए जा चुके थे। दर्ज़ियों और धोबियों की चांदी थी। काम की भीड़ से होश न था। सलेमशाही जूतेवालों की दूकान पर गाहक टूट पड़ते थे। सिवैयां घर-घर टूट रही थीं। खातूनें अपनी कोमल कलाइयों को हवाई चूड़ियों से आरास्ता कर चुकी थीं। मनिहारियां दांतों में मिस्सी की धड़ जमाए, पान की गिलौरियां कचरती हुई ठसक से चूड़ियां पहनाती और गहरे इनाम लेती जा रही थीं, मालामाल हो रही थीं। घर-घर आनन्द-उत्सव मनाए जा रहे थे। बच्चों की खुशी का ठिकाना न था। सबको नये वस्त्र मिले थे। सांझ को ही नई जूतियां पहनी गई थीं। उन्हें वे सिराहने रखकर सोए थे। लड़कियां अपनी गोटे-किनारे की पोशाकें देख-देखकर फूली न समाती थीं। कल वे ईद की पोशाक पहनेंगी। उन्हें भूख-प्यास भला कहां ? बस पोशाक को निहार रही हैं। मां खाने को कहती है, मगर लड़की ने मेंहदी लगाई है। वह कह रही है—अम्मी ! हमने तो मेंहदी रचाई है, हमसे खाना न खाया जाएगा।

रात बीती। अज़ान की बांग सुनाई पड़ी। गृहिणी हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई, चूल्हा जला और सिवैयां, छुहारे, खांड निकाली। चूल्हे पर सिवैयों का पानी

चढ़ाया। प्रातः की नमाज़ अदा हुई, और सिवैयां तैयार। घर साफ किया, फर्श फराश किया, कपड़े बदले। और मियां, बीबी, बच्चे सब चले ईदगाह की ओर। लौटे तो मिठाइयां, खिलौने, तरकारियां खरीदकर। अब ईदियां शुरू हुईं। किसीको पांच, किसीको एक रुपया, किसीको अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी। दिन-भर चला यही सिलसिला। शाम को भाई अपनी छोटी बहनों के घर और बाप अपनी बेटियों के घर ईदियां देने गए।

मनिहारिन घर में आई। घर में प्रवेश करते ही बहुओं ने खड़े होकर झुक-कर सलाम किया। बेटियों ने सलामें कीं। मनिहारिन मालकिन के पास पहुंची, उसने गर्दन झुकाकर मुस्कराकर स्वागत किया। मां का संकेत पाते ही बहू ने सिवैयां, कचौरियां, मिठाई मनिहारिन के सामने रखी। मनिहारिन ने खाया, कुल्ली की, पानी पिया। बीबी ने दो बीड़ा पान बनाया। ज़र्दा दिया। मनिहा-रिन ने गिलौरियां मुंह में ठूंसीं और असीस दी—बूढ़ सुहागनसांई जिएं··· बच्चे जिएं···

बीबी ने ढाई रुपये बटुए से निकालकर सामने रखे और कहा—लो बुआ, अपना नेग।—मनिहारिन ने चूड़ियां तो पांच आने की ही पहनाई थीं, पर इस वक्त तिनककर पीछे हटी और कहा—वाह बेगम ! ढाई कैसे ? हमेशा तो इस ड्योढ़ी से पांच मिलते रहे और इस बार तो अल्लाह रखे, तुम्हारी हसना ससुराल से पहली बार आई है। इसकी ईदी भी लूंगी।—बेगम ने एक अठन्नी और बढ़ाई, तो मनिहारिन और बिगड़ गई; उसने कहा—हये-हये ! सब खर्चे तो पूरे हुए; मुए मेरे ही दो रुपये काट रहे हो। ना, ना, बड़ी बेगम तो कभी हुज्जत करती ही न थीं।—बेटियां-बहू सब चुप ! बेगम ने एक रुपया और चढ़ाया और कहा—बस करो, अल्लाह ने चाहा तो बकरीद पर कसर निकाल दूंगी।—मनिहारिन ने कहा—ऐ बीबी ! तुम्हारी जूतियों के तुफ़ैल से बच्चों की ईद हो जाती है। खुदा सलामत रखे···बुढ़िया का मान रख लेती हो। बूढ़ सुहागन···दूधों नहाओ, पूतों फलो !

यह हुई दिल्ली की ईद। अब चलिए लालकिले में। चांद हो गया, इनाम बंट चुके। महलों में रातभर धूम रही। इक्कीस तोपों से चांद की सलामी हुई। मोदीखाने, तोशाखाने के दारोगा अपने-अपने सामान की फहरिस्त बनाने में परेशान। शाहज़ादियां बुज़ुर्गों को चांद का आदाबर्ज़ कर रही हैं। छह घड़ी

रात रही तो किले से तम्बू और छोलदारियों के छकड़े ईदगाह की ओर चले।

शामियाने तने, तम्बू लगे, डेरे पड़े। फौजदार खां फीलखाने के दारोगा आए और हुक्म दिया—हाथी रंगो! —मौलाबख्श हाथी रंगा गया। शाही खिलअत तैयार हुआ। शाहज़ादियां-बेगमात चूड़ी-मेंहदी में लगी हैं। चार बजे ईद की तोप दगी। बादशाह जगे, ग़ुस्ल किया, शाही पोशाक पहनी, फिर मोती मस्जिद में आ नमाज़ पढ़ी और जवाहरखाने में तशरीफ लाए। ताज पहना, गले में मोतियों का हार। खासाबरदार ख्वाजासराओं ने दस्तरखान बिछाया। बादशाह ने एक चम्मच सिवैंयां और एक टुकड़ा छुहारा खाकर इफ्तार किया। इसके बाद सूखा निवाला और मसूर की दाल। कुल्ली की, पान खाया, खड़े हुए। रखवालियों ने पुकारा—अल्ला रसूल की अमान! —तरपचियों ने नफीरी बजाई। सवारी का हुक्म हुआ। बादशाह बाहर आए। दोनों तरफ खड़ी फौजों ने सलामी दी। फौजदार खां ने हाथी लगाया। हबशियों ने हवादान लगाया। बादशाह हवादान में बैठे। बाजे बजने लगे और बादशाह दीवाने-आम में पहुंचे। अहलकारों ने कोर्निशें कीं। बादशाह हाथी पर सवार हुए। इक्कीस तोपों की सलामी छूटी। तलवारों की छांह और बाजों की धूमधाम में बादशाह किले से बाहर चले। पालकी में शाहज़ादे, घोड़ों पर अमीर, बीच में बादशाह का हाथी, आगे-पीछे फौज। शाही जुलूस ईदगाह की ओर चला। 'हुक्मे-आम' की पुकार हुई—कोई प्रार्थी-दुखिया आए, और अपनी विपता सुनाए!—लाहौरी दरवाज़े तक चांदी के फूल गरीबों और फकीरों को लुटाए गए। आगे का रास्ता तेज़ था। नकारा खत्म। खैरात खत्म। मेला यहीं से शुरू। तुरई, ग़ुब्बारे, कल का घोड़ा, तीतरी, किश्ती और न जाने क्या-क्या खिलौने बिक रहे हैं, बच्चे मचल रहे हैं।

ईदगाह आई। शाही हाथी रुका। बादशाह नीचे उतरे और ईदगाह में प्रविष्ट हुए। तकबीर आरम्भ हुई। नीयत बांधी, दुआना पढ़ा, सलाम फेरा और नमाज़ खत्म हुई। अब खुतबे का समय आया। शाही हुक्म होते ही तोशेखाने का दारोगा आगे बढ़ा, किश्ती में खिलअत के सात कपड़े और जड़ाऊ परतला इमाम साहेब को पेश किया गया। बनारसी दुपट्टा उनकी कमर में बांधा गया। तलवार कमर से लगाई गई। इमाम साहेब ने कुल्ले पर हाथ रखकर खुतबा पढ़ा। बादशाह का नाम आते ही उपस्थित जन में 'आमीन' का नाद

उठा। खुतबा खत्म हुआ। पचास रुपये नकद इनाम बख्शे गए। बादशाह हवादान के बैठकर किले में आए।

बादशाह दरबारे-खास में तख्त पर बैठे, कम्पनी के रेज़ीडेंट ने आगे बढ़कर नज़र पेश की; कोर्निश की। फिर दूसरी भेंट हुई। इनाम बंटे, बारह की तोप चली। बादशाह ज़नानखाने में आए। बेगमात ने भेंट दीं, भोजन का समय हुआ, धौंसे पर चोट पड़ी। देग का लंगर लुटा, ईद का खाना बंटा, ईदियां दी गईं। बादशाह दस्तरखान पर बैठे।

रात हुई। ईद की रात। किले के चप्पे-चप्पे, कोने-कोने पर कंदीलें जगमगा रही थीं। वृक्षों पर कुमकुमे लटक रहे थे, मोती मस्जिद के कंगूरों पर अबरख की लालटेनें जड़ी थीं। नाच-रंग, संगीत से लालकिला चौथी की दुलहिन बन रहा था।

सत्तावन की आग दिल्ली में धांय-धांय जल रही थी। दिल्ली में लूट-पाट और खून-खराबी का बाज़ार गर्म था। विद्रोही शहर में घुस आए थे। जामा मस्जिद में जगह-जगह चूल्हे बने हुए थे; सिपाही रोटियां पका रहे थे। कहीं घोड़ों का दाना दला जा रहा था। जाबजा घास के अम्बार लगे थे। शाहजहां की वह जगद्विख्यात जामा मस्जिद अस्तबल बन चुकी थी। गिरजाघर और अंगरेज़ों की कोठियां लूटकर उनमें आग लगा दी गई थी। औरत-बच्चे जो जहां मिला, काट डाले गए थे। अनेक अंगरेज़ अफसर चेहरे पर कालिख पोत, हाथ-पैर रंग, फटे चिथड़े पहन कहीं-कहीं भाग रहे थे। सड़कों पर घोड़ों, बग्घियों, पालकियों और पैदलों की भर-मार थी। चारों तरफ से बन्दूकों की आवाज़ आ रही थी। घायल कराह रहे थे। सारे बाज़ार बंद, गलियों में सन्नाटा, सब घर बन्द। नित नया कोतवाल बदला जाता था। विद्रोही जहां जो मिलता लूट लेते। शाही खज़ाने में धेला न था। न बादशाह का हुक्म कोई मानता था, न शाहज़ादों की पूछ थी। गोलों से शहर खंडहर हो गया था। दीवाने-खास का संगमरमर का तख्त चूर-चूर हो चुका था। अंगरेज़ी स्कूल जला डाला गया था। लोगों के मकानों में गोलियां इतनी भरी थीं कि लड़के उन्हें ढेर-ढेर जमा करते थे। मेगजीन फटने से उसका सामान टोपी-बन्दूक, तलवार और संगीन लोग उठाकर अपने घर

ले गए थे। खलासियों ने रुपये में तीन सेर के हिसाब से तोल-तोलकर हथियार बेचे थे। ताम्बे की चादरें रुपये की तीन सेर और बंदूक आठ आने की बिक रही थी। अच्छी से अच्छी अंगरेजी किरच चार आने में महंगी थी। संगीन को तो कोई पूछता भी न था। विद्रोही नगर में किसीकी आन न मानते थे। जिन्हें लूट में गहरा माल हाथ लगा था, वे जंगलों में भाग गए थे। दाम मांगने पर दुकानदार मार डाला जाता था। लुटेरों के पास इतना लूट का माल जमा हो गया था कि वे उसके बोझ के कारण कूच ही नहीं कर सकते थे। वे रुपयों की मुहरें बदलवाते थे, इसलिए उन दिनों दिल्ली में सोलह रुपये की मुहर चौबीस-पचीस रुपये में बिक रही थी। ये अंधेरगर्दी के अंधेरे दिन थे।

सत्तावन की आंधी आई और गई। अंगरेजी तोपों, किरचों, संगीनों तथा भेदनीति ने दिल्ली को मटियामेट कर दिया। गोलियां बरस चुकी थीं। दिल्ली में कत्ले-आम हो रहा था। चांदनी चौक में फव्वारे से घंटाघर तक फांसियां टंगी थीं। चारों ओर से ला-लाकर लोगों को फांसी पर लटकाया जा रहा था। उनमें बूढ़े भी थे, रोगी भी थे, जवान और दुधमुंहे बच्चे भी थे। सात परदों में रहनेवालियां मुंह खोले, बालों में धूल झोंके अपने-अपने सगे-सम्बन्धियों की लाशें ढूंढ़ती फिर रही थीं। बच्चे अब्बा-अब्बा चिल्ला रहे थे। कोई रो रहा था ; कोई पागल की तरह फटेहाल घूम रहा था। लोगों के घर लूट लिए गए थे और उनमें आग लगा दी गई थी।

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे, आंखों से आंसू बह रहे थे। एक छोटी-सी शहजादी ने उनके पास आकर कहा—अब्बा हुजूर, आप यह क्या कर रहे हैं?—बादशाह ने कहा—बेटी, खुदा से दुआ मांगता हूं कि वह मेरी औलाद पर रहम करे।

उन्होंने सब सगे-सम्बन्धियों को बुलाया। एक-एक मुट्ठी हीरे सबको दिए और कहा—खुदा हाफिज़! वे लालकिले से बाहर निकले, और सीधे निज़ामुद्दीन की दरगाह में पहुंचकर सीढ़ियों पर बैठ गए। उनकी दाढ़ी में धूल भरी थी और चेहरा उतरा हुआ था। कुछ ख्वाजासरा, कहार और शुभचिन्तक साथ थे। खबर सुनते ही ग़ुलाम हुसेन चिश्ती दरगाह में आए। उन्हें देखते ही बादशाह खिलखिलाकर हंस पड़े। कहने लगे—वही हुआ जो होना था, मगर मैं मुगल-

तख्त का आखिरी वारिस हूं। मुगलों का चिराग बुझ रहा है। खून-खराबी से क्या लाभ है, इसीसे लालकिला छोड़कर चला आया। मुल्क खुदा का है। जिसे चाहे दे।—उन्होंने एक छोटा-सा संदूक चिश्ती को दिया और कहा—यह तुम्हारे सुपुर्द है, इसमें हज़रत पैगम्बर की दाढ़ी के पांच बाल हैं। ये आज तक हमारी अमानत में थे—अब तुम सम्हालो और कुछ खाने को घर में हो तो ले आओ।

चिश्ती ने कहा—बेसनी रोटी और सिरके की चटनी है।

'बस, वही ले आओ।'

बादशाह ने एक रोटी खाई, पानी पिया और हुमायूं के मकबरे में जा बैठे, जहां हडसन ने उन्हें शहज़ादों-सहित गिरफ्तार कर लिया।

वे उन्हें ले चले। खूनी दरवाज़े के पास सवारी रोकी। हडसन ने शहज़ादों को रथ से उतरने का हुक्म दिया और चारों को गोली से उड़ा दिया। शहज़ादे वहीं धूल में तड़पने लगे। तब हडसन ने तलवार से उनके सिर काट लिए, और उन्हें बादशाह के सामने ले जाकर कहा—बहुत दिन से आपको शिकायत थी कि अंगरेज़ों ने आपको खिराज नहीं दी। यह लीजिए खिराज।

बादशाह ने देखा और कहा—ये तैमूरी खानदान के बच्चे हैं, जो सुर्खरू होकर बाप के सामने आए हैं।—और मुंह फेर लिया।

वही बदनसीब दीवाने-खास था। बादशाह पर मुकदमा चलाया जा रहा था। लेफ्टिनेण्ट कर्नल डास प्रधान विचारक की कुर्सी पर थे और बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र अभियुक्त की जगह। दीवाने-खास की छतें लरज़ रही थीं और खम्भे कांप रहे थे। अदालत ने बादशाह पर फर्द जुर्म लगाई :

'मुहम्मद बहादुरशाह, तुमने कम्पनी बहादुर के पेन्शनयाफ्ता होने पर भी बगावत की और अंगरेज़ सरकार की प्रजा होने पर भी राजभक्ति नहीं रखी। मुहम्मद बहादुरशाह, तुमने ये अपराध किए हैं?'

बादशाह ने मुस्कराकर कहा—नहीं।

अदालत ने गवाहों को बुलाने का हुक्म दिया। क़ागज़ात पढ़े गए और बादशाह बेहोश हो गए।

सरकारी वकील ने कहा—अदालत को सिर्फ फैसला करने का अधिकार

है, दण्ड देने का नहीं ; क्योंकि जनरल विलसन ने अभियुक्त से वादा किया है कि उसे प्राणदण्ड नहीं दिया जाएगा।

और अन्त में वह बदनसीब बूढ़ा बादशाह रंगून के एक शानदार क़ैदख़ाने में एक लाचार लावारिस क़ैदी की भांति मर गया !

रमज़ान का महीना आया। अब न वे पाकीज़ा खसलत के आलिम थे, न वह शान। कुछ मुसलमान मैले-कुचैले कपड़े पहने बैठे थे। दो-चार कुरान शरीफ का दौर कर रहे थे। कुछ विक्षिप्तावस्था में बड़बड़ा रहे थे। रोज़ा खोलने का समय हुआ, तो कहीं से कोई थाल नहीं आया। मुजावरों ने कुछ खजूरें और दालमोठ लोगों में बांट दी। किसीने कोई फल या साग-सब्ज़ी के टुकड़े बांट लिए। सबके मुंह पर हवाइयां उड़ रही थीं। दुर्दिन ने सबको अपने पंजे में ग्रस लिया था।

ईद की सुबह। एक गंदी-सी तेज़ अंधियारी गली में एक टूटे-फूटे घर में एक शोकग्रस्त शाही परिवार के कुछ लोग बैठे थे। ग़ुमसुम। ये लोग नमाज़ से पहले ही इस घर के स्वामी शाहज़ादा मिर्ज़ा दिलदार शाह को गाड़ आए थे। वे दस दिन से बीमार थे। कम्पनी की सरकार उन्हें पांच रुपये माहवार पेन्शन देती थी। घर में इनकी बेगम और चार सन्तानें थीं। तीन लड़कियां, एक लड़का। दो लड़कियों की शादी हो चुकी थी, एक डेढ़ साल की लड़की गोद में थी, लड़का दस बरस का था। पति-पत्नी गोटा बुनते और पेट भरते थे। लड़का पढ़ा-लिखा न था, प्यार से वह ज़िद्दी हो गया था। वह रो रहा था और कह रहा था—मेरे अब्बा को बुला दो। हम ईदगाह जाएंगे।—घर में न खाने को कुछ था न पकाने को बरतन। पड़ोसी गोटेवालों ने कुछ खाना तरस खाकर भिजवा दिया। बेगम ने ठण्डी सांस ली और बच्चों को वह दान का भोजन कराया, खुद निराहार रही। घर-घर ईद मनाई जा रही थी। सिवैयां और पक्वान्न बन रहे थे—पर यहां सन्नाटा था। बच्चा नई जूती और नये कपड़े मांग रहा था। बेगम आंसू पीती जा रही थी और कह रही थी—बेटा, तेरे अब्बा परदेश गए हैं; वे आ जाएं तो जूतियां और कपड़े मंगवाऊं।

'तो पैसे दो, मैं खुद ले आऊंगा।'

'बेटे, मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं।'

'वाह, मैं नहीं जानता, मैं अभी पैसे लूंगा।'

बेगम ने ठण्डी सांस भरी। उठी, पड़ोस से लगी खिड़की में जा खड़ी हुई। पड़ोसिन से कहा—बूआ सूतक में है, मैं भीतर नहीं आ सकती, ज़री मेरी बात सुन जाओ।

वह आई तो कहा—खुदा के लिए अपने बच्चे का उतरन कोई कुरता और जूतों का जोड़ा हो तो एक दिन के लिए उधार दे दो। कल लौटा दूंगी।—उसकी आंखों से गंगा-जमना की धार बह चली। पड़ोसिन ने जूती और कपड़े बेगम को दिए। पर बेगम बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी।

लालकिले में सन्नाटा था—दीवाने-खास में कबूतरों का एक जोड़ा ग़ुटरगं कर रहा था। दूर जमना किनारे कोई दर्द-भरी आवाज़ में गा रहा था :

दमदमे में दम नहीं—ख़ैर मानो जान की।
ए 'ज़फ़र' ठण्डी हुई शमशीर हिन्दुस्तान की॥

फूलवालों की सैल

अन्तिम मुगल बादशाह की हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य-भावना की कहानी, जिसमें उस बादशाह के लिए और बादशाह की अभागी संतान के लिए हमें आंसू बहाने पड़ते हैं। गदर के बहुत दिनों तक मुगल-वंश इधर-उधर दिल्ली के खंडहरों में अपनी प्रणय-वेदनाओं के दर्शन करते रहे।

कुतुब की लाट दिल्ली की प्रधान दर्शनीय वस्तु है। जाननेवालों की दृष्टि में वह अनेक भेद गर्भ में छिपाए स्तब्ध खड़ी न मालूम किस अज्ञात की प्रतीक्षा कर रही है। साल के तमाम दिनों में, चाहे आंधी हो या पानी, गरमी हो या सरदी, कुतुब के यत्रियों का तांता लगा रहता है। हिन्दू और मुसलमान सब उसपर फिदा हैं। दिल्लीवाले एक ही मनचले छैला होते हैं; जरा बदली ने रंग बदला, हवा में नमी आई, और दिल्लीवाले स्त्री-पुरुष छोटी-छोटी पुटलियों में खाने की सामग्री बांध कुतुब पर चढ़ दौड़े। अजमेरी दरवाज़े के बाहर आप मोटर-लारियों की फौज रात-दिन खड़ी देखेंगे। ग्यारह मील के रास्ते का बेचारे पांच पैसे तक का भाव कर देते हैं। फिर भला कुतुब क्या महंगा रहा? बाहरी सैलानियों के लिए एक और भी सुविधा है। ये लारियां रायसीना (नई दिल्ली) की प्रशस्त, कांच के समान चमकती हुई और प्राचीन रोम-साम्राज्य की प्रतिबिम्ब-रूपी घूम-घुमौवल सड़कों पर जब दौड़ती हैं, तो यह दुर्लभ सैर उन्हें मुफ्त ही प्राप्त हो जाती है। लगभग आधी दूर तक तो रायसीने का गोरखधंधा ही है। उसके बाद कुतुब के दर्शन हो ही जाते हैं।

ग्यारह साल बाद इस वर्ष फूलवालों की सैल का मेला लगा था। यह मेला प्रतापी, किन्तु भाग्यहीन मुगल सम्राट् शाहजहां ने लगाना प्रारम्भ किया था। कुतुब के एक पार्श्व में पृथ्वीराज के समय की प्राचीन योगमाया एक जीर्ण मंदिर में आसीन हैं, दूसरे पार्श्व में ख्वाजा साहब की दरगाह है। बादशाह ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को प्रतिवर्ष पांच-पांच सौ रुपये का वज़ीफा देना स्वीकार

किया था। उस रकम से हिन्दू योगमाया पर और मुसलमान दरगाह शरीफ पर फूलों के पंखे चढ़ाया करते थे। जब मुगल-तख्त का अन्त हुआ, और अंगरेज़ों ने भारत के साम्राज्य का भार सिर पर लिया, तब यह वज़ीफा घटाकर सौ-सौ रुपये की शक्ल में हिन्दू-मुसलमानों को मिलता रहा। परन्तु गत ग्यारह वर्ष से (महायुद्ध-काल से) गवर्नमेंट ने यह वज़ीफा बन्द कर दिया। मेला भी बन्द हो गया। इस बार ग्यारह साल बाद गवर्नमेंट ने इस सोते हुए मेले को फिर जाग्रत् किया; फिर सौ-सौ रुपये उन परिवारों को प्रदान करने की उदारता दिखाई, जो कदीम से पंखा चढ़ाने का शाही अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। ग्यारह साल बाद इस बार इस मेले के लिए दिल्ली को उकसाने की सरकार को क्या आवश्यकता आ पड़ी, इसपर कुछ बुद्धिमानों ने विचार किया, समाचार-पत्रों ने भी नुक्ताचीनी की। यही तो समय था, जब पंजाब के सिंह-शावकों ने भूख-हड़ताल की थी, और अमर यतीन मृत्यु-शय्या पर अन्तिम श्वास ले रहे थे। राष्ट्रीय नेता उस अनैतिक मेले के उग्र विरोधी थे। दिल्ली देश की वेदना के साथ शरीक है या नहीं, यह बात देखने योग्य समझी गई। फूलवालों की सैल की एक झलक देखने की हमारे मन में अभिलाषा पैदा हुई।

सचमुच दिल्ली को वेदना न थी। दिल्ली और वेदना? महाराज्यों की यह विधवा-पुंश्चली जिस तरह नये पतियों को प्राप्त कर नये ठाठ सजती है—वह क्या जगत् देखता नहीं है? यह महामंदोदरी कब वेदना के अनुभवयोग्य हृत्पिंड पावेगी, यह सदासुहागिन महावेश्या आज असंख्य नरवरों के प्राणों को एक-एक घूंट में पीकर ब्रिटेन-सिंह के पंजों की कृपा से नये रूप, नये वेश में नवेली दुलहिन की तरह जगमगा रही है। हज़ार यतीन मरें, इसे क्या? लाख वीर भूख-हड़ताल करें, इसे वास्ता?

इस वर्ष वर्षा मज़े की हो गई थी। जंगल हरियाली से लहलहा रहे थे। रायसीने के प्रभुओं ने मच्छड़-भय से प्रायः सभी जलाशयों को नष्ट कर दिया है। अलबत्ता कहीं-कहीं नवीन इंजीनियरी की प्रतिष्ठा रखने को सड़कों पर पानी भरा दीख पड़ता था। दिल्लीवालों पर हरियाली को देखते ही रंग चढ़ गया। सबकी ज़बान पर 'फूलवालों की सैल' उछल रही थी। दिल्ली के प्राण कुतुब पर आ अटके। कुतुब के पार्श्व में महरौली का छोटा-सा कस्बा, शैतान

की आंत की तरह लंबा एकमात्र बाज़ार लिए चुपचाप सो रहा है। उसमें जागृति के चिह्न दीख पड़े। दिल्लीवाले टूट पड़े। दो दिनों के लिए सभी मकान, कोठे, छत, मुंडेर, खंडहर किराये पर उठ गए। एक वर्ष का किराया दो दिन में मिल गया। गैस के हंडे, बिजली के लैंप और झाड़-फानूस जलने लगे। खंडहरों पर ईरानी कालीन और दरियां बिछ गईं। उनपर डेरे-तंबू खड़े कर दिए गए। महरौली सज-सजाकर वारवनिता की तरह मानो छमाछम नाचने के लिए उठ खड़ी हुई। दिल्ली की प्रख्यात वेश्याओं ने कोठों के भाव आसमान पर चढ़ा दिए। रामलीला की सवारी जिन्होंने अपनी पुण्य आंखों से चावड़ी बाज़ार के राज-पथ पर लौटती बार देखी है, वे उस महरौली के स्थायी दृश्य को समझ लें।

हिन्दुओं का पंखा तो कल चढ़ चुका था, आज दरगाह पर मुसलमानों का पंखा चढ़ना था। मुसलमान उन्मत्त हो रहे थे। नर-समुद्र कुतुब की ओर उमड़ रहा था। सभी की रात बसने की तैयारियां थीं। रात लौटने की जो सोचता था, फौरन जवाब मिलता—म्यां, दो बजे तो पंखा दरगाह शरीफ तक पहुंचेगा।—रात बसने जो जा रहे थे, उनके हाथ में वही छोटी-सी पुटलिया, बगल में शतरंजी, जेब में सिगरेट का बक्स और दियासलाई की पेटी, थोड़े-से पैसे आदि सामान था। मुसलमान-जाति तेज़ी से नष्ट हो रही है, यह साफ देखने को मिल रहा था। छोटे-छोटे बच्चे गंदे और बेहूदे गीत गा रहे थे।

वह गन्दा और बेहूदा तथा अनैतिक मेला क्या देखने योग्य था। पुराने और तंग बाज़ार में ठसाठस आदमी भर रहे थे—पसीने और सांस की दुर्गंध, भुनते हुए कबाब और सड़े तेल के तले जाते हुए पकौड़ों की भयानक बास दिमाग को फाड़े डालती थी। धूल और अन्धकार, मोटरों की घोंघों-पोंपों, सब श्रेणियों के मनुष्यों की चिल्लाहट की मिश्रित ध्वनि, लड़ाई-झगड़े, गाली-गलौज और हंसी-ठट्ठा एक अजब गड़बड़झाला पैदा कर रहा था। पंखा अभी बाज़ार तक भी न पहुंचा था, पर छतों पर, छज्जों पर, आदमी लद रहे थे। कोठों पर वेश्याओं के रंगीन प्रदर्शन लोगों के दिल-बहलाव की सामग्री बन रहे थे। हम सब आफत से घबराकर, असह्य गर्मी और गंदगी से ऊबकर एक अंधकारावृत खंडहर के एक शून्य भाग पर खड़े रात-भर परेशानी भोगने

के लिए मनोबल संग्रह कर रहे थे।

एक बूढ़ा उस अंधकार में एक पुरानी शतरंजी बिछाए चुपचाप बैठा था। हमें उसके अस्तित्व का ख्याल भी न था। उसने आवाज़ लगाकर कहा—इधर आ जाइएगा। पंखा तो दो बजे पहुंचेगा।—हमने नज़दीक जाकर देखा—एक कब्र के तकिए के सहारे अतिशय कृशकाय एक वृद्ध साधारण मलमल का एक अंगरखा पहने बैठा है। उसकी दाढ़ी और भौं बिल्कुल सफेद थी। उसकी आवाज़ कांप रही थी। उसके पैर में पुराना, किन्तु असली वसली का जूता था।

हमने निकट जाकर बूढ़े का उसकी मेहरबानी के लिए शुक्रिया अदा किया। उसने बंदगी करके कहा—मालूम होता है, आप पहली ही बार फूलवालों की सैल को आए हैं?

'जी हां। मगर आप क्या पहले भी यह मेला देख चुके हैं?'

बूढ़ा कुछ हंसा। उसने आकाश की ओर एक बार देखा और कहा—जनाब! इसी फूलवालों की सैल को देखकर ज़िंदा रह सका हूं। मैं जो कुछ देखता हूं, आप क्या वह देख सकेंगे?'

'माफ़ कीजिएगा, बदबू और शोर के मारे हमारे नाक में दम आ गया।'

उसने बीच ही में बात काटकर कहा—आह! बाबू साहब, मेला तो दिल का होता है। भीड़ देखने में क्या खाक मज़ा आ सकता है? आज अठासी साल से यह मेला देख रहा हूं, इस मेले की बदौलत न मैं अपने को बूढ़ा समझता हूं, न गरीब; न भूख महसूस करता हूं, न प्यास, न नींद, न थकावट, न सर्दी, न गर्मी। मैं वैसा ही अठारह साला नौजवान, वैसा ही चुस्त ज़र्क-बर्क बना हूं। मेरी आंखें आज के दिन-रातों को देखने में कमज़ोर और धुंधली हो गई हैं। मगर अपने उन प्यारे दिनों को हूबहू देख रहा हूं।—इतना कहकर बूढ़े ने फिर आकाश की ओर देखा, और अपनी आंखें मूंद लीं।

हम शतरंजी पर बैठ गए। हमने कहा—जनाब की बातों से कुछ भेद मालूम होता है, अगर हर्ज न हो तो ज़रा खोलकर कहिए। ज़रूर आपकी ज़िन्दगी से किसी भेद का सिलसिला है।

बूढ़े ने एक बार अंधकार में मृतकवत् पड़े हुए उस खंडहर पर एक विषादपूर्ण दृष्टि डाली, एक लंबी सांस ली, फिर कहना शुरू किया :

'आराम से बैठ जाइएगा जनाब ! सन् १८५६ की बात है। यही महीना और यही दिन था। इसी तरह फूलवालों की सैल हो रही थी। उन दिनों मोटर-लारियां नहीं थीं। अभी आए और अभी गए, यह भी भला कोई मेला हुआ। उन दिनों नागौरी बैलों की जोड़ियां जब मंझोलियों में उछलती थीं, तब देखते ही बनता था। रथ, बहली, तामजाम, पालकी, हाथी, घोड़े, खासदान, इनपर शहर के रईस दो-चार दिन पहले आते और दो-चार दिन बाद जाते थे। हफ्तों बाज़ार रहता था। दूकानदार मुंहमांगा दाम पाते और गांठ बांधकर घर ले जाते थे। उस मेले में मज़ा था, आराम था, मस्ती थी। वह मेला था। नन्ही-नन्ही भादों की फव्वारें चलती थीं, बाग़ों में झूले पड़ते थे, लोग मलार गाते थे। नशा-पानी होता था, शेर-ग़ज़लों के, ख्याल और झूलनों के अखाड़े जमते थे। गरज़, हफ्ते भर के लिए मौज का दरिया उमड़ आता था।

' दिल्ली के आखिरी बादशाह फूलवालों की सैल देखने आए थे। वह ज़ईफ़ और सच्चे साधु थे, उनका 'कलामे ज़फ़र' तो आपने देखा ही होगा। ऐसा सोज़ और किसकी कलम में है। दरअसल वह बादशाह न थे, शायर थे। आखिर बादशाही उनसे छिन ही गई !

' खैर, बादशाह के साथ उनका हरम और करीब दो हज़ार आदमी थे। मशहूर शायर ज़ौक़ भी साथ थे। बादशाह इन्हें उस्ताद मानते थे। मिर्ज़ा ग़ालिब से ज़ौक़ की लाग-डांट थी—मगर इस बार वह भी बादशाह के साथ थे। हज़रत सलामत को शायरी का इस कदर शौक था कि वही उनकी तफरीह और वही दरबार भी बन गया था। बादशाह के हुक्म से उस बार मुशायरे का खास बंदोबस्त किया गया था। दूर-दूर के शायर बादशाह की नज़र में चढ़ने और इनाम-इकराम पाने की नीयत से आए थे। इस मामले में वह एक ही फ़ैयाज़-दिल थे। बादशाह क्या थे, औलिया थे।

' जिस दिन पंखा निकलता था, उस दिन की बात है। जिस खंडहर को आप इस वक्त ऐसा डरावना और उजाड़ देख रहे हैं, उस दिन इसकी सजावट और रौनक देखने के काबिल थी। यह इमारत भरतपुर के लाल पत्थर की बनी थी। और इसपर मकराने के असली संगमरमर का फर्श था। ठीक इसी जगह, जहां आप बैठे हैं, शामियाना चांदी की मेखों पर खड़ा था, और काफ़ूरी शमादान जल रहे थे। ईरानी कालीन बिछे हुए थे। विलायती साटन के पर्दे पड़े

थे। बादशाह के लिए कश्मीरी दस्तकारी की एक निहायत नर्म और ख़ूबसूरत मसनद ठीक उस मुकाम पर रखी थी, जहां आप वह कब्र देख रहे हैं। शायर लोग सफ बांधकर बैठे थे। चोबदार, भालेबरदार, बरकंदाज़ अदब से खड़े थे। नकीब ने आवाज़ दी—हज़रत सलामत बरामदकर्द—मुजरा अदब से।—सब लोग सहमकर खड़े हो गए। बादशाह दो बांदियों के कंधे का सहारा लेकर आए और मसनद पर बैठ गए। मुजरा हुआ, और हज़रत के हुक्म से बालाई और कुलफियां बांटी गईं। इसके बाद मुशायरा शुरू हुआ। चिलमन के पीछे शहज़ादियां और बेगमें बैठती थीं। शायरों के सामने बारी-बारी से शमादान रखा गया। उन्होंने अपनी-अपनी ग़ज़लें पढ़नी शुरू कीं। हर ग़ज़ल के खत्म होने पर वाह-वाह की गूंज होती थी। बादशाह सलामत ने झूमते हुए फर्माया—इंजानिब ने भी एक शेर फर्माया है, उसे भी सुनिए।—लोगों में सन्नाटा छा गया। बादशाह अपनी ग़ज़ल पढ़ना ही चाहते थे कि एक नौजवान गबरू सामने आ खड़ा हुआ। उसका रंग मोती के माफिक साफ और आंखें पानीदार थीं। उम्र सत्रह-अठारह साल से ज्यादा न थी। वह ज़र्क-बर्क़ पोशाक पहने था। एक गंगा-जमुनी काम की सुनहरी मूठ की तलवार उसकी कमर से लटक रही थी। यह बादशाह सलामत के भतीजे वलीमुहम्मद के बेटे शहज़ादा मिर्ज़ा अहमद थे।

'बादशाह ने हैरत में आकर युवक को देखा। इस तरह एकाएक उसका मुशायरे में बादशाह सलामत के सामने आना तहज़ीब और कायदे के खिलाफ था। उसने दोजानू होकर बादशाह से अर्ज़ की—हज़रत, एक शेर मेरा भी सुन लिया जाए। बादशाह बहुत नाराज़ हुए। मगर उन्होंने हुक्म दिया।—पढ़ो।

'शमादान उसके सामने रखा गया। उसने कांपते हाथों से जेब से काग़ज़ निकाला। उसका मुंह चिलमन की तरफ था। उसका ख़ूबसूरत चेहरा शमादान की पीली और कांपती रोशनी में अजीब असर पैदा कर रहा था। शायरों में कभी यह न देखा गया था। न इसकी चर्चा थी। लोग हैरान थे। वे सन्नाटा खींचकर उसकी ग़ज़ल सुनने की इन्तज़ारी में थे, जिसने बादशाह सलामत को बीच में रोक दिया था।

'युवक ने ग़ज़ल पढ़ी। आग थी, एक-एक हुरूफ तड़प रहा था। वह शायरी न थी, दिल के टुकड़े थे। लोग हैरान थे—तारीफ करें, या चुप रहें। बादशाह की त्योरियां चढ़ रही थीं। नौजवान शहज़ादे की हरकत जैसी गुस्ताखाना थी,

ग़ज़ल भी वैसी ही कुछ ज़रूरत से ज्यादा रंगी हुई थी।

'ग़ज़ल खत्म हुई। त्योंही चिलमन में से एक चीख सुनाई दी, और धड़ाम से किसीके गिरने की आवाज़ आई। बांदी ने खबर दी—हुज़ूर शहज़ादी लैला बेहोश हो गई है।—बादशाह उठे, मुशायरा बर्खास्त हुआ और वह नौजवान वहां पत्थर की तरह दोनों हाथों में मुंह छिपाए बैठा रहा।

'अंधेरे और मनहूस कैदखाने में, जहां रोशनी की गुंजाइश न थी, एक सूराख से, जिसमें मुश्किल से हाथ जा सकता था, हवा और रोशनी आती थी, और उसीमें से दिन में एक बार दो रोटी और एक सुराही पानी कोई रख जाता था। बदनसीब नौजवान शहज़ादा ज़िंदा ज़मीन में दफना दिया गया था, जिसका कुसूर सिर्फ मुहब्बत थी। आह ! क्या शहज़ादियां पत्थर या आग की बनी होती हैं ? क्या शहज़ादी होने से उनमें से इन्सानियत चली जाती है, जो वे इन्सान के काबिल ही नहीं रहतीं ? क्या उनके दिल नहीं, हाड़-मांस नहीं और रहम-करम कुछ नहीं ? और ऐसे बादशाह, जो अपनी तमाम नाजुक-खयाली शेरों में खत्म करते हैं क्या यह नहीं समझ सकते ?

'इन्सान से इन्सान को मुहब्बत पैदा होनी अनहोनी बात तो नहीं। मगर मुगल-खानदान की शहज़ादियां हमेशा एक ऐसी अछूती चीज़ रहीं कि जिसने उनकी मुहब्बत का दम भरा, वह ज़हर देकर, आग में जलाकर, ज़िंदा दफन करके, पानी में डुबाकर या इस तरह सड़ाकर मार डाला गया। परन्तु युवक शहज़ादे के इन विचारों पर तरस खानेवाला वहां कौन था ?

'एक साल बीत गया। सत्तावन का साल था। ग़दर ने ग़ज़ब कर दिया था। सात सौ साल का जमा हुआ तख्त उलट गया था। बादशाह पकड़े जाकर नज़रबन्द किए गए। शहज़ादे कत्ल किए गए। शाही कैदी सभी छोड़ दिए गए। वह बदनसीब शहज़ादा भी उस अंधेरी और कब्र की तरह गंदी कोठरी से निकला। एक ही साल में वह बूढ़ा हो गया था—कमज़ोर, पीला और दुबला, हड्डियों का ढांचा रह गया था, मगर वह सीधा महरौली आया। आकर जो देखा, कलेजा थामकर बैठ गया। यह महल गदर में तोपों से उड़ा दिया गया था, और खंडहर हो गया था। पूछने से पता लगा—लैला उसी दिन, जब वह हादसा हुआ था, मर गई या मार डाली गई; और इसी महल में दफना दी गई थी।

एक पुरानी शाही बांदी ने, जिसने गदर में भागकर महरौली में रहना शुरू किया था, बताया कि यही कब्र शहज़ादी लैला की है।'

इतना कहकर बुड्ढा बहुत थककर चुप हो गया। वह किसी गहरे विषाद में डूब गया। हमने पूछा—जनाब! शहज़ादे का फिर क्या हुआ?

वह हंसा और बोला—उसने लैला की कब्र से निकाह किया, और तब से अब तक उसीके पास रात-दिन रहता है, उसे साफ रखता है, उसपर चिराग जलाता है, और साल में चार बार सफेदी करा देता है। इसी कब्र के पास उसने अठहत्तर साल व्यतीत कर दिए हैं।

हमने अकचकाकर पूछा—क्या वह अभी ज़िंदा है?

'यही बूढ़ा अपाहिज आदमी वह बदनसीब शहज़ादा है।'

अम्बपालिका

अम्बपालिका कहानी आचार्य ने सन् १९२८ में लिखी थी। हिन्दी में अम्बपालिका से सम्बन्धित यह सर्वप्रथम कहानी है। इसके बाद अम्बपालिका को लेकर अनेक कहानियां और उपन्यास भी लिखे गए तथा आचार्य ने आगे इसी आधार पर अपनी अमर रचना 'वैशाली की नगरवधू' लिखी। जिस समय यह कहानी लिखी गई थी, उस समय लेखक की दृष्टि में कथा का आधार बहुत अस्पष्ट था। उसका बाद में जो परिष्कार हुआ वह तो नगरवधू में व्यक्त है। इसमें लेखक के भीतर का उदीयमान साहित्यकार झांक रहा है।

मुज़फ्फरपुर से पश्चिम की ओर जो पक्की सड़क जाती है, उसपर मुज़फ्फरपुर से लगभग १८-२० मील पर 'बसाढ़' नामक एक बिल्कुल छोटा-सा गांव है, जिसमें ३०-४० घर भूमिहार ब्राह्मणों के और कुछ घर क्षत्रियों के बच रहे हैं। इस गांव के चारों ओर कोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियां ढेर की ढेर मिलती हैं, जो इस बात की स्मृति दिलाती हैं कि यहां कभी कोई बड़ा भारी समृद्धिशाली नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में ढाई हज़ार वर्ष पूर्व यहां एक विशाल नगर बसा था, जिसका नाम वैशाली था, और जो प्रबल प्रतापी लिच्छवि गणतन्त्र के शासन में था।

वैशाली लिच्छवि गणतन्त्र की एक प्रधान नगरी और रियासत थी। नगर व्यापारियों, जौहरियों, शिल्पकारों और भिन्न-भिन्न प्रकार के देश-विदेश के यात्रियों से परिपूर्ण था। 'श्रेष्ठि चत्वर' नगर का प्रधान बाज़ार था, जहां जौहरियों और बड़े-बड़े व्यापारियों की कोठियां थीं और जिनकी व्यापारिक शाखाएं समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थीं। दुकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए, पान कुचरते हंस-हंसकर ग्राहकों से बातें करते। जौहरी पन्ना, लाल, मूंगा, मोती, पुखराज, हीरा और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों की सान चढ़ाते, स्वर्ण-आभरणों में रंगीन रत्न जड़ते और मोती गूंथते थे। गन्धी लोग केसर के थैले हिलाते थे। चन्दन के तेलों में भिन्न-भिन्न सुगन्ध मिलाकर इत्र बनाए जाते और नागरिक उनका

खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दुकानों पर बगदाद और फारस के व्यापारी लम्बे-लम्बे लबादे पहने, भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलियां संकरी और तंग थीं और उनमें गगन-चुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी थीं, जिनके अंधेरे तहखाने में इन धन-कुबेरों का बड़ा भारी कोष और द्रव्य रखा रहता था।

सन्ध्या-समय सुन्दर श्वेत बैलों के रथों पर, जिनपर बढ़िया सुनहरा काम हुआ रहता था, नागरिक सैर करने राजपथ पर निकलते थे। इधर-उधर हाथी झूमते हुए बढ़ा करते थे और उनपर उनके अधिपति रत्नाभूषणों से सज्जित अपने दासों तथा शरीर-रक्षकों से घिरे हुए चला करते थे।

अभी दिन निकलने में देर थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड़ रही थी, पर मार्ग में अंधेरा था। राजमहल के तोरण पर अभी तक प्रकाश जल रहा था। चारों ओर प्रतिहार पड़े सो रहे थे। उनमें से केवल एक भाला टेककर खड़ा नीद में झूम रहा था। तोरण के इधर-उधर कई कुत्ते पड़े सो रहे थे।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजवर्गी इधर से उधर आने-जाने लगे। प्रतिहाररक्षी सेना का एक नवीन दल तोरण पर आ पहुंचा। उसमें से एक दण्डधर ने आगे बढ़कर भाले के सहारे खड़े-खड़े ऊंघते मनुष्य को पुकारकर कहा—महानामन ! सावधान होओ और घर जाकर विश्राम करो। महानामन ने सजग होकर अपने दीर्घ काय का और भी विस्तार करके एक ज़ोर की अंग-ड़ाई ली और यह कहकर कि तुम्हारा कल्याण हो, वह अपना भाला धरती पर टेकता हुआ तीसरे तोरण की ओर बढ़ गया। पश्चिम की ओर पुराना प्रासाद और राजमहल का उपवन था, जिसकी देख-रेख महानामन के सुपुर्द थी। यहीं उसकी छोटी-सी कुटिया थी, जहां वह अपनी प्रौढ़ा पत्नी के साथ १७ वर्ष से एकरस—आंधी-पानी, सर्दी-गर्मी में रहता था।

वह नींद में झूमता हुआ ऊंघ रहा था। अब भी प्रभात का प्रकाश धुंधला था। उसने अपनी कुटी के पास एक कदली वृक्ष के नीचे, आम्रकुंज में एक श्वेत वस्तु पड़ी रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्रों में लिपटा अपना अंगूठा चूस रहा है। आश्चर्य-चकित होकर महानामन

ने शिशु को उठा लिया। देखा, कन्या है। उसने अपनी स्त्री को पुकारकर उसे वह कन्या देकर कहा—देखो, आज इस प्रकार अपने जीवन की पुरानी साध मिटी।

वह कन्या—उस दरिद्र लिच्छवि महानामन के उस दरिद्रावास में शशिकला की भांति बढ़ने लगी। उसका नाम रखा गया अम्बपालिका।

वैशाली से उत्तर-पश्चिम पच्चीस कोस पर, एक छोटे-से गांव में, एक किनारे पर एक साधारण घर था। उसके द्वार पर एक वृद्ध प्रातःकाल बैठा दातुन कर रहा था। पूर्व के द्वार पर से पैर की आहट सुनकर उसने पीछे को देखा, एक चम्पक पुष्प की कली के समान एकादशवर्षीया, अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुंघराले बाल लहलहा रहे थे दौड़ती-दौड़ती बाहर आई और वृद्ध को देख उससे लिपटने को लपकी, पर पैर फिसलने से गिर गई। वह गिरकर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक दौड़कर बालिका को उठाया; उसकी धूल झाड़ी; बालिका ने रोना रोककर कहा—बाबा, घर में आटा बिल्कुल नहीं है, हम लोग क्या खाएंगे ? वृद्ध ने उसे गोद में उठाते हुए कहा—कुछ चिन्ता नहीं, मैं अभी गेहूं पिसवाने की व्यवस्था करता हूं। बालिका ने कहा—गेहूं का एक भी तो दाना नहीं है। वृद्ध क्षण-भर अवाक् रहा। उसने कहा—तब ठहर, मैं अभी शिकार मार लाता हूं। बालिका ने रोककर कहा—नहीं, नहीं, मैं पक्षी का मांस नहीं खाऊंगी।

वृद्ध महानामन लिच्छवि था और कन्या थी अम्बपालिका। वृद्ध की पत्नी का स्वर्गवास हुए आठ साल व्यतीत हो गए थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख, महानामन ने राज-सेवा छोड़कर अपने ग्राम में आकर बालिका की सेवा-शुश्रूषा अबाधरूप से करने का निश्चय कर लिया था। वह गत आठ वर्षों से इसी गांव में रहता था। अम्बपालिका को उसने इस तरह पाला जैसे पक्षी चुग्गा दे-देकर अपने शिशु पक्षी को पालता है। परन्तु खेद है, धीरे-धीरे उसकी छोटी-सी कमाई की क्षुद्र पूंजी, यत्न से खर्च करने पर भी समाप्त हो ही गई। और फिर धीरे-धीरे पत्नी के स्मृति-रूप दो-चार क्षुद्र आभूषण भी उदर-गुहा में पहुंच चुके। अब आज क्या किया जाए ? अब तो आटा भी नहीं, एक दाना गेहूं भी नहीं। वृद्ध की प्राणों की पुतली इस प्रश्न पर चिन्तित हो

रही थी। यह और भी कष्ट का प्रश्न था। पर वृद्ध ने हंसकर कहा—अच्छा, अच्छा, मैं अभी गेहूं लिए आता हूं। इतना कहकर वृद्ध ने बालिका के तड़ातड़ तीन-चार चुम्बन लिए और उसे गोद से उतारते-उतारते दो बूंद आंसू गिरा दिए। बालिका भीतर गई और वृद्ध चिन्तामग्न बैठ गया। अन्ततः उसने एक बार फिर महाराज की सेवा में उपस्थित होकर पुरानी नौकरी की याचना करने का निश्चय किया। उसके बाहु का पौरुष तो थक चुका था। परन्तु क्या किया जाए, कन्या का विचार सर्वोपरि था। फिर भी वृद्ध के अति गम्भीर होने का यही मात्र कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा में बल था; बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी: बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। सहस्राधिक बालिकाएं भी क्या उस पारिजात-कुसुम-तुल्य कुन्द-कलिका के समान थीं? किस पुष्प में उतनी गन्ध, कोमलता और सौन्दर्य था? उसे भय था कि राज-नियमानुसार वह विवाह से वंचित करके कहीं नगर-वेश्या न बना दी जाए; क्योंकि लिच्छवि-गणतन्त्र में यह कानून था कि राज्य की जो कन्या अत्यधिक सुन्दरी होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न होने दिया जाकर नागरिकों के लिए सुरक्षित रखा जाया करता था। वास्तव में इसी भय से महानामन राजधानी छोड़कर भागा था, जिससे किसीकी दृष्टि उस बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था। महानामन ने राजधानी में एक बार जाने का निश्चय किया।

वैशाली की ओर जाने वाली सड़क पर वर्षा के कारण बड़ी कीचड़ हो रही थी। कहीं-कहीं तो नालों का पानी कच्ची सड़क को तोड़कर सड़क पर नदी की तरह बह रहा था। अभी वर्षा हो चुकी थी। वृद्ध और उसकी पुत्री दोनों भीग गए थे, पर धीरे-धीरे बढ़े चले जा रहे थे। हवा बन्द थी, गर्मी बढ़ गई थी और दूरस्थ पर्वतों की चोटियों में अस्त होते हुए सूर्य को देख-देखकर वृद्ध डर रहा था। निकट किसी बस्ती के चिह्न न थे। यदि यहीं चौपट में अंधेरा हो गया तो कहां रात कटेगी, बच्ची खायेगी क्या, यही वृद्ध के भय का कारण था। वह लाठी टेकता-टेकता धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह स्वयं बहुत थक गया था और बालिका तो क्षण-क्षण में विश्राम की इच्छा प्रकट कर रही थी। बालिका ने कहा—पिता! अब मैं और नहीं चल सकती, मेरे पैरों में देखो, लोहू बह रहा है, वे फट गए हैं। वृद्ध ने स्नेह से उसे चुमकारकर कहा—बस, अब थोड़ी

दूर ओर ; निकट ही कहीं गांव या बस्ती मिलने पर ठहरने में सुभीता रहेगा। पर बालिका और कुछ पग चलकर मार्ग में ही एक ऊंची जगह पर बैठ गई। वृद्ध भी निरुपाय हो, पास ही बैठ गया। अन्धकार ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया।

सहसा बालिका ने चौंककर कहा—पिता जी. देखो, घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दे रहा है! बुड्ढे ने उठकर दूर तक दृष्टि करके देखा। सड़क के निकट एक घना सेमल का वृक्ष था, जिसके नीचे घोर अन्धकार था। वृद्ध कन्या का हाथ पकड़, वहीं जा छिपा। आकाश में अब भी बादल घिर रहे थे और फिर ज़ोर की वर्षा होने के रंग-ढंग दीख पड़ते थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक जाती थी। थोड़ी देर बाद बहुत-से सवार वहां तक आ पहुंचे। वर्षा भी शुरू हो गई। सवारों ने निश्चय किया कि उस वृक्ष के नीचे आश्रय लें।

वृद्ध भय से बालिका को छाती में छिपाए वृक्ष की जड़ में चिपककर बैठ गया। सहसा बिजली की चमक में अश्वारोहियों ने वृक्ष के निकट मनुष्य-मूर्ति देखकर कहा—अरे! वृक्ष के निकट यह कौन है? वृद्ध वहां से हटकर चुपचाप खेत में जाने लगा। तत्क्षण एक बर्छा आकर उसकी छाती को विदीर्ण कर गया। वृद्ध एक चीत्कार करके धरती पर गिर गया। बालिका ज़ोर से चिल्ला उठी।

अश्वारोही दल ने निकट जाकर देखा—मृत पुरुष वृद्ध और निरस्त्र है। पर कन्या को देखते ही बर्छा फेंकने वाले सवार ने कहा—वाह! बूढ़े को मारकर रत्न मिला! इसमें किसीका साझा नहीं है।

बालिका भय और शोक से चिल्ला उठी। अश्वारोही ने उसकी परवाह न कर, उसे उठाकर घोड़े पर रख लिया और आगे बढ़े।

वैभवशालिनी वैशाली का जो 'श्रेष्ठि चत्वर' नामक बाज़ार था, उसके उत्तरी कोण पर एक विशाल प्रासाद था, जिसके गुम्बजों का प्रकाश रात्रि को गङ्गा-पार से भी दीखता था। बाहर का सिंहद्वार विशाल पत्थरों का बनाया गया था, जिसे उठाना और जोड़ना दैत्यों का ही काम हो सकता था। इन पत्थरों पर स्थापत्यकला और शिल्प की सूक्ष्म बुद्धि खर्च की गई थी। ड्योढ़ी पर गहरा हरा रंग किया हुआ था और ऊंचे महराबदार फाटक पर फूलों की गुंथी हुई सुन्दर मालाएं लटक रही थीं। पहले आंगन में प्रवेश करने पर श्वेत अट्टालिकाओं की पंक्ति दीख पड़ती थी। उनकी दीवारों पर कांच की तरह चमकदार

श्वेत पलस्तर किया गया था। सीढ़ियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के खुदरंग बहुमूल्य पत्थर लगे थे, और खिड़कियों पर बिल्लौर के किवाड़ थे, जिनमें श्रेष्ठि-चत्वर की बहार बैठे ही बैठे दीख पड़ती थी। दूसरे आंगन में गाड़ी, बैल, घोड़े, हाथी बंधे थे और महावत उन्हें चावल-घी खिला रहे थे। तीसरे आंगन में अतिथिशाला तथा आगत जनों के ठहरने का प्रबन्ध था। यहां बहुत सुन्दर विशाल पत्थरों के खम्भों पर महराब खड़े हुए थे। चौथे आंगन में नाट्यशाला और गायनभवन था। पांचवें आंगन में भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्पकार और जौहरी लोग नाना प्रकार के आभूषण बना और रत्नों को घिस रहे थे। छठे आंगन में भिन्न-भिन्न देश के पशु-पक्षियों का अद्भुत संग्रह था। सातवां आंगन बिलकुल श्वेत पत्थर का बना था, और उसमें सुनहरा काम हो रहा था। इसमें दो भीमकाय सिंह स्वर्ण की मेखलाओं से दृढ़तापूर्वक बंधे थे और चांदी के पात्रों में पानी भरा उनके निकट धरा था। गृह-स्वामिनी अम्बपालिका इसी कक्ष में विराजती थी।

सन्ध्या हो गई थी। परिचारक और परिचारिकाएं दौड़-धूप कर रही थीं। कोई सुगन्धित जल आंगन में छिड़क रही थी, कोई धूप जलाकर भवन को सुवासित कर रही थी, कोई सहस्र दीप-गुच्छ में सुगन्धित तेल डालकर प्रकाशित करने में व्यस्त थी। बहुत-से माली तोरण और अलिन्द पर ताज़े पुष्पों के गुलदस्ते और मालाओं को सजा रहे थे। अलिन्द में दण्डधर अपने-अपने स्थानों पर भाला टेके स्थिर भाव से खड़े थे। द्वारपाल तोरण पर अपने द्वार-रक्षक दल के साथ सशस्त्र उपस्थित था।

क्षण-भर बाद प्रासाद भांति-भांति के रंगीन प्रकाशों से जगमगा उठा। भांति-भांति के रंगीन फव्वारे चलने लगे और उनपर प्रकाश का प्रतिबिम्ब इन्द्रधनुष की बहार दिखाने लगा। धीरे-धीरे प्रतिष्ठित नागरिक कोई पालकी में, कोई रथ पर और कोई हाथी पर चढ़कर प्रथम तोरण पार कर आने लगे। परिचारक-गण दौड़-दौड़कर अतिथियों को सादर उतारकर भीतरी अलिन्द में पहुंचाने तथा उनकी सवारियों की व्यवस्था करने लगे। हाथी-घोड़े, रथ, पालकी आदि वाहनों का तांता लग गया। उनकी भीड़ से बाहर का विशाल प्राङ्गण भर गया।

सातवें तोरण के भीतर श्वेत पत्थर के एक विशाल सभा-भवन में अम्ब-

पालिका नागरिक युवकों की अभ्यर्थना कर रही थी। यह भवन एक टुकड़े के चौंसठ हरे रंग के पत्थर के खम्भों पर निर्मित हुआ था, और इसपर रंगीन रत्नों को जड़कर फूल-पत्ती, पक्षी तथा वन के दृश्य बनाए गए थे। छत पर स्वर्ण का पत्तर मढ़ा था, जहां पर बारीक खुदाई और रंगीन मीना का काम हो रहा था। इस विशाल भवन में दुग्ध-फेन के समान उज्ज्वल वर्ण का अति मुलायम और बहमूल्य बिछावन बिछा था। थोड़े-थोड़े अन्तर से बहुत-सी वेदियां पृथक्-पृथक् बनी थीं, जहां कोमल उपाधान, मद्य के स्वर्ण-पात्र और प्यालियां, जुआ खेलने के पासे तथा अन्य विनोद-सामग्री, भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रन्थ, बहुमूल्य चित्र तथा अन्य बहुत-सी मनोरंजन की सामग्री थी।

महाप्रतिहार अलिन्द तक अतिथि युवकों को लाता, वहां से प्रधान परि-चारिका उसे कक्ष तक ले आती। कक्ष-द्वार पर स्वयं अम्बपालिका साक्षात् रति के समान आगत जनों का हाथ पकड़कर स्वागत करती, एक वेदी पर ले जाकर बैठाती, सुगन्ध और पुष्प-मालाओं से सत्कार करती तथा अपने हाथ से मद्य ढालकर पिलाती थी। उस स्वर्ग-सदन में, रूप-यौवन और जीवन के आलोक में, अर्द्ध रात्रि तक नित्य ही माधुर्य और आनन्द का प्रवाह बहता था। सैकड़ों दासियां दौड़-धूप करके याचित वस्तु तत्काल जुटा देतीं। फिर कुछ ठहरकर संगीत-लहरी उठती। कोमल तन्तु-वाद्य गम्भीर मृदंग के साथ वैशाली के श्रेष्ठि-पुत्रों, राजवर्गियों और कुमारों के हृदयों को मसोस डालता था। वाद्य की ताल पर मोम की पुतली के समान कुमारियां मधुर स्वर में स्वर-ताल और मूर्च्छनामय संगीत-गान करतीं, और नर्तकियां ठुमककर नाचती थीं। उस स्वप्न-सौंदर्य के दृश्य को युवक सुगन्धित मद्य के घूंट के साथ पीकर अपने जन्म को धन्य मानते थे।

अम्बपालिका अब बीस वर्ष की पूर्ण युवती थी। उसका यौवन और सौंदर्य मध्याकाश में था। और लिच्छवि गणतन्त्र के राजा ही नहीं, मगध, कोशल और विदेश के महाराजा तक उसके लिए सदैव अभिलाषी बने रहते थे। इन सभी महानृपतियों की ओर से रत्न, वस्त्र, हाथी आदि भेंट में आते रहते थे और अम्बपालिका अपनी कृपा और प्रेम के चिह्न-स्वरूप कभी-कभी ताजे फूलों की एकाध माला तथा कुछ गन्ध-द्रव्य उन्हें प्रदान कर दिया करती थी।

विधाता ने मानो उसे स्वर्ण से बनाया था। उसका रंग गोरा ही न था,

उसपर सुनहरी प्रभा थी—जैसी चम्पे की अविकसित कली में होती है। उसके शरीर की लचक, अङ्गों की सुडौलता वर्णन से बाहर की बात थी। उस सौंदर्य में विशेषता यह थी कि समय का अत्याचार भी उस सौंदर्य को नष्ट न कर सकता था। जैसे मोती का पर्त उतार देने से भीतर से नई आभा, नया पानी दमकने लगता है, उसी प्रकार अम्बपालिका का शरीर प्रतिवर्ष निखार पाता था। उसका कद कुछ लम्बा, देह मांसल और कुच पीन थे। तिसपर उसकी कमर इतनी पतली थी कि उसे कटिबन्ध बांधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चैतन्य थे, मानो प्रकृति ने उन्हें नृत्य करने और आनन्द-भोग करने को बनाया था।

उसके नेत्रों में सूक्ष्म लालसा की झलक और दृष्टि में गज़ब की मदिरा भर रही थी। उसका स्वभाव सतेज था, चितवन में दृढ़ता, निर्भीकता, विनोद और स्वेच्छाचारिता साफ झलकती थी। उसे देखते ही आमोद-प्रमोद की अभिलाषा प्रत्येक पुरुष के हृदय में उत्पन्न हो जाती थी।

जैसा कहा जा चुका है, उसकी रंगत पर एक सुनहरी झलक थी; गाल कोमल और गुलाबी थे; ओठ लाल और उत्फुल्ल थे, मानो कोई पका हुआ रसीला फल चमक रहा हो। उसके दांत हीरे की तरह स्वच्छ चमकदार और अनार की पंक्ति की तरह सुडौल, कुच पीन तथा अनीदार थे · नाक पतली, गर्दन हंस जैसी, कन्धे सुडौल, बाहु मृणाल जैसी थी। सिर के बाल काले, लम्बे और घुंघराले तथा रेशम से भी मुलायम थे। आंखें काली और कंटीली, उंगलियां पतली और मुलायम थीं। उनपर उसके गुलाबी नाखूनों की बड़ी बहार थी। पैर छोटे और सुन्दर थे। जब वह ठसक के साथ उठकर खड़ी हो जाती तो लोग उसे एकटक देखते रह जाते थे। उसकी भुजाओं और देह का पूर्व भाग सदा खुला रहता था।

वैशाली में बड़ी भारी बेचैनी फैल गई। अश्वारोही दल के दल नगर के तोरण से होकर नगर से बाहर निकल रहे थे। प्रतिहार लोग और किसीको न बाहर निकलने देते थे और न भीतर घुसने देते थे। तोरण के इधर-उधर बहुत-से नागरिक सेना का यह अकस्मात् प्रस्थान देख रहे थे। एक पुरुष ने पूछा—क्यों भाई, जानते हो, यह सेना कहां जा रही है?—दूसरे ने कहा—न, यह कोई

नहीं जानता। अश्वारोही दल निकल गया। पीछे कई सेना-नायक धीरे-धीरे परामर्श करते चले गए।

क्षण-भर में सम्वाद फैल गया। मगध के प्रतापी सम्राट शिशुनागवंशी बिम्बसार ने वैशाली पर चढ़ाई की। गंगा के दक्षिण छोर पर दुर्जय मागध सेना दृष्टि के उस छोर से इस छोर तक फैली हुई थी। इस सेना में दस हज़ार हाथी, पचास हज़ार अश्वारोही और पांच लाख पैदल थे।

वैशाली के लिच्छवि गणतन्त्र का प्रताप भी साधारण न था। गंगा के उत्तर कोण पर देखते-देखते सैन्य-समूह एकत्रित हो गया। लिच्छवियों के पास आठ हज़ार हाथी, एक लाख अश्वारोही और छह लाख पैदल थे।

तीन दिन तक दोनों दल आमने-सामने डटे रहे। तीसरे दिन लिच्छवि लोगों ने देखा, उस पार डेरों की संख्या कम हो गई है। निपुण सैनिक सहस्रों घाट से पार आने की तैयारी कर रहे हैं, यह समझने में देर न लगी। दोपहर होते-होते मगध सेना गंगा पार करने लगी। लिच्छवि-सेना चुपचाप खड़ी रही। ज्यों ही कुछ सेना ने भूमि पर पैर रखा त्यों ही वैशाली की सेना जयजयकार करते बढ़ चली, मानो सहस्र उल्कापात हुए हों। मेघ-संघर्षण की तरह घोर गर्जना करके दोनों सेनाएं भिड़ गईं। मगध सेना की गति रुक गई। बाण, बर्छे और तलवारों की प्रलय मच गई। उस दिन दिन-भर संग्राम रहा। सूर्यास्त देख, दोनों सेनाएं पीछे को फिरीं।

दो मास से नगर का घेरा जारी है। बीच-बीच में युद्ध हो जाता है। कोई पक्ष निर्बल नहीं होता। नगर की तीन दिशाएं मागध-शिविर से घिरी हैं। बीच में जो सबसे बड़ा डेरा है, उसके ऊपर सोने का गरुड़ध्वज अस्त होते सूर्य की किरणों से अग्नि की तरह दमक रहा है। उसके आगे एक स्वर्ण पीठ पर गौर वर्ण सम्राट विराजमान हैं। निकट एक-दो विश्वासी पार्षद हैं। सम्राट अति सुन्दर, बलिष्ठ और गम्भीरमूर्ति हैं। नेत्रों में तेज और स्नेह, दृष्टि में वीरत्व और औदार्य तथा प्रतिभा में अदम्य तेज प्रकट हो रहा है। सम्राट आधे लेटे हुए कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। एक कर्णिक नीचे बैठा उनके आदेशानुसार लिखता जाता है। एक दण्डधर ने आगे बढ़कर पुकारकर कहा—महानायक युवराज भट्टारकपादीय

गोपालदेव तोरण पर उपस्थित हैं। सम्राट ने चौंककर उधर देखा और भीतर बुलाने का संकेत किया। साथ ही कणिक और मन्त्री को विदा किया।

गोपालदेव ने तलवार म्यान से खींच शीश से लगाई और फिर विनम्र निवेदन किया—महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सब व्यवस्था ठीक है; देवश्री पधारने का कष्ट करें। सम्राट के नेत्रों में उत्फुल्लता उत्पन्न हुई। वे उठकर वस्त्र पहनने के लिए पट-मण्डप में घुस गए।

वैशाली के राजपथ जनशून्य थे, दो प्रहर रात्रि जा चुकी थी, युद्ध के आतंक ने नगर के उल्लास को मूच्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अन्धकारमयी रात्रि में भयानक भूत-से प्रतीत होते थे। धीरे-धीरे दो मनुष्य-मूर्तियां अन्धकार का भेदन करती हुई वैशाली के गुप्त द्वार के निकट पहुंचीं। एक ने द्वार पर आघात किया, भीतर से प्रश्न हुआ—संकेत ?

मनुष्य-मूर्ति ने कहा—अभिनय !

हल्की चीत्कार करके द्वार खुल गया। दोनों मूर्तियां भीतर घुसकर राजपथ छोड़, अन्धेरी गलियों में अट्टालिकाओं की परछाईं में छिपती-छिपती आगे बढ़ने लगीं। एक स्थान पर प्रहरी ने बाधा देकर पूछा—कौन ? एक व्यक्ति ने कहा—आगे बढ़कर देखो। प्रहरी निकट आया। हठात् दूसरे व्यक्ति ने उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। दोनों फिर आगे बढ़े। अम्बपालिका के द्वार पर अन्ततः उनकी यात्रा समाप्त हुई। द्वार पर एक प्रतिहार मानो उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। संकेत करते ही उसने द्वार खोल दिया और आगन्तुकगण को भीतर लेकर द्वार बन्द कर लिया।

आज इस विशाल राजमहल सदृश भवन में सन्नाटा था। न रंग-बिरंगी रोशनी, न फव्वारे, न दास-दासीगण की दौड़-धूप। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतिहार के साथ जा रहे थे। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा, एक और मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—इधर से पधारिए श्रीमान ! प्रतिहार वहीं रुक गया। नवीन व्यक्ति स्त्री थी और वह सर्वांग काले वस्त्र से ढांपे हुए थी। दोनों आगन्तुक कई प्राङ्गण और अलिन्द पार करते हुए कुछ सीढ़ियां उतरकर एक छोटे-से द्वार पर पहुंचे जो चांदी का था और जिसपर अतिशय मनोहर जाली का काम हो रहा था और उसी जाली में से

छन-छनकर रंगीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा : एक बहुत बड़ा कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि उतना बड़ा नहीं, जहां नागरिक जनों का प्रायः स्वागत होता था, परन्तु सजावट की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह समस्त भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बड़े-बड़े बिल्लौर के अठपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हूबहू प्रतिबिम्ब सहस्रों की संख्याओं में दीखता था। बड़े-बड़े और भिन्न-भिन्न भावपूर्ण चित्र टंगे थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। समस्त कक्ष भीनी सुगन्ध से महक रहा था। धरती पर एक महामूल्यवान रंगीन बिछावन था। जिसपर पैर पड़ते ही हाथ-भर धंस जाता था। बीचोंबीच एक विचित्र आकृति की सोलह-पहलू सोने की चौकी पड़ी थी, जिसपर मोरपंख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चन्दोवा तन रहा था। और पीछे रंगीन रेशम के परदे लटक रहे थे, जिसमें ताज़े पुष्पों का शृंगार बड़ी सुघड़ाई से किया गया था। निकट ही एक छोटी-सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का एक बड़ा-सा पात्र धरा हुआ था।

हठात् सामने का परदा उठा और उसमें से वह रूप-राशि प्रकट हुई जिसके बिना अलिन्द शून्य हो रहा था। उसे देखते ही आगन्तुकगण में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हटकर कक्ष से बाहर हो गया, दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा खड़ा रहा। अम्बपालिका आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत रेशम की पोशाक पहने हुए थी। वह इतनी बारीक थी कि उसके आर-पार साफ दीख पड़ता था। उसमें से छनकर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रंग कमर तक ही था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी। इसलिए उसकी कमर के ऊपर के अंग-प्रत्यंग साफ दीख पड़ते थे।

विधाता ने उसे किस क्षण में गढ़ा था! हमारी तो यह धारणा है कि कोई चित्रकार न तो वैसा चित्र ही अंकित कर सकता था और न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

उस भुवन-मोहिनी की वह छटा आगन्तुक के हृदय को छेदकर पार हो गई। गहरे काले रंग के बाल उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कंधों पर लहरा रहे थे।

स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुथा हुआ आभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आंखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्बाफल जैसे अधर-ओष्ठ और अनार-दाने के समान उज्ज्वल दांत, गोरा और गोल चिबुक बिना ही शृंगार के अनुराग और आनन्द बखेर रहा था। अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व की वह वैशाली की वेश्या ऐसी ही थी।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख साफ देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला-सा बहुमूल्य रंगीन शाल लपेटे हुए थी। हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अंगूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी और गोरी-गोरी गोल कलाइयों में नीलम की पहुंची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान बारीक उज्ज्वल परिधान के नीचे, सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्भुत घाघरा था, जो उस प्रकाश में बिजली की तरह चमक रहा था। पैरों में छोटी-छोटी लाल रंग की उपानत थीं, जो सुनहरी फीते से कस रही थीं।

उस समय कक्ष में गुलाबी रंग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपालिका का मानो परदा चीरकर इस रूप-रंग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत हुआ। वह अभी तक स्तब्ध खड़ा था। धीरे-धीरे अम्बपालिका आगे बढ़ी। उसके पीछे १६ दासियां एक ही रूप और रंग की, मानो पाषाण-प्रतिमाएं ही आगे बढ़ रही थीं।

अम्बपालिका धीरे-धीरे आगे बढ़कर आगन्तुक के निकट आकर झुकी और फिर घुटने के बल बैठ, उसने कहा—परमेश्वर, परम वैष्णव, परम भट्टारक, महाराजाधिराज की जय हो! इसके बाद उसने सम्राट के चरणों में प्रणाम करने को सिर झुका दिया। दासियां भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महाप्रतापी मगध-सम्राट बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ाकर अम्बपालिका को ऊपर उठाया। अम्बपालिका ने निवेदन किया—महाराजाधिराज पीठ पर विराजें। सम्राट ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका, वे पीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपालिका ने नीचे धरती पर बैठकर सम्राट का गन्ध, पुष्प आदि से सत्कार किया। इसके बाद उसने अपनी मद-भरी आंखें सम्राट पर डालकर

कहा—महाराजाधिराज ने बड़ी अनुकम्पा की, बड़ा कष्ट किया।

सम्राट ने किंचित् मोहक स्वर में कहा—अम्बपाली ! यदि मैं यह कहूं कि केवल विनोद के लिए आया हूं तो यह यथार्थ बात नहीं। मैं तुम्हारे रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर स्थिर नहीं रह सका, और इस कठिन युद्ध में व्यस्त रहने पर भी तुम्हें देखने के लिए शत्रुपुरी में घुस आया, परन्तु तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है।

अम्बपालिका—(लज्जित-सी होकर ज़रा मुस्कराकर) मैं पहले ही सुन चुकी हूं कि देव स्त्रियों की चाटुकारी में बड़े प्रवीण हैं।

सम्राट—चाटुकारी नहीं, अम्बपालिके ! तुम वास्तव में रूप और गुण में अद्वितीय हो।

अम्बपालिका—श्रीमान, मैं कृतार्थ हुई ! इसके बाद वह अपने मुक्ता-विनिन्दित दांतों की छटा दिखाते हुए सम्राट की सेवा में खड़ी हुई। सम्राट ने प्याला ले और उसे खींचकर बगल में बैठा लिया। संकेत पाते ही दासियों ने क्षण-भर में गायन-वाद्य का सरंजाम जुटा दिया। कक्ष संगीत-लहरी में डूब गया और उस गम्भीर निस्तब्ध रात्रि में मगध के प्रतापी सम्राट उस एक वेश्या पर अपने साम्राज्य को भूल बैठे !

एक वर्ष बीत गया। प्रतापी लिच्छवि-राज मगध-साम्राज्य के आगे मस्तक नत करने को बाध्य हुए। अब वैशाली में वह उमंग न थी। अम्बपालिका का द्वार सदैव बन्द रहता था। द्वार पर कड़ा पहरा था। कोई व्यक्ति न उसे देख सकता था, न उससे मिल सकता था। उसके बहुत-से युवक मित्र उस युद्ध में निहत हुए थे। पर जो बच रहे थे वे अम्बपाली के इस परिवर्तन पर आश्चर्यान्वित थे। वे किसी भी तरह उसका साक्षात् न कर सकते थे। दूर-दूर तक यह बात फैल गई थी।

अम्बपालिका के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सैनिक और अनुचरों में से भी केवल दो व्यक्ति थे जो अम्बपाली को देख सकते और उससे बात कर सकते थे। एक प्रधान परिचारिक यूथिका, दूसरा एक वृद्ध दण्डधर जिसे भीतर-बाहर सर्वत्र आने की स्वतन्त्रता थी। सम्राट का आगमन केवल इन्हीं दोनों को मालूम था और ये दोनों ही यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपालिका को सम्राट से गर्भ है।

यथासमय पुत्र-प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर प्रकट हुआ। और वह पुत्र उसी दण्डधर ने गुप्त रूप से राजधानी में जाकर मगध-सम्राट की गोद में डालकर, अम्बपालिका का अनुरोध सुनाकर कहा—महाराजाधिराज की सेवा में मेरी स्वामिनी ने निवेदन किया है कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट आपके चरणों में समर्पित हैं। सम्राट ने शिशु को सिंहासन पर डालकर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल नयन से कहा—मगध के भावी सम्राट का झटपट अभिवादन करो। दण्डधर ने कोश से तलवार निकाल मस्तक पर लगाई और तीन बार जयघोष करके तलवार शिशु के चरणों में रख दी। सम्राट ने तलवार उठाकर वृद्ध की कमर में बांधते-बांधते कहा—अपनी स्वामिनी को मेरी यह तुच्छ भेंट देना। यह कहकर उन्होंने एक वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी, यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

भगवान बुद्ध वैशाली में पधारे हैं और अम्बपालिका की बाड़ी में ठहरे हैं। आज हठात् अम्बपालिका के महल में हलचल मच रही है। सभी दास-दासी, प्रतिहार, द्वारपाल दौड़-धूप कर रहे हैं। हाथी, घोड़े, पालकी, रथ सज रहे हैं। सवार शस्त्र-सज्जित हो रहे हैं। अम्बपालिका भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही है। एक वर्ष बाद आज वह फिर सर्वसाधारण के सम्मुख निकल रही है। समस्त वैशाली में यह समाचार फैल गया है। लोग झुण्ड के झुण्ड उसे देखने राजमार्ग पर डट गए हैं। अम्बपालिका एक श्वेत हाथी पर सवार होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे है, उसके पीछे अश्वारोही दल है और उसके बाद हाथियों पर भगवान की पूजा-सामग्री। सबके पीछे बहुत-से वाहन, कर्मचारी और पौरगण।

अम्बपालिका एक साधारण पीतवर्ण परिधान धारण किए अधोमुख बैठी है। एक भी आभूषण उसके शरीर पर नहीं है। बाड़ी से कुछ दूर ही उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह पैदल भगवान के निवास तक पहुंची, पीछे सौ दासियों के हाथ में पूजन-सामग्री थी।

तथागत बुद्ध की अवस्था अस्सी वर्ष को पार कर गई थी। एक गौरवर्ण, दीर्घ-काय, श्वेतकेश, कृश, किन्तु बलिष्ठ महापुरुष पद्मासन से शान्त मुद्रा में एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। सहस्रावधि शिष्यगण दूर तक मुण्डितशिर और पीत

वस्त्र धारण किए स्तब्ध-से श्रीमुख के प्रत्येक शब्द को हृत्पटल पर लिख रहे थे। आनन्द नामक शिष्य ने निवेदन किया—प्रभु ! अम्बपालिका दर्शनार्थ आई है। तथागत ने किंचित् हास्य से अपने करुण नेत्र ऊपर उठाए। अम्बपालिका धरती में लोटकर कहने लगी—प्रभो ! त्राहि माम् ! त्राहि माम् !

भगवान ने कहा—कल्याण ! कल्याण !—आनन्द ने कहा—उठो अम्ब-पाली ! महाप्रभु प्रसन्न हैं। अम्बपाली ने यथाविधि भगवान का अर्घ्यदान, पाद्य, मधुपर्क से पूजन किया और चरण-रज नेत्रों में लगाई, फिर हाथ बांध सम्मुख खड़ी हो गई।

भगवान ने हंसकर कहा—अब और क्या चाहिए अम्बपाली ?

'प्रभो ! भगवन् ! इस अपदार्थ का आतिथ्य स्वीकार हो, इन चरण-कमलों की देवदुर्लभ रज-कण किङ्करी की कुटिया को प्रदान हो।'

प्रभु ने करुण स्वर में कहा—तथास्तु !—भिक्षुगण सहस्र कण्ठ से जयोल्लास में चिल्ला उठे। परन्तु यह क्या ? उस नाद को विदीर्ण करता हुआ एक और नाद उठा। भगवान ने पूछा—आनन्द ! यह क्या है ?—प्रभो ! लिच्छविराजवर्ग और अमात्यवर्ग श्रीपाद-पद्म के दर्शनार्थ आ रहे हैं।—प्रभु हंस पड़े। अम्ब-पालिका हट गई। प्रतापी लिच्छविराजागण, राजकुमार, अमात्यवर्ग और अंतःपुर ने एकसाथ ही भगवान के चरणों में महान मस्तक झुका दिए। भगवान ने कहा—कल्याण ! कल्याण !!

महाराज ने पद-धूलि मुकुट पर लगाकर कहा—महाप्रभु ! यह तुच्छ राज-धानी इन चरणों के पधारने से कृतकृत्य हुई। परन्तु प्रभो ! यह वेश्या की बाड़ी है, श्रीचरणों के योग्य नहीं। प्रभु के लिए राजप्रासाद प्रस्तुत है और राजवंश प्रभु-पद-सेवा को बहुत उत्सुक है। भगवान ने हंसकर कहा—तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अन्तर है ? तथागत समदृष्टि है।

'प्रभो ! तब कल का आतिथ्य राज-परिवार को प्रदान कर कृतार्थ करें।'

'वह तो मैं अम्बपाली का स्वीकार कर चुका !'

राजा निरुत्तर हुए। वे फिर प्रणाम कर लौटे। कुछ श्वेत वस्त्र धारण किए थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण पहने थे।

अम्बपालिका रथ में बैठकर लौटी। उसने आज्ञा दी—मेरा रथ लिच्छवि महाराजाओं के बराबर हांको। उनके पहिए के बराबर मेरा पहिया और उनके

धुरे के बराबर मेरा धुरा रहे, तथा उनके घोड़े के बराबर मेरा घोड़ा।

लिच्छवियों ने देखकर क्रोधमिश्रित आश्चर्य से पूछा—अम्बपालिके, यह क्या बात है ? तू हम लोगों के बराबर अपना रथ हांक रही है ?

उसने उत्तर दिया—मेरे प्रभु ! मैंने तथागत और उनके शिष्यवर्ग को भोज़न का निमन्त्रण दिया है और वह उन्होंने स्वीकार किया है।

उन्होंने कहा—हे अम्बपाली ! हमसे एक लाख स्वर्ण-मुद्रा ले और यह भोजन हमें कराने दे।

'मेरे प्रभु, यह सम्भव ही नहीं है !'

'तब सौ ग्राम ले और यह निमन्त्रण हमें बेच दे।'

'नहीं स्वामी ! कदापि नहीं।'

'आधा राज्य ले और यह निमन्त्रण हमें दे दे।'

'मेरे प्रभु ! आप एक तुच्छ भूखण्ड के स्वामी हैं, पर यदि समस्त भूमण्डल के चक्रवर्ती भी होते और अपना समस्त साम्राज्य मुझे देते तो भी मैं ऐसी कीर्ति की जेवनार को नहीं बेच सकती थी।'

लिच्छवि राजाओं ने तब अपना हाथ पटककर कहा—हाय ! अम्बपालिका ने हमें पराजित कर दिया, अम्बपालिका हमसे बढ़ गई। अम्बपालिके ! तब तुम स्वच्छन्दता से हमसे आगे रथ हांको। अम्बपालिका ने रथ बढ़ाया। गर्द का एक तूफान पीछे रह गया।

दस सहस्र भिक्षुओं के साथ भगवान बुद्ध ने अम्बपालिका के प्रासाद को आलोकित किया। वैशाली के राज-मार्ग में नगर के प्राण आ जूझे थे। महापुरुष बुद्ध और उनके वीतरागी भिक्षु भूमि पर दृष्टि दिए पैदल धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नगर के श्रेष्ठिगण दूकानों से उठ-उठकर मार्ग की भूमि को भगवान के चरण रखने से पूर्व अपने उत्तरीय से झाड़ रहे थे। कोई नागरिक भीड़ से निकलकर पथ पर अपने बहुमूल्य शाल बिछा रहे थे। महाप्रभु बिना कुछ कहे एकरस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। वह महान संन्यासी, प्रबल वीतरागी, महाप्राण, वृद्धपुरुष-श्रेष्ठ जय-जयकार की प्रचण्ड घोषणा से ज़रा भी विचलित नहीं हो रहा था। उसकी दृष्टि मानो पृथ्वी में पाताल तक घुस गई थी। पौर स्त्रियां झरोखों से खील और पुष्प-वर्षा कर रही थीं। अम्बपालिका का तोरण

आते ही चार दण्डधरों ने दौड़कर पथ पर कौशेय बिछा दिया। द्वार में प्रवेश करने पर सर्वत्र कौशेय बिछा था। अनगिनत कर्मचारी भिक्षुगण के सम्मानार्थ दौड़ पड़े। पीतवसनधारी मुण्डित भिक्षु नक्षत्रों की तरह उस विशाल प्रांगण में, महाजनसमूह में चमक रहे थे।

अतिथि-शाला में भगवान के पहुंचते ही अम्बपालिका ने दो सौ दासियों के साथ स्वयं आकर तथागत के चरणों में सिर झुकाया और वहां से वह अपने अंचल से पथ की धूल झाड़ती हुई प्रभु को भीतरी अलिन्द तक ले गई। इस समय प्रभु के साथ केवल आनन्द चल रहे थे।

प्रांगण के मध्य में एक चन्दन की चौकी पर शुद्ध आसन बिछा था। अम्बपालिका के अनुरोध पर प्रभु वहां विराजमान हुए। अम्बपालिका ने अर्घ्य-पाद्य दान करके भोजन प्रस्तुत करने की आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलते ही अम्ब-पालिका स्वयं स्वर्ण-थाल में भोजन ले आई। अनेक प्रकार के चावल और रोटियां थीं। अम्बपालिका सेवा में करबद्ध खड़ी रही। भगवान् ने मौन होकर भोजन किया और तृप्त होकर कहा—बस।

अम्बपालिका के नेत्रों से अश्रुधारा बही। प्रभु ज्यों ही शुद्ध होकर आसन पर विराजे, अम्बपालिका ने पृथ्वी में गिरकर प्रणाम किया।

भगवान् ने कहा—अम्बपालिका, अब और तेरी क्या इच्छा है ?

'प्रभु, एक तुच्छ भिक्षा प्रदान हो ?'

तथागत ने गम्भीर होकर कहा—वह क्या है ?

'प्रभो ! आज्ञा कीजिए, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय प्रदान करे।' आनन्द ने उत्तरीय उतारकर अम्बपालिका को दे दिया। क्षण-भर के लिए अम्बपालिका भीतर गई परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी वस्त्र से अंग लपेटे आ रही थी। उस बौद्ध भिक्षु के प्रदान किए एकमात्र वस्त्र को छोड़कर उसके पास न कोई और वस्त्र था न आभरण। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। भगवान विमूढ़ उसका व्यापार देख रहे थे। वह आकर भगवान के सम्मुख फिर लोट गई।

भगवान ने शुभ हस्त से उसे स्पर्श करके कहा—उठो, उठो ! हे कल्याणी ! तुम्हारी इच्छा क्या है ?

'महाप्रभु ! अपवित्र दासी की धृष्टता क्षमा हो। यह महानारी-शरीर कलं-

कित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ संकल्प से मैं वंचित रही; प्रभो, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का संचय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्यहृदया रहकर अब तक जीवित रही हूं, यह कैसे कहूं। मेरे जीवन में दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फलस्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट की राजमाता हूं, परन्तु भगवन्! आज के महान पुण्य-योग के फलस्वरूप अब मैं इससे भी उच्च पद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाषा करती हूं। महाप्रभु प्रसन्न हों। जब भगवान की चरण-रज से यह घर पवित्र हुआ, तब यहां विलास और पाप कैसा? उसकी सामग्री ही क्यों, उसकी स्मृति ही क्यों?

'इसलिए भगवान के चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा—महल, अटारी, धन, कोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित है। प्रभु ने भिक्षु का उत्तरीय मुझे भिक्षा में दिया है, मेरे शरीर के लज्जा-निवारण को यह बहुत है स्वामिन्! आज से अम्बपाली भिक्षुणी हुई। अब यह इस भिक्षा में प्राप्त वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी। हे प्रभु! आज्ञा हो।'

इतना कहकर अविरल अश्रुधारा से भगवत्-चरणों को धोती हुई, अम्ब-पालिका बुद्ध की चरण-रज नेत्रों से लगाकर उठी, और धीरे-धीरे महल से बाहर चली। महावीतराग बुद्ध के नेत्र आप्यायित हुए। उन्होंने 'तथास्तु' कहा और खड़े होकर उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण! कल्याण!! सहस्र-सहस्र कण्ठ से 'जय अम्बपालिके, जय अम्बपालिके' का गगन-भेदी नाद उठा। सहस्रों नर-नारी पीछे चले। अम्बपालिका उस पीत परिधान को धारण किए, नीचा सिर किए, पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे-धीरे नगर से बाहर जा रही थी और उसके पीछे समस्त नगर उमड़ा जा रहा था। खिड़कियों से पौरवधूएं पुष्प और खील-वर्षा कर रही थीं।

भगवान ने कहा—हे आनन्द, यह स्थान बौद्ध भिक्षुओं का प्रथम विहार होगा। बौद्ध भिक्षु यहां रहकर सन्मार्ग का अन्वेषण करेंगे—यही तथागत की इच्छा है।

आनन्द ने सिर झुकाया। भिक्षु-मण्डल जय-नाद कर उठा। बुद्ध भगवान धीरे-धीरे उठकर नगर के राजमार्ग से आते हुए अम्बपालिका की बाड़ी में आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। कुछ दूर एक वृक्ष की जड़ में अम्ब-

पालिका स्थिर बैठी थी। भगवान को स्थित देख वह उठी और धीर भाव से प्रभु के सम्मुख आकर खड़ी हुई। भगवान ने उसकी ओर देखा। अम्बपालिका ने विनयावनत होकर कहा :

'बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि'

तथागत स्थिर हुए। उन्होंने तत्काल पवित्र जल उसके मस्तक पर सिंचन किया और पवित्र वाक्यों का उपदेश देकर कहा—भिक्षुओ ! महासाध्वी अम्ब-पालिका भिक्षुणी का स्वागत करो।

फिर जयनाद से दिशाएं गूंज उठीं और अम्बपालिका तथागत तथा अन्य वृद्ध भिक्षुगण को प्रणाम कर वहां से चल दी और फिर वैशाली के पुरुष उसे न देख सके ! !

क्रीता

बौद्ध धर्म की व्यापकता और महानता की एक झलक इस कहानी में है।

धन्य स्वभाव का अच्छा पुरुष था। उसकी बहुत सम्पत्ति थी। दास-दासी भी अनेक थे परन्तु उसने बसुमती के शील, स्नेह और अल्पावस्था होने के कारण उसे उन दास-दासियों की श्रेणी में रखना ठीक नहीं समझा। उसे उसने खास तौर पर अपनी पत्नी भद्रा के सुपुर्द कर दिया। भद्रा देखने में सुन्दर थी। सेट्ठी अठारह श्रेणियों का जेट्ठक था, उसकी अतुल धन-सम्पत्ति होने पर भी सन्तान नहीं थी। इससे वह अत्यन्त दुखी था। उसने संतान के लिए बहुत प्रयत्न किए, नाग, भूत, यज्ञ, इन्द्र, स्कन्द, शिव, वैश्रपन आदि देवी-देवताओं की मनौती की और अनेक व्रत किए, पर कोई नतीजा नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में उसने दासों की हाट से बसुमती को खरीद लिया।

बसुमती को पाकर, उसका शील और रूप देखकर भद्रा ने पहले तो उसे सन्देह से देखा—फिर जब सेट्ठी ने कहा कि इसे मैंने तेरी ही सेवा के लिए खरीदा है, पुत्री की भांति पालना, तब वह प्रसन्न हो गई और बसुमती को स्नेह से देखने लगी। बसुमती ने भी भाग्य-दोष पर संतोष और धैर्य धारण किया और उसने अपने शील-स्वभाव से शीघ्र ही घर के लोगों को वश में कर लिया। सेट्ठी भी उसका बहुत ध्यान रखने लगे। भोजन के समय वे उसे अवश्य उपस्थित रखते। उसके हाथ से परसे भोजन की वे सराहना करते। बहुधा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यत्नवान रहते।

दास-दासी यह देख बसुमती को कुटिल दृष्टि से देखने लगे। समय-समय पर कुछ मुंहलगी दासियों ने भद्रा के कान भर दिए। भद्रा बसुमती से ईर्ष्या करने लगी। उसे यह संदेह हो गया कि कहीं उसके नवगात्र पर विमोहित हो सेट्ठी उसे गृह-स्वामिनी ही न बना लें। बसुमती से उसका व्यवहार कटु और तिरस्कार का होने लगा। इसपर भी बसुमती का शील भंग नहीं हुआ। उसने अविचल रूप से वह सब सहन कर लिया।

एक दिन दोपहर के समय धन्य सेट्ठी घर में आया। उस समय घर में कोई दास-दासी उपस्थित न थी। बसुमती उस समय स्नान कर अपने बाल सुखा रही थी। उसके कोमल, चिकने, घुंघराले कुंतल पीठ पर एड़ी तक लटक रहे थे। उनमें गन्धमादन की गन्ध बस रही थी। कुमारी के सुकुमार कौमार्य की चम्पक प्रभा पर वे पादचुम्बी केश असाधारण शोभा विस्तार कर रहे थे। उसने देखा, सेट्ठी के पैर धोने के लिए कोई दास-दासी नहीं है तो वह स्वयं जलपात्र लेकर आई और सेट्ठी के चरणों में बैठकर अपने हाथ से उसके पैर धोने लगी। सेट्ठी उसके मृदुल स्पर्श और सुगंधित केश तथा नवीन केले के पत्ते के समान नव विकसित यौवन की प्रभातपूर्ण समान आभा को देखकर विमोहित हो गया। परन्तु हड़बड़ी और काम में अस्त-व्यस्त होने से बसुमती के सब बाल कीचड़ में खराब होने लगे। इसपर सेट्ठी ने उन्हें अपनी लाठी से ऊपर उठा लिया और हंसते-हंसते उन्हें अपने हाथ से बांध दिया। बसुमती लज्जा से गड़ गई। वह पैर धो उन्हें आंचल से पोंछ, रिक्त जल-पात्र ले घबराई-सी अपने कक्ष में भाग गई।

भद्रा ने एक गवाक्ष से यह सब कृत्य देखा। देखकर वह क्रोध से आग-बबूला हो गई। ईर्ष्या से उसका सारा शरीर जलने लगा। वह रोगी होने का बहाना करके पड़ रही। वह सोचने लगी। निश्चय ही मेरे पति के मन में इस दासी से प्रेम हो गया है। वह इससे विवाह कर इसीको गृहस्वामिनी बना लेगा और मुझे कोई न पूछेगा। वह बहुत देर तक रोती रही। सेट्ठी के पूछने पर उसने रोग का बहाना कर दिया।

जब सेट्ठी घर से बाहर चला गया तो भद्रा चिन्तित हो उठी। वह सोचने लगी, व्याधि बढ़ने से प्रथम ही उसका इलाज करना चाहिए। उसका सारा क्रोध बसुमती पर उमड़ आया। उसकी मुंहलगी दासियों ने अनेक कल्पित बातें बना-बनाकर उसे और भी उभारा। भद्रा ने क्रोध में भरकर नाई को बुलाकर कहा—इस दुष्टा, दुश्चरित्रा दासी का सिर मूंड़ दे।

नाई ने उस्तरे से बसुमती का सिर मूंड़ दिया। इसके बाद भद्रा ने उसे शृंखला से बांधकर खूब पीटा। इतने पर भी उसका क्रोध शांत नहीं हुआ। उसने उसको एक अंधेरी कोठरी में बन्दकर बाहर से ताला लगा दिया।

भोजन के समय सेट्ठी ने अभ्यास के अनुसार बसुमती का स्मरण किया।

परन्तु बसुमती वहां न थी। भद्रा के भय से किसीने उसके बन्द होने की बात नहीं कही। सेट्ठी ने भी विशेष खोज नहीं की। रात्रि के समय उसने फिर बसुमती की खोज की; परन्तु किसीने भी कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन भी जब सेट्ठी ने बसुमती को नहीं देखा तो फिर उसने उसकी घर में अच्छी तरह खोज-जांच की। भद्रा से भी पूछा परन्तु यथार्थ बात का पता उसे नहीं लगा। सेट्ठी ने सोचा कि क्या वह भाग गई है; परन्तु ऐसा तो संभव नहीं है।

तीसरे दिन सेट्ठी ने प्रभात होते ही बसुमती की यत्न से खोज करनी प्रारम्भ की। उसने सब दास-दासियों को एकत्रकर उन्हें डांटकर कहा—यदि सत्य बात न बताओगे, तो सबको दण्डीगृह भेज दूंगा।

श्रमण महावीर ने अभिग्रह किया था। उनका अभिग्रह पूर्ण होगा तभी वे भिक्षा ग्रहण करेंगे अन्यथा नहीं। वे भिक्षा के नियत समय पर भिक्षा ग्रहण करने नगर में गृहस्थों के द्वार पर जाकर हाथ पसार कर मौन भाव से खड़े हो जाते, गृह-पत्नियां आदरपूर्वक भिक्षा लेकर उन्हें देने आतीं पर श्रमण महावीर अपना हाथ हटाए बिना भिक्षा लिए ही वहां से लौट जाते। कई दिन बीत गए, श्रमण को भिक्षा-लाभ नहीं हुआ। नगर में इसकी चर्चा होने लगी। बहुत गृहस्थ हठपूर्वक विविध आहार पदार्थ लेकर प्रातःकाल ही से उस मार्ग पर खड़े हो जाते जिसपर श्रमण महावीर भिक्षाटन को निकलते। परन्तु महावीर उन्हें देखते ही भिक्षा के लिए पसारे हुए हाथ को खींच लेते, श्रद्धालु नागरिक इससे बहुत दुःखी हुए। बहुतों ने व्रत लिया कि भगवान जब तक पारणा नहीं करते हम भी आहार नहीं ग्रहण करेंगे।

सुगुप्त मन्त्री की पत्नी सुज्येष्ठा श्रमण महावीर की शिष्या थी। वे प्रतिदिन उसके घर भिक्षा के लिए आते और सुज्येष्ठा प्रतिदिन उनके लिए सुस्वादु विविध व्यंजन बनाकर तैयार करती। श्रमण के आने पर थाल में आहार सजाकर स्वयं द्वार पर जाकर भिक्षा ग्रहण करने का निवेदन करती परन्तु उसे देखते ही श्रमण महावीर अपने फैले हुए हाथ सिकोड़कर मुंह फेरकर वहां से चल देते। सुज्येष्ठा को इससे बड़ा संताप हुआ। उसने मन्त्री सुगुप्त से कहा—इतने दिन हो गए श्रमण को भिक्षा नहीं मिल रही है, इसका अवश्य कोई कारण

होना चाहिए। कोई ऐसा उपाय होना चाहिए जिससे उन्हें आहार मिले। बिना आहार के उन्हें चार मास हो गए हैं।—मन्त्री ने बहुत छिद्र ढूंढे, पर कुछ भी समझ में नहीं आया। सुज्येष्ठा के यहां रानी मल्लिका की प्रतिहारी आई थी. उसने महारानी से यह बात कही। रानी ने आज्ञा दी कि सब श्रमण के आचार-विचार-व्यवहारों का पता लगाकर प्रजा में उसका प्रचार किया जाए। ऐसा न होने से महाराज का यश कलंकित होगा। महाराज राजधानी में उपस्थित नहीं थे। राजपुरुषों ने रानी के आदेश का पालन किया परन्तु श्रमण महावीर को भिक्षा-लाभ नहीं हुआ। वे सूखकर कांटा हो गए और नगर में उनके अभिग्रह को लेकर भांति-भांति के अनुमान लगाए जाने लगे।

सेट्ठी की व्याकुलता देख एक दासी ने साहस किया। वह बसुमती से प्रेम और भद्रा से डाह रखती थी। एक साधारण-से अपराध पर भद्रा ने उसे पिटवाया था। उसने सेट्ठी से कहा—वह दासी उस सामने के भूगर्भ में बन्द है।

सेट्ठी ने द्वार खोल भूख, प्यास से पीड़ित, ग्लानमुखी, मुंडित सिर, शृंखला-बद्ध बसुमती को देखा। उसने भद्रा पर बड़ा कोप किया और कुमारी को सान्त्वना दे बाहर निकाला। इसके बाद उसने एक दासी को आज्ञा दी कि इसके लिए अभी कुछ आहार ला। तीन दिन से इसने कुछ नहीं खाया है। मैं अभी लुहार बुला लाता हूं जो इसकी शृंखला काट देगा। सेट्ठी तेज़ी से लुहार को बुलाने चला गया।

जिस दासी को बसुमती के लिए आहार लाने की आज्ञा सेट्ठी ने दी थी, वह बहुत दुष्टा थी। वह भद्रा की मुंहलगी थी। उसने भद्रा के संकेत से अंजुलि-भर कुलथी लाकर बसुमती की शृंखलाबद्ध हथेलियों में दे दी और हंसकर कहा—खाओ राजकुमारी, यह तुम्हारा आहार है।

बसुमती को उसने व्यंग्य ही से 'राजकुमारी' कहा था। परन्तु यह व्यंग्य सुनकर-बसुमती की आंखों में आंसू छलकने लगे। वह कुछ बोली नहीं, चुपचाप शृंखला-बद्ध हाथों की अंजलि में वह कुल्थी लिए नीचा सिर किए बैठी रही। सब दासियां एक-एक व्यंग्यबाण छोड़कर अपने-अपने काम में लगीं। वह अपनी अवस्था पर रह-रहकर विचार कर रही थी।

इसी समय एक छाया उसे दिखाई दी। पर उसने आंख उठाकर नहीं देखा। उसने समझा कोई दासी व्यंग्य करने आई होगी। पर छाया हटी नहीं।

उसे एक अनिर्वचनीय-सा सुख अनुभव हुआ। उसने डरते-डरते आंख उठाई, उसके भय और आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने देखा स्वयं श्रमण महावीर उसके सम्मुख खड़े अंजलि फैलाए स्मित वदन भिक्षा की मौन याचना कर रहे हैं।

चन्द्रभद्रा ने ज्योंही श्रमण महावीर की ओर आंख उठाकर देखा, उन्होंने शांत भाव से भिक्षा के लिए हाथ फैला दिए। और बसुमती ने शृंखलाबद्ध कुलथी से भरी अंजलि भगवान महावीर की हथेलियों पर खाली कर दी। श्रमण महावीर ने भिक्षाग्रहण कर कहा, 'राजकुमारी, तुम्हारा कल्याण हो।'

इसी समय सेट्ठी गृहपति ने लुहार के साथ आकर श्रमण के ये वाक्य सुने। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चार मास के बाद भगवान महावीर का अभिग्रह पूर्ण हुआ। क्षण-भर ही में बहुत-से दास-दासी वहां आ एकत्र हुए। सेट्ठी ने कहा—भगवन् ! आपने मेरी दासी के हाथ से भिक्षा ग्रहण कर और अपना अभिग्रह पूर्ण कर उसे अक्षय पुण्य दिया परन्तु उसे राजकुमारी कैसे कहा, कृपया यह भेद बताइए।

श्रमण महावीर ने गम्भीर मुद्रा से कहा—सेट्ठी, यह महाभागा चम्बाधिपति महाराज दधिवाहन की पुत्री राजकुमारी चन्द्रभद्रा है। अब से चार मास पूर्व चम्बा का पतन हुआ। तभी मैंने यह व्रत मन ही मन लिया था कि यदि कोई दासत्व को प्राप्त शृंखलाबद्ध मुण्डितशिर राजकुमारी आहार देगी तो मैं ग्रहण करूंगा। मुझे भ्रमण करते चार मास बीत गए। दैव विपाक से आज अभिग्रह पूर्ण हुआ। राजकुमारी के शील और धैर्य से मैं सन्तुष्ट हूं। आज से मैं उसका नाम रखता हूं, 'शीलचन्दना'।

इतना कह उन्होंने वहीं बैठकर पारणा की। श्रमण महावीर की पारणा का समाचार विद्युत् वेग से नगर में फैल गया। सब कोई धन्य सेट्ठी के घर की ओर दौड़े। देखते-देखते घर के द्वार पर भीड़ लग गई। श्रमण महावीर ने वह कुलथी खाकर तीन अंजलि जल पिया—फिर स्वस्थ होकर अनुपूर्वी कथा-प्रसंग से सबको धर्मोपदेश दिया।

धन्य ने राजकुमारी की शृंखला काटकर उसे वस्त्र-भूषण-सज्जिता कर श्रमण महावीर की सेवा में उपस्थित किया। भद्रा ने आकर अपनी अविनय की कुमारी से क्षमा मांगी। श्रमण ने कहा—शुभं, शील, तुम्हारा कल्याण हो, अभी

तुम यहां सेट्ठी के यहां रहो। और भद्र धन्य, यह महाभागा राजनन्दिनी अब से श्रमण महावीर की थाती तुम्हारे यहां है। इसकी यत्न से रक्षा करना सेट्ठी, और सुभगे भद्रा, तुम्हें भी श्रमण का यही आदेश है।

दोनों ने नतमस्तक हो श्रमण महावीर के चरणों में सिर झुका लिया। श्रमण महावीर ने उन्हें आशीर्वचन कह नतसिर राजकुमारी की ओर करुण नेत्रों से देखा। फिर कहा—पुत्री शील, तू मेरी प्रथम शिष्या है। तुझे श्रमण्डी संघ का नेतृत्व करना होगा, इसीसे तेरा कल्याण होगा।

राजकुमारी श्रमण के चरणों में झुक गई। श्रमण उसे हस्त-स्पर्श से आप्यापित करते हुए धीरे-धीरे चले गए। श्रमण महावीर की पारणा और चम्बानन्दिनी की खबर नगर में अनेक रूपों में फैल गई।

प्रतिदान

बौद्ध धर्म को सदैव राज्याश्रय प्राप्त होता रहा। अनेक राजमुकुट बौद्ध धर्म में लुढ़कते रहे। ऐसे ही एक भक्त राजा की भावुकता की रूपरेखा इस कहानी में वर्णित है।

छठी शताब्दी समाप्त हो रही थी और उसीके साथ परम प्रतापी गुप्त साम्राज्य भी, जिसने पाटलिपुत्र के स्वर्ण-सिंहासन से गरुड़ध्वज की छत्रछाया में आधी पृथ्वी पर शासन किया, और धर्म-ज्ञान-संस्कृति का अमर दान किया था। पाटलिपुत्र की सारी श्री कन्नौज में आ जुटी थी जहां महानृप हर्षवर्धन मध्यकाल के सूर्य की भांति उत्तर भारत पर अखण्ड शासन कर रहे थे। उस समय उनके जैसा योद्धा, विद्वान, दाता और न्याय-नरपति पृथ्वी पर दूसरा नहीं था।

उत्तर भारत में सम्राट हर्षवर्धन ने केवल सुव्यवस्था का शासन ही नहीं स्थापित किया था, वह अपने काल के बौद्ध धर्म को फिर से जागरित करने में भी तन-मन से लगा था। उसकी नीति उदार थी। विद्वानों और धर्मस्थानों के लिए तथा शिक्षा और संस्कृति के प्रचार के लिए उसने आय का चौथाई भाग अलग निकाल रखा था। इस धन से वह उच्चकोटि के विद्वानों को, ग्रन्थकर्ताओं को, धार्मिक पुरुषों को खुले हाथ दान देता था।

सम्राट की राजसभा जुड़ी थी। प्रमुख सभापण्डित महाकवि बाणभट्ट अपने दिग्गज पुत्र भूषण के साथ सम्राट के दक्षिण पार्श्व में विराजमान थे। उनके निकट ही महाकवीश्वर मयूर ऊंची गर्दन किए धवल वेश में बैठे थे। सभा-मण्डप में राजमंत्री, राज्य-परिषद् के सभ्य और उच्च सैनिक अधिपतिगण अपने-अपने आसनों पर बैठे थे। सबके बीच में नक्षत्र के समान तेजवान् सम्राट हर्ष-वर्धन श्वेत परिधान पहने उच्च मणिपीठ पर विराजमान थे। सम्राट के सम्मुख परम बौद्ध विद्या-महारथी महापण्डित जयसेन चन्दन की एक चौकी पर शान्त मुद्रा में बैठे थे। सम्राट ने मधुर मुस्कान के साथ मधुर स्वर में कहा—सभासद्गण, महापण्डित जयसेन की सद्धर्म सेवा की कीर्ति-पताका,

विद्वत्ता और धर्मनिष्ठा आज समस्त बौद्ध धर्म में विख्यात है। आचार्य जयसेन का पाण्डित्य अगाध है और सद्धर्म सेवा महान् है। मान्यवर पण्डितराज का सत्कार हमारे हृदयों में है, धन-दान से वह पूर्ण नहीं होगा तथापि कलिंग के अस्सी गांवों का कर आज से आचार्य जयसेन को मिले। इसका यह पट्टा मैं आचार्य को भेंट करता हूं।—सभी धन्य-धन्य कह उठे।

पण्डितवर जयसेन क्षणभर मौन मुद्रा में बैठे रहे। राजसभा में सन्नाटा छा गया। इस महादान के प्रत्युत्तर में जयसेन आचार्य सम्राट् को किस प्रकार धन्यवाद देते हैं, यह जानने को सभी उत्सुक हो उठे। आचार्य जयसेन उठे। सभा में एक धीमा जनरव उठकर फिर तुरन्त ही सन्नाटा छा गया।

महापण्डित जयसेन ने दोनों हाथ उठाकर सम्राट् का अभिनन्दन किया। इसके बाद गम्भीर स्वर में कहा—सम्राट्, आपकी धर्म में जैसी रुचि है और जैसा आपका यश है, वैसा ही यह महादान आपने मुझ अकिञ्चन को मेरी धर्मसेवा एवं अक्षरज्ञान के उपलक्ष्य में दिया है। इस उदार दान ने आपको महान् अशोक का समकक्ष बना दिया है। परन्तु सम्राट्, मुझ भिक्षुक को इतना धन क्या करना है? मुझे वर्ष में दो बार दो वस्त्र और प्रतिदिन एक बार ग्यारह अंजलि अन्न चाहिए। इतना तो श्रद्धालु नागरिक मुझे अनायास ही भिक्षा दे देते हैं। फिर आपका यह धन निरर्थक क्यों रहे? धनराशि की आवश्यकता तो आप जैसे सम्राटों को होती है। जैसे विद्वान् अपनी विद्या द्वारा मनुष्यों का कल्याण करते हैं, उसी तरह सम्राटों को धन द्वारा करना चाहिए। इसलिए धर्मात्मा सम्राट्! अपने इस धन को अपने पास रखकर मनुष्य-जाति के कल्याण में लगाइए, यही मेरा आपसे अनुरोध है।

आचार्य जयसेन का यह अतर्कित त्याग देखकर राजसभा स्तम्भित हो गई। कुछ काल तक सन्नाटा रहा, परन्तु तुरन्त ही 'साधु-साधु' की ध्वनि से विशाल समाज सभामण्डप गूंज उठा।

सम्राट् हठात् रत्नपीठ से उठकर खड़े हो गए। सहस्रों सभासद नतमस्तक हो अपने-अपने आसन त्याग उठ खड़े हुए। सम्राट् ने आगे बढ़कर आचार्य के चरणों में प्रणाम करके कहा—पण्डितवर, आपका त्याग मेरे दान से बहुत बढ़कर है। आपकी चरणधूलि मेरे मस्तक की शोभा है। अब आप ही बताइए कि आपके इस त्याज्य धन का क्या उपयोग किया जाए?

जयसेन ने शान्त मुद्रा से कहा—सम्राट् रत्नपीठ पर विराजमान हों और सब राजसभासद् अपने-अपने आसन ग्रहण करें। फिर मैं सम्राट् को सत्परामर्श दूंगा।

सम्राट् रत्नपीठ पर बैठ गए। सब सभासद् भी आसनों पर आ बैठे। महात्यागी जयसेन ने कहा :

'सम्राट् ! आज पाटलिपुत्र का एकच्छत्र साम्राज्य नष्ट हो गया है और उसकी राज्यश्री ने आपके चरण चूमे हैं। जिस गुप्त वंश में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त जैसे प्रतापी विश्व-विजयी योद्धा और अशोक जैसे महापुरुष हुए, वह गुप्त वंश छिन्न-भिन्न हो गया है। परन्तु महामाया सरस्वती ने गुप्त सम्राटों की विमल स्थली को अभी नहीं छोड़ा है। बिहार में नालन्दा विश्वविद्यालय आज भी संसार की अद्वितीय विद्या-संस्था है। नालन्दा विश्वभारती में दस हज़ार छात्र महाविद्याओं का अध्ययन करते हैं। ये चीन, जापान, भोट, तिब्बत, सुमात्रा, यूनान और समस्त संसार के दूर देशों से, अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने और अज्ञानजनित अन्धकार को दूर करने आते हैं। वहां के आचार और नियम पृथ्वीभर में श्रेष्ठ और आदर्श माने जाते हैं। वहां के छात्र रात-दिन शास्त्र-चर्चा में लगे रहते हैं। वहां पर बौद्ध धर्म के महायान तथा शेष अठारह बौद्ध सम्प्रदायों के परम गोपनीय शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता है। इसके सिवा हेतुविद्या, वेदविद्या, तन्त्रविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साशास्त्र, इन्द्रजाल, अथर्ववेद, और सांख्यादि, दर्शन, ज्योतिष के अलावा अनेक विद्याओं का अध्ययन होता है। इस विश्वभारती का लक्ष्य छात्रों की बौद्धिक और आत्मिक ज्ञान-ज्योति को जागरित करना है। वहां के स्नातक धर्मपाल, गुणों में स्थिरमति, चन्द्रपाल आदि महादिग्गज पंडितों के बुद्धि-चमत्कार और सदाचार पर समस्त बौद्ध संसार गर्वित है। जैन धर्म के महा आचार्य महावीर स्वामी और उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रमूर्ति ने वहां चातुर्मास व्यतीत किया था। महाबुद्ध तथागत ने भी 'संपसादनीय सुत्त' के वद्ध सूक्त का प्रवर्तन इसी क्षेत्र में किया था। वहां ही वह जगद्विख्यात अप्रतिम आम्रवाटिका है जिसे पांच सौ व्यापारियों ने दस करोड़ मुद्रा में खरीदकर भगवान बुद्ध को अर्पण की थी तथा यहीं तथागत बुद्ध ने सारिपुत्र का समाधान किया था, और इसी भूमि पर आर्य सारिपुत्र और आर्य मौद्गल्यायन अस्सी हज़ार अर्हतों के साथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए थे। वहां

के निवासियों का जीवन तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा इन तीनों से प्रदीप्त है। महाराज, इस समय वहां एक सहस्र ऐसे विद्वान् उपस्थित हैं जो दस विद्याओं के पारंगत हैं और पांच सौ ऐसे महापंडित हैं, जो तीस विद्याएं जानते हैं। दस आचार्य पचास विद्याओं के ज्ञाता हैं। कुलपति शीलभद्र आचार्य और भगवान् दीपंकर तो साक्षात् सभी विद्याओं के सागर हैं। वहां सब समान हैं। राजा और रंक में भेद नहीं है। सभी पर सब नियम समान रीति से लागू हैं।

'महाराज, यह महा विश्वभारती अस्तंगत गुप्त सम्राटों की कीर्ति-कौमुदी का एकमात्र अवशेष है, जिसकी अब से पांच सौ वर्ष पूर्व प्रतापी शुक्रादित्य ने स्थापना की थी। महाराज! वहीं मौखरी राज ने वह अप्रतिम बुद्ध प्रतिमा निर्माण की है जो शुद्ध अष्ट धातु से बनी है, और जिसकी ऊंचाई नब्बे हाथ है तथा जिसकी स्थापना छह मंज़िल के श्वेत पत्थरों के भवन पर की गई है। सम्राट्, आज गुप्त वंश की राजलक्ष्मी आपके चरण-तल में है। आप महाविद्या-व्यसनी और परम धार्मिक महानृप हैं। आप अपनी अक्षय कीर्ति की स्थापना के लिए नालन्दा विश्वभारती के संरक्षक बनिए और दूसरे अशोक का स्थान पूर्ण कीजिए तथा यह संपत्ति, जो आप मुझको व्यर्थ ही दे रहे हैं, नालन्दा विश्व-भारती को प्रदान कीजिए।'

इतना कहकर परम त्यागी साधुवर जयसेन अपने आसन पर मौन हो बैठ गए। सम्राट् जड़वत् बड़ी देर तक बैठे रहे। सभास्थल में सन्नाटा छा गया।

कुछ काल बाद सम्राट् ने आंखों में आंसू भरकर महामन्त्री की ओर देखा और गद्‌गद वाणी से कहा—आमात्य, आज से हम नालन्दा विश्वभारती संरक्षक हुए। अभी एक सौ आठ गांवों का पट्टा नालन्दा विश्वभारती के नाम लिख दो और वहां एक सौ आठ ऐसे भवनों का तुरन्त निर्माण कराओ जो पृथ्वी-भर में अद्वितीय हों। साथ ही विश्वभारती के चारों ओर दृढ़ कोट बनवा दो। नालन्दा के प्रत्येक स्नातक के लिए मेरे कोष को खोल दो; और मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना ही उन्हें मुंहमांगा धन दो।—इतना कहकर सम्राट् हर्षवर्धन ने खड़े होकर अपने रत्न-जटित मुकुट को तनिक नीचा करके बद्धांजलि होकर आचार्य जयसेन से कहा—आचार्यवर! नालन्दा विश्वभारती के लिए मैंने अपना सर्वस्व दिया। आप प्रसन्न होइए।—जयसेन आसन से उठे, उन्होंने दोनों हाथ ऊंचे करके कहा—साधु राजन्, साधु!—राजसभा जयनाद कर उठी!

द्वन्द्व

वासनामय प्रेम ही अपराध और पाप की ओर मनुष्य को ले जाता है। फिर चाहे कितना ही भयानक परिणाम उसका हो। मनुष्य में वासना की ओर झुकने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस कहानी में एक चिकित्सक डाक्टर एक मुस्लिम युवती के चिकित्सा-काल में वासनामय प्रेम का शिकार हो जाता है। दोनों ही विवाहित हैं। लेखक ने दोनों की मनोदशा का सजीव वर्णन किया है। और दोनों का बुद्धि-विवेक जागरित करके दोनों को पाप में नष्ट होने से बड़ी कुशलता से बचाया है। कहानी के अनेक स्थल हृदय को स्पर्श करते हैं।

मेरी आयु चालीस साल की है। मेरा जन्मस्थान बलोचिस्तान है। मेरा शरीर लोहे के समान ठोस और मजबूत है। बीस वर्ष से दिल्ली में रहने से मेरी रंगत में स्याही दौड़ गई है, पर चेहरे की सुर्खी और गहरी चमकीली आंखें मेरी बपौती हैं। मैं उर्दू-फारसी खूब जानता हूं। पश्तो भी बोल लेता हूं। मेरे पिता आर्यसमाजी हैं, पर मैं पक्का मनुष्य-समाजी हूं। दोस्तों का गुलाम और दुश्मनों का नकद दामाद, यही मेरा धर्म है। मैं डाक्टरी का धन्धा करता हूं, और अपने सामने सबको हेच समझता हूं।

मेरी शादी को पन्द्रह साल गुज़र गए। मेरी स्त्री एक आदर्श हिन्दू स्त्री है। उसका आधा दिन पूजा-पाठ, धर्म-व्रत और उपवास में जाता है, बाकी समय वह मेरी सेवा और मेरी छोटी-सी गृहस्थी की देख-भाल में गुज़ार देती है। पिछले पन्द्रह वर्षों में हम कभी नहीं लड़े, कभी नहीं पृथक् हुए, कभी कड़ुए नहीं बोले। हम एक कालिब दो जान रहे। मेरी स्त्री के लिए पृथ्वी पर अकेला पुरुष मैं हूं, और मेरे लिए जगत् में अकेली वही स्त्री है। लाखों छोटे-बड़े घर की स्त्रियों ने मुझसे चिकित्सा कराई; महीनों, वर्षों संपर्क रहा। उनमें से हज़ारों का मुंह देखने की भी मुझे फुरसत नहीं मिली। मेरी मर्दानगी मेरी पत्नी पर तृप्त है। मेरी आत्मा आनन्द और संतोष में स्नान करती रही। हम दोनों अब तक परम विश्वासी मित्र, हितू, सहायक और एक-दूसरे के अक्षय साथी रहे। नफ्स-परस्ती से मुझे घृणा है। कुत्तों की खसलत के आदमी को गोली मारकर भी मुझे

अनुताप न होगा। शराब, मांस, सिगरेट, बीड़ी मैं कुछ नहीं खाता-पीता। आधा जीवन बिताने पर परमेश्वर ने हमें लाल दिया है। वह दूज के चांद के समान बढ़ रहा है। वह हंसता है, तो हमारे प्राणों में रस पड़ता है। वह अपनी निर्दोष दृष्टि से देखता है, तो हम निहाल हो जाते हैं। वह हमारा संयुक्त प्राण है। वह हमारी, पति-पत्नी की, अभिसंधि है। पहले हम कृत्रिम रीति से एक थे, अब सचमुच एक हैं। हमारा जीवन, प्रेम, यौवन, सब कुछ इस लाल से धन्य हुआ है। इसे देखते रहकर हम कभी न मरेंगे।

उसे यदि असूर्यंपश्या कहूं, तो अत्युक्ति नहीं। उस घर में साठ वर्ष की वृद्धा भी पांच वर्ष के बालक से पर्दा करती है। एक उंगली की पोर देखना संभव नहीं। कंठ-स्वर की भनक मर्दाने में आना असंभव है। वह उच्च श्रेणी के मुगल-वंश की कन्या है। उसके दादाजान मुगलों के अंतिम बादशाह बहादुरशाह के तोशा-खाने के अध्यक्ष थे। अब भी वह घराना क़रोड़ों की संपदा का स्वामी है। बाग-बगीचा, कोठी, महल, मोटरगाड़ी, सभी कुछ है। दासी-बांदियों, दासों की कौन गिनती करे!

दो वर्ष से मेरा इस घर में आना-जाना था। डाक्टरों का जीवन कैसा जोखिमपूर्ण है, डाक्टर को कितना चरित्रवान् और एकनिष्ठ होना चाहिए, यह सब लोग नहीं जानते। मैं स्वभाव ही से वैसा था, इसीलिए निर्भय था। इस घराने में आवश्यकतावश और मेरे व्यवहार को देखकर मेरे लिए पर्दे की कठोरता कम कर दी गई थी। पर इसकी न मुझे परवाह थी, न वासना। मेरे लिए पर्दा-बेपर्दा एक चीज़ थी। मेरी फीस मुझे मिल जाती थी, मेरे लिए यही यथेष्ट था। 'नकद मजूरी, चोखा काम' मेरा दस्तूर है।

मैं मरीज़ को देखकर दालान से लौट रहा था। वृद्ध गृहपति कुछ आगे थे। सामने चिलमन में कुछ चमक देखी। नीची गर्दन किए आगे बढ़ा। मेरे कान में एक शेर पड़ा। शेर विशुद्ध फारसी भाषा का था। वह इतनी मृदुता, फसाहत और नफासत में पढ़ा गया, ऐसी स्वर-लहरी उसमें मिलाई गई कि मैं वहीं जम गया। शेर यह था :

लख़्ते बरद अज़ दिल गुज़रद हर कि ज़े पेशम्;
मन काश फ़रोशे दिले सद पारए ख़ेशम्।

मेरी चिर अभ्यस्त नीची निगाहें हठात् ऊपर उठ गईं। देखा, चिलमन की दरार में वह स्वर्ण-छड़ी-सी खड़ी थी। बहुत बारीक मकड़ी की जाली के समान धानी परिधान धारण किए वह हास्य की रेखा से उस शेर की तस्वीर खींच रही थी।

एक क्षण-भर भी मैं उस ज्वलंत रूप को न देख सका। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उन आंखों से एक बिजली का कौंधा निकलकर मेरी नस-नस को तोड़ गया। मैं मानो किसी जादूगर की दृष्टि से हतज्ञान हो गया। कब वहां से आया, नहीं कह सकता। इतना मैंने देखा, घर पर हूं, पत्नी त्रस्त भाव से शुश्रूषा कर रही है, सेरों बर्फ सिर पर लदी है, डा० बनर्जी सामने स्टेथस्कोप पकड़े बैठे हैं। मेरी तरफ देखकर बोले—ईश्वर का धन्यवाद है, ज़िंदा बच गए। यार, मैं तो डर गया था कि हार्ट फेल हो गया। कई मिनट तक दिल की चाल और नाड़ी की गति बंद रही। क्या पहले भी कभी ऐसा दौरा हुआ था?

मैं कुछ भी नहीं समझा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो दूर से कोई कुछ बोल रहा है। शरीर जला जाता था, हाथ-पांव ऐंठे जाते थे। मैंने विकल होकर उधर से आंखें फेर लीं। कुछ देर के लिए मैं फिर बेहोश हो गया।

संसार की सुहागिनों ने पति पाए हैं, पर मुझ भाग्यवती ने पति के रूप में परमेश्वर पाए हैं। वे कैसे सुन्दर, कैसे हंसमुख, कैसे उदार, कैसे दाता, कैसे वीर हैं! पृथ्वी पर उन-सा कौन मर्द है! मैं उन्हें पाकर धन्य हो गई, मेरा जीवन सफल हो गया। हम बीस वर्ष से विवाहित हैं, तब से कभी पृथक् नहीं हुए। सारस की जोड़ी की भांति हम साथ ही रहे। हास्य और उन्माद में हमारी जवानी की दुपहरी बीती। इस ढलती आयु में पुत्र भी मिला। पर हम दोनों इतने सुखी, इतने संतुष्ट, इतने तृप्त थे कि पुत्र का अभाव हमें कभी नहीं खटका। अब भगवान् ने पुत्र भी दिया, तो जैसे पति ने ही पवित्र बालक के रूप में अवतार लिया हो। वैसा ही मुख, वैसी ही आंखें, वैसे ही ओष्ठ, वैसा ही रंग। मैं कैसे कहूं? धरती पर पांव ही किस भांति धरूं? यह जीवित सत्व कहां से हम दो से तीसरा आ गया? बीस वर्ष बाद, सुना है, प्रेम की प्रगाढ़ावस्था में दो से एक होते हैं, पर हम हुए दो से तीन! वाह, कितना सुन्दर, कितना प्रिय, कितना अनोखा यह काम हुआ!

उस दिन से हम दोनों नित्य इसे देखते हैं। जब यह खुल्-से हंस देता है, तो हमारे शरीर के रक्त की एक-एक बूंद नाच उठती है। वह रोया, और हमें चैन कहां? अब दिन का मेरा यही धंधा था, उसे नहलाना, सजाना और खिलाना। घर का धंधा छोटी बहू करती है, मैंने घर का मोह त्यागा, मेरे परमेश्वर का यह नया अवतार मेरी पूजा की वस्तु है। और काम की मुझे फुर्सत कहां? काम से निबटकर जब वे आते हैं, उसीको पुकारते हैं। वह पाजी भी मानो उनकी पद-ध्वनि को पहचान गया है। सुनते ही हंसता है। अभी दो ही दांत निकले हैं, वे उस हास्य में चांदनी में कुंद-कली की भांति बिखर जाते हैं।

एक बात और। मैं सदा की रोगिणी हूं, और वे कभी रोगी नहीं हुए। उस दिन एकाएक वे बेहोश घर लाए गए, मेरा कलेजा धड़कने लगा। क्या कोई छूत की बीमारी लग गई? जब उनके मित्र डाक्टर ने उन्हें देख-भालकर गंभीर मुख बनाया, तब मैं सिहर उठी। हे भगवान्! यह क्या होनेवाला है! पर वे होश में आए, उन्होंने आंखें खोलीं, लाल को देखा, और मुझे भी; पर, मालूम होता है, पहचाना नहीं। उनकी आंखों की पुतलियां देर तक कमरे में घूमती रहीं, मानो कुछ खोजती हैं। डॉक्टर से दो बातें कीं, और फिर बेहोश। आठ दिन में वह बेहोशी तो दूर हो गई, पर, मालूम होता है, उनका सिर फिर गया है। दिनभर घुन्न बने रहते हैं, बोलते नहीं, लाल को खिलाते भी नहीं। उसे पुकारते भी नहीं, समय पर खाते भी नहीं। कभी-कभी ठंडी आहें भरते हैं, कभी एकटक शून्याकाश को देखते हैं। यह क्या रोग है, डाक्टर नहीं कह सकते। वे रात-भर सोते नहीं, चौंक पड़ते हैं। क्या यह उन्माद है, या कोई गहरी चिंता उन्हें ब्याप गई है? हम लोग सब घबरा रहे हैं। हम क्या करें, समझ नहीं पड़ता।

उस दिन वे बड़ी देर तक बैठे लाल को देखते रहे। उस समय उनकी दृष्टि देखकर मैं डर गई। लाल हंस रहा था, और हाथ उठा-उठाकर गोद में आने की चेष्टा कर रहा था; परन्तु उसे देखकर भी वे उसे न देख रहे थे। उसकी दृष्टि कदाचित् गूढ़ जगत् में विचर रही थी। मैंने उनसे कहा—लाल को गोदी में लो न।—उन्होंने मेरा कहना सुना तो, पर शायद समझा नहीं। वे उसी भांति मेरी ओर टकटकी बांधकर कुछ देर देखते रहे; फिर खूब ज़ोर से, बहुत ही ज़ोर से हंस पड़े। ओह! मैं सिर से पैर तक कांप गई। कैसा

भयानक हास्य था वह ! वे फिर कुछ बड़बड़ाते हुए घर से बाहर निकल गए। ईश्वर ही रक्षा करे। क्या जानूं, क्या होनेवाला है ! मुझ अबला को तो एक उन्हींका सहारा है।

या अल्लाह ! मैं क्या कर गुज़री, मुझे यह हिम्मत ही कैसे हुई ? मैं एक शादीशुदा खानम हूं, मेरा शौहर है—खूबसूरत, जवान और दिल से प्यार करनेवाला। पर मैं चार मास से लहू का घूंट पीती रही, भीतर ही भीतर घुटती रही। उस दिन जो उसने नब्ज़ छुई, तो जैसे बिजली छू गई हो। खुदा का शुक्र है, मैं संभल गई, वर्ना न जाने क्या गज़ब होता ?

वाह, क्या बांका जवान है, क्या बेजोड़ मर्द-बच्चा है, क्या शीरीं-ज़बान है ! बातचीत, व्यवहार में क्या नफ़ासत है ! माना, हिन्दू है, तब हिन्दू क्या इन्सान नहीं होते ? मैं नबी को सिजदा करती हूं, मगर इन्सान से नफरत नहीं कर सकती। मगर मैं यह सोच क्या रही हूं ? इसका अंजाम क्या होगा ? ज़िल्लत, रुसवाई, दर्द, बर्बादी और न जाने क्या-क्या ? क्या वस्ल मुमकिन है ? नहीं, कभी नहीं। मैं खुदा को क्या जवाब दूंगी ? शौहर से फरेब कर रही हूं, ईमान से बेईमान बन रही हूं, मैं दीने-इस्लाम की तौहीन कर रही हूं, मैं गुनाह कर रही हूं। हाय ! अरे, मैं शैतान के पंजे में फंस गई हूं। यह खुद शैतान ही मोहनी मूरत बनाकर मेरे सामने आया है। आह ! ओ शैतान, तू मेरी आंखों और दिल से दूर हो, मैं जान खो दूंगी। अस्मत, मेरी प्यारी अस्मत पर वार न कर, ओ शैतान ! ओ काफिर ! हाय ! मैं क्या बक रही हूं ? प्यारे शैतान, दिलरुबा काफिर, तुम किधर से इस पराये दिल में घर कर बैठे ? अस्मत आह ! अब मैं तुम्हें छोड़ूंगी नहीं, किसी भी तरह नहीं। डूबना होगा, डूबूंगी; मरना होगा, मरूंगी। मगर प्यारे, क्या तुम भी मेरी तरह परेशान हो ? क्या तुम्हारे भी कलेजे में दर्द उठा हूं ? वह मुहब्बत ही क्या, जहां दोनों तरफ आग न लगी हो ! दोस्तमन्, क्या तुम मुझे छू सकते हो ? तुम्हारा धर्म क्या इजाज़त देगा ? काश तुम मुसलमान होते ! मगर क्यों ? मैं ही हिंदू न होती ! अच्छा, हिन्दू होने में क्या करना होता है ? बुतपरस्ती, ठीक। वह तो मैं कर चुकी, लो गोश्त भी छोड़ा, और सलवार भी। सब्ज़ी-तरकारी क्या बुरी है ? मैं साड़ी पहनूंगी।

दौलत से इश्क़ की मेरा हर क़तराए-सरश्क[1];
तकमा[2] है मेरी जेब[3] में दुर्रे-यतीम[4] का।

तबियत रह-रहकर घबराती है। आसमान धरती में घुसा जाता है। दिमाग में आंधी चल रही है। स्त्री सदा रोती है। बच्चा वक्त-बेवक्त कभी हंसता है; कभी रोता है, कैसा बेहूदा है! मरीज़ हरामजादे हैं, मालूम होता है, इन्हें घर में ठिकाना नहीं। यहीं पड़े रहते हैं। डाक्टर साहब, यह हुआ; डाक्टर साहब, वह हुआ। कम्बख्त न मरते हैं, न जीते हैं, मुझे खाते हैं। मैं दवाखाने को फूंक दूंगा। मुझे फुर्सत नहीं। यार-दोस्त मक्खी की औलाद मालूम होते हैं। जब देखो, चारों तरफ भिनभिनाया करते हैं। रिश्तेदार बुखार की तरह सिर पर चढ़े आते हैं। उफ्! कितनी गर्मी है! यह इतना शोर क्यों मच रहा है? यह कमरा भी कितना तंग है, जैसे कब्र हो। मैं इसकी दीवार तोड़ डालूंगा।

वह खत, हां, वह खत आया है, तीन दिल हुए। मगर पूरा पढ़ पाया हूं या नहीं, याद नहीं आता। कितनी बार तो पढ़ा, पर पूरा भी पढ़ा या नहीं, यह नहीं कह सकता। अरे, वह पढ़ा भी नहीं जाता। देखो, देखो, दिल पसलियों में से निकला पड़ता है:

कुश्ता[5] हूँ उसके तुर्रए[6]-अंबर-शमीम[7] का;
खुशबू है मेरी ख़ाक से दामन नसीम[8] का।

यह असंभव है, बौना चांद को छूना चाहता है। मगर उस खत का क्या जवाब दूं? दो महीने से नहीं गया, कितनी बार बुलावा आया है। जाते ही मर जाऊंगा। परन्तु जीने में क्या रखा है, अब मरना तो पड़ेगा ही, पर नतीजा क्या होगा? ठहरो, यह बात पीछे सोची जाएगी, पहले उस खत की बात, उस प्यारे खत की बात सोचने दो। वह लिखती है, बिजली जो आसमान से गिरे, तो बरबादी ही करे। उससे किसीका कभी क्या भला हुआ? उसकी चमक भी ऐसी कि आंखों में कौंधा मार जाए! जिसे छुए, वह झुलसकर मर जाए। फिर भी लोग उसीका दम भरते हैं, एक बार उसे छू लेने का हौसला करते हैं।

---

१. आंसू २. घुंडी ३. गरेबान ४. अनमोल मोती ५. मारा हुआ ६. ज़ुल्फ़ ७. सुगन्धित ८. वायु

क्यों ? वह आसमान में बादलों में छिपी रहे, तड़पा करे, तूफानों में टकराया करे, यही अच्छा है।

मैंने जवाब में यह खत लिखा है :

पहुँचा न आस्ताने[1] मुक़द्दस[2] को तेरे मैं ;
इस ग़म से मिस्ल चश्मा[3] हुई मेरी चश्म नम[4]।
पर ख़ाके-आस्तां को मेरी अपनी चश्म में ;
करता हूँ सुर्मा मैले[5]-तसव्वुर[6] से दम-बदम्।

ओ बिजली, तू पानी से भरे बादलों में सदा छिपी रहती थी। जब कभी एक कड़क के साथ एक झलक दिखाती, दुनिया की आंखें बन्द हो जाती थीं। किसकी मजाल थी, जो तेरे जलाल को आंख भरकर देख सके। जिसने देखने की कोशिश की, उसकी आंखें फूट गईं। जिसे तूने छुआ, झुलसकर मर गया। पर अब तुझे यह क्या सूझा कि तार में बंध बैठी ? तू जलती है, और हमारी आंखें रोशनी पाती हैं, इस तरह बेउज्र जलना तुझे क्योंकर मंज़ूर है ? और वह किसलिए ? क्या हमारी आंखों को फरहत देने, रोशनी देने या और कुछ ? इस सवाब को लूटकर कहां रखोगी ?

फिर जब सवाब का काम ही किया, तब गरीब पतंगों पर ज़ुल्म क्यों ? उन्हें अपने पास तक क्यों नहीं पहुंचकर जलने देती ? कांच का किला क्यों बना रखा है ? क्यों उसमें हाथ-पैर समेटे बैठी हो ? इन पतंगों का तो तुझ-पर जल मरने का कदीमी हक है। इनसे इतना परहेज़ क्यों ? क्या ये इसी कांच के जादू-भरे किले के बाहर ही टकरा-टकराकर मर मिटेंगे ? मरने से पहले एक बार, सिर्फ एक बार भी तुझे छू न सकेंगे ? हाय, यह तो बड़ा ज़ुल्म है।

खत भेज दिया। जवाब भी आ गया। जवाब यह है—जिसके कलेजे में आग है, वह तो जलेगा ही, उसकी हस्ती यही है। मगर बदनसीब पतंगे ! तू क्यों जान खोता है ? किस इरादे से ? क्या तुझमें यह ताब है कि तू जलती हुई बत्ती को कलेजे से लगाकर कलेजा ठंडा कर पाएगा ? कांच का किला मेरे लिए नहीं, तेरे लिए है। मैं तो दीन-दुनिया से दूर भीतर बैठी चुपचाप जल रही हूं। क्या किसीसे कुछ कहती हूं ? पर तू किस उम्मीद पर टकराता है ? बद-नसीब, तेरे जैसे लाख पतंगे भी टकराएं, तो भी इस किले को तोड़कर भीतर

१. चौखट २. पवित्र ३. स्रोत ४. अश्रुपूर्ण ५. सलाई ६. कल्पना

आना मुमकिन नहीं। जा, खुदा ने तुझे आज़ादी दी है, उसे यों न गंवा। हवा खा, हवा का रुख देख, जलनेवालों का तमाशा देख, और हाथ मल, यों जान न दे, जान के दाम बहुत हैं, कहीं न कहीं उठ ही आएंगे।

मैंने जवाब में लिखा है :

कुछ ऐसा खो गया मैं भी कि ढूंढ़े से नहीं मिलता ;
तुम्हारी जुस्तजू में हो रही है जुस्तजू मेरी।
तवज्जह से इसे क्या वे सुनेंगे ? सुन नहीं सकते ;
जुनूं के रंग में डूबी हुई है गुफ़्तगू मेरी।

एक ही गोते में कहां पहुंच गया हूं ! क्या फिर उभर सकूंगा ? डूबने दो, अरे डूबने दो। इस डूबने में वह मज़ा आया, जो ज़िन्दगी में न देखा था। मगर तुम्हें क्यों डुबोऊं ? मालिक तुम्हें खुश-ओ-आबाद करे। जो अनहोनी है, उसकी चर्चा क्या ? मगर पसलियों में से दिल फटा पड़ता है। अगर यह जान पाऊं कि तुम खुश हो, तो तड़पते दिल को तस्कीन हो, हमारी कुछ न पूछो :

हम यही पूछते फिरते हैं ज़माने भर से—
जिनकी तक़दीर बिगड़ जाती है, क्या करते हैं ?

इसके जवाब में मुझे यह खत मिला :

मिला दी ऐ हवस, मिट्टी में सारी आबरू मेरी ;
निकल जा अब मेरे दिल से, न मैं तेरी, न तू मेरी।
बनी थी बात ज़ब्ते-दर्दे-ग़म से चार सू मेरी ;
मगर अश्क़ों ने बह-बहकर डुबा दी आबरू मेरी।
हुजूमे-ग़म ने हर जानिब से दिल को घेर रक्खा है ;
मिले रस्ता निकलने का, तो निकले आरज़ू मेरी।
अभी मैं आरज़ू को देखकर आँसू बहाती हूँ ;
कभी मेरी तरह रोएगी मुझको आरज़ू मेरी।

गुनाह कर बैठी, और पहल करके ज़लील भी बनी। तुम सोचते होगे, कैसी रज़ील औरत है ! पर मुझे बदगुमानी का हक नहीं। तुम्हें आना होगा। वस्ल की उम्मीद नहीं, मगर दिल काबू में नहीं। इस मुहब्बत पर खुदा का गज़ब टूटे, इसने मुझे हर तरह लाचार कर दिया है। मगर यहां जान पर बनी है। आपने खूब खबर ली। कहो इस मर्ज़ का इलाज भी कुछ है ? फीस मुंह-

मांगी दूंगी। बखुदा इस दर्द को दूर कर दो। रोज बुखार आता है। दो-दो पहर होश नहीं रहता। कोई आकर दिल का हाल पूछता है, तो और मलाल होता है। यह कहानी किससे कहूं ? आग लगे इस जवानी को। अब इतनी ताब कहां कि रंजोफिराक को उठाऊं :

अगर तू आएगा, तो जाए फ़र्शे-पा-अंदाज—
मैं अपनी आँखें तेरे ज़ेरे-पा बिछा दूंगी।

समझ गई। असल भेद मुझपर खुल गया। वह खत मैंने उनकी जेब में पा लिया। वह कौन अभागिनी है, उसे देखने की बड़ी लालसा है। वह मेरी जीवनभर की कमाई हुई सुख, शांति, विश्वास और आनन्द की गृहस्थी को लूट चुकी। लानत है उसपर। सुना है, वह आली खानदान है, उसके पति हैं, पिता हैं, परिवार है, उन सबपर उसे संतोष नहीं। वह अपना घर फूंककर औरों का भी फूंकना चाहती है। वह ईमान के ठिकाने बेईमान होकर बेईमान के ठिकाने ईमानदार होना चाहती है। क्या आबरूवाली औरतें ऐसी ही होती हैं ? हे परमेश्वर, उसने मेरे देवता को पापी कर दिया। जिनपर मुझे गर्व था, जो चालीस वर्ष तक शेर की तरह निर्भय फिरे, जिनकी नज़र से भेड़-बकरियों को नज़र मिलाने की ताब न थी, आज गीदड़ी ने उन्हें अपना लुकमा बना लिया ! हां, बना लिया। पर क्या हवन के भाग को कौआ खा जाएगा ? मेरी रगों में क्या खून नहीं ? पानी है ? क्या मैं अपने बाप की असल बेटी नहीं ? अपने पति की पत्नी नहीं ? अपने पुत्र की माता नहीं ? फिर क्यों मैं मुर्दे की तरह अपने पति को नष्ट होते देखूं ? हां, उनकी चेष्टा में अन्तर पड़ गया। वह सिंह की भांति निर्भय चाल और दृष्टि अब नहीं रही। अब वे चोर की भांति चलते-फिरते, देखते और बात-बात पर चौंकते हैं। वे मुझ अभागिनी से भय खाते हैं। भीगी बिल्ली की भांति मेरे सामने आते और जाते हैं। उनके इस पतन को देखकर छाती फटती है ! मैं सदा की उनकी दासी, आज्ञाकारिणी और शिष्य रही, उनकी पद-रज सिर पर धरकर कृतार्थ हुई। अब वे मुझसे भय करें, यह अनोखी बात है ! पर पाप ऐसी ही गंदी वस्तु है। मेरे स्वामी पाप में गिरे हैं, और उनका पतन हुआ है, अब ईश्वर ही मालिक है।

मैं क्या करूं ? क्या मरूं ? और, उन्हें फिर निर्भय करूं ? उनसे कहूं कि

जहां तुम्हें सुख है, रहो; यह कांटा दूर होता है? हाय! और कुछ दिन पूर्व, इस लाल के जन्म से प्रथम यह होता, तो सब कुछ संभव था। बहुत ही आसान था। पर अब नहीं। उनके पाप पर उनकी स्त्री मर सकती है, पुत्र नहीं, पुत्र की माता भी नहीं। आज मेरा बेटा समझदार होता, जवान होता, तो मैं उससे कहती—बेटे, तेरे बाप ने एक और स्त्री को, जो दूसरे की धर्मपत्नी है, तेरी माता की जीवनभर की सेवा-चाकरी से खरीदी हुई दौलत अनायास ही दे दी है। प्रेम अब उनके हृदय में नहीं, आंखों पर है। इस अधेड़ अवस्था में उनकी जवानी नई हुई है।—तब मैं नहीं जानती, मेरा बेटा क्या करता! खुद मरता, जैसा कि मैं मरना चाहती हूं या बाप को ही मार डालता। पर यदि मैं मरूंगी ही, तो सब कुछ लिखकर बेटे के तावीज़ में रख जाऊंगी। मेरे मरने का भेद वह जवान और बालिग होकर जानेगा, और अपनी बेइज़्ज़ती और मां की कुर्बानी का बदला लेगा।

परन्तु आह! यह मैं क्या सोच रही हूं? और क्यों? कसूर तो मेरा है, स्त्री-जाति जीवनभर सुन्दरी क्यों नहीं रहती? जवान क्यों नहीं रहती? जवानी और सौंदर्य ही तो स्त्री का धन है। प्रेम, सेवा, पतिव्रत, इनकी पुस्तकों में तारीफ पढ़ी है, पर इनके लिखनेवाले या तो झूठे थे या मूर्ख। इन चीज़ों का कुछ मूल्य नहीं। प्रेम तो त्याग है, और वासना ग्रहण है। वासना की भूख सेवा और प्रेम से न मिटेगी, उसे चाहिए रूप-यौवन। जिस मर्द को वह मिलेगा, वह उसे क्यों छोड़ेगा?

मगर स्त्री, वह स्त्री। अरे, वह स्त्री क्या कर रही है? क्या वह भी मेरी जैसी नहीं? मैंने अपने होश संभालने से अब तक अट्ठाईस वर्ष गुज़ार दिए। मैंने किसी मर्द को मर्द न जाना। पति को भी मैंने मर्द जानकर नहीं, देवता जानकर पूजा है। वह स्त्री अपने पति के रहते गैर-मर्दों पर शरीर और आत्मा से आक्रमण करती है। दानवी वृत्ति ऐसी मधुर हो सकती है, वह अब समझी। मगर मैं क्या करूं? मेरे प्यारे बेटे, मेरे लाल! मुझे तुम्हीं सलाह दो, मैं तुम्हारी मां हूं। जिस असाधारण अधिकार ने मुझे गर्वपूर्वक 'मां' कहने का अवसर दिया, उस अधिकार पर डाका पड़ता है। कहो, मेरे प्यारे अबोध बच्चे! मैं जूझ मरूं या मैदान छोड़कर भाग जाऊं? हाय! तुम हंसते हो!

मेरी आंखों के तारे, इसी भांति कभी हम भी हंसते थे। मालूम होता है, वे दिन अब बीत गए !

स्त्री मायके चली गई। शादी का बहाना था, पर असल बात मैं समझ गया। मुझे दंड दिया गया था। मैंने बाधा न दी। सोचा था, दिल का दर्द छिपाने का सुभीता मिलेगा। खुलकर रो और छटपटा लूंगा। परन्तु मेरी यह साध पूरी न हुई। घर में सन्नाटा है, भूख-प्यास से हिसाब साफ है। गर्मी ऐसी है कि इस साल पड़कर फिर न पड़ेगी। भीतर-बाहर से जल रहा हूं। वहशत, वहशत, वहशत, रात-दिन वहशत में कटती है। जितना ही उस बात को भुलाता हूं, वह सामने आती है। मैंने उसे छुआ नहीं, छूने की आशा भी नहीं, फिर न जाने क्या हवस दिल में समाई है। दिल घबराता है, दिन-रात कासिद की ओर आंखें लगी रहती हैं। यह खतो-किताबत भी कितनी खतरनाक है ! पर मैं पागल हो गया हूं, मैं आग से खेल रहा हूं। नतीजा क्या होगा ? वह पाजी छोकरा जब खत लाता है, हंसकर सलाम करता है। नौकर-चाकर मुंह फेर-फेर हंसते हैं। ये सब क्या मुझे आवारागर्द समझते हैं ? क्या मैं इस कदर गिर गया हूं ? वहां जाता हूं, तो घर के लोगों की संदिग्ध नज़रें पड़ती हैं। मगर वह है कि जुनून में सवार है, टस से मस नहीं होती। जान पर खेलने को तैयार है। अंजाम बर्बादी है। खूब देख लिया और समझ लिया। नीचे बहा चला जा रहा हूं। पतन, पतन, पतन। इस पतन का कहीं भी ठिकाना नहीं है। क्या कोई भी ऐसा नहीं, जो मुझे उबारे ?

स्त्री के लौट आने के बाद एक दिन वह सीधी घर चली आई। सुनकर दंग रह गया। देखा, वह रंगीन शरीर रंगीन वस्त्रों में छिपकर भी उघर रहा था। नब्ज़ क्या देखता ? रोग क्या बताता ? उन आंखों में जो रंग था, देखकर कांप उठा। स्त्री खड़ी नीरव दृष्टि से विष-वर्षण कर रही थी। उसके होंठ घृणा से सिकुड़ रहे थे। और, वह तिरस्कारभरे स्वर में धीरे-धीरे रह-रहकर कुछ कह रही थी। मैं कुछ कर न सका, कह भी न सका, वह तिरस्कार के तीर खाकर चुपचाप चली गई। चलती बार उसने एक दृष्टि मुझपर फेंकी थी। वह प्यासी दृष्टि तो जीवनभर याद रहेगी। उसने चलती बार जो लाल को एक बार ज़ोर से छाती से लगाकर चूमा, तो एक ठंडी आह निकल गई। मेरी स्त्री

क्रुद्धा सर्पिणी की भांति देखती रही। उधर उसने देखा ही नहीं। वह नीची निगाह किए चली गई।

यह क्रुद्धा सर्पिणी की भांति फुफकारती घर-भर में लोटने लगी। आज तीन दिन हो गए, खाना नहीं बना है। लाल न नहाया, न उसके कपड़े बदले गए। घर में झाड़ू नहीं लगी। रुदन का प्रवाह बह रहा है, शाप और अभिशाप का मेंह बरस रहा है, लानतों की बौछारें चल रही हैं। वाह! क्या ही मैंने पुण्य कमाया! क्या सत्कर्म किया! यही मेरी पत्नी है, जिसने भूख गिनी न प्यास, जीवनभर सेवा करती रही। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख सब सिर पर उतारे, मेरे प्राणों में इसके प्राण भरते रहते थे, मेरे मुख की उदासी देखकर इसके प्राण सूख जाते थे। आज मुझे पतित समझकर घृणा करती है। क्या इसपर क्रोध करूं? इसकी यह मजाल! मैं मर्द हूं, जो चाहूं करूंगा। इसका अपमान मैं नहीं सहूंगा। यह तो अवश्य महीनों से भूखी रही है। अरे देखो-देखो, इसकी आंखें गढ़े में घुस गई हैं! चेहरा कैसा सफेद हो गया है! होंठ सूख गए हैं। सीधी खड़ी नहीं हो सकती। कमर टूट गई या झुक गई है। हे परमेश्वर, क्या यह जान देने पर तुल गई है? कैसे पूछूं? कैसे दिलासा दूं? कैसे समझाऊं? हाय! मेरा बोलने का साहस ही नहीं होता। क्या करूं? रोऊं, कपड़े फाड़ लूं, ज़हर खाऊं? आह! मैं किस फेर में फंस गया भगवान्!

मेरे घर छोड़ने का यह परिणाम होगा, यह तो सोचा भी न था। मैं चली गई थी यह सोचकर कि इनकी आंखें खुल जाएंगी। लाल को याद करेंगे। सीधे रास्ते पर आएंगे। परन्तु देखती हूं, पाप घर में ही घर कर बैठा! आखिर उसे मेरे घर में आने का साहस कैसे हुआ? उसे मेरे सम्मुख खड़े होने, मेरे बच्चे को छूने का साहस ही कैसे हुआ? क्या पाप में भी इतना साहस है? या मेरा संदेह वृथा है? पर मैं जो कुछ देख चुकी, उसमें संदेह कैसा?

उसने मुझसे सखी-भाव से बात करने की चेष्टा की। उस सखी को पाने से पहले मैं मर क्यों न जाऊं? जिसने मेरे जीवन का सार लूटा, मेरे सिर का मुकुट उतारा, मेरा जीवन धूल में मिलाया, मेरी सोने की गृहस्थी मिट्टी में मिलाई, उसे मैं सखी-भाव से कैसे देखूं? और, जो भाव मन में नहीं हैं, उन्हें

झूठ-मूठ मुंह पर कैसे लाऊं ?

वह आई रोगिणी होकर, और वे आए डाक्टर बनकर, मैं बनी तमाशाई। वाह ! क्या बढ़िया तमाशा देखा ! कैसा सच्चा रोगी कैसे अच्छे डाक्टर ने देखा ! छूते ही ज्वर उतर गया होगा। दुष्टा मेरे बच्चे को छू गई, प्यार कर गई। उसका ऐसा साहस ? हाय ! मेरी दृष्टि में उसे भस्म करने की शक्ति न हुई, मैं उसे भस्म कर डालती।

अच्छा, अब मेरे जीवित रहने में सार नहीं। मैं मरूंगी। पर वे भूखे क्यों रहें ? चेहरा कैसा सूखकर काला हो गया है ! बाल उलझ गए हैं। न नहाने की चिन्ता, न खाने की। मेरे जीते-जी यह दशा है, मरने पर क्या होगा ? कौन उन्हें खाना बनाकर देगा ? किसीके हाथ का उन्हें रुचता नहीं। मैंने ही तो उनकी आदतें बिगाड़ रखी हैं। कपड़ों तक की भी उन्हें सुध नहीं। हाय ! मरना भी मेरे लिए ऐसा कठिन है ? फिर लाल को किसे सौंपूं ?

ज़िंदगी तलख होनी थी, हो गई। रुसवाई होनी थी, हुई। गुनहगार क्या कम हूं ! मगर दिल को क्योंकर समझाऊं ? छाती फटी पड़ती है। कब से दिल में घुट रही थी, उस दिन वहशत सवार हुई, और मैं चल दी। आगा-पीछा भी नहीं सोचा। मुझे मालूम था, वहां वह नहीं है, मायके गई है। इसीसे मैंने हिम्मत की थी। वहां वह थी; मैंने उसे देखकर हंसकर हाथ बढ़ाया। वह बोली नहीं, बैठने को भी न कहा। हाय ! यहां तक मैं ज़लील बनी, खुदा की मार मुझपर। इज़्ज़त-आबरू का अब मैं कहां तक पास करूं ? मैंने कहा, मैं नब्ज़ दिखाने आई हूं, उसने हंस दिया टेढ़ा मुंह करके। उसमें कितनी नफ-रत थी !

जब वे आए और देखने लगे, तो वह जलती आंखों से देखती रही। मैं उसकी ओर आंखें भी तो न उठा सकी। जब मैंने उस प्यारे बच्चे को बेसाख्ता छाती से लगाकर प्यार किया, तब उसने मुझे सांपिन की तरह घूरकर देखा। उस नज़र में जो कुछ ज़हर था, उसका न कहना ही अच्छा है। मैंने हंसकर टालना चाहा। मगर हाय, मेरी हंसी की वहां जो दुर्गति हुई, वह खुदा दुश्मन की भी न कराए। मेरे कानों में वे लफ्ज़ गूंज रहे हैं, और मेरी आंखों में उस गुस्से और नफरत से भरी आंखें लाल लोहे की सलाई की तरह घुस गई हैं।

मैं जितना तन सकती थी, तनकर रही, पर गुनहगार तो मैं ही थी, ज़लील होकर लौट आई। हाय :

जो न देखा था ग़म, वह देखेंगी ;
दिल के कहने में आ गईं आँखें।
है दवा इनकी आतिशे-रुख़सार ;
सेंकते हैं उस आग पर आँखें।
दिल का तो घोट-घोटकर रक्खा ;
मानतीं ही नहीं मगर आँखें।
नौहागर कौन है मुक़द्दर पर ;
रोनेवालों में हैं मगर[1] आँखें।
यही रोना है गर शबे-ग़म का ;
फूट जाएँगी ता सहर आँखें।
'दाग़' आँखें निकालते हैं वह ;
उनको दे दो निकालकर आँखें।

आग़ोशे-लहद[2] में जब कि सोना होगा,
जुज़[3] ख़ाक, न तकिया, न बिछौना होगा।
तनहाई में आह ! कौन होवेगा 'अनीस' ;
हम होवेंगे, और क़ब्र का कोना होगा।

दोस्तमन्, आख़िर जिसका डर था, वही हुआ। अकारिब आगाह हो गए। अब मिलने की राह नहीं। मशविरे हो रहे हैं। जिसे दिल प्यार करता है, वह इस तरह छूटता है, यह जब्र किस तरह इख़्तियार किया जाए। होश ठिकाने नहीं, कोई राज़दां भी नहीं, क्या तुम्हारा कोई राज़दां है ? किसीसे दिल की कहते हो ? कोई तुम्हें तसल्ली देता है, या भीतर ही भीतर घुटते हो ? सब्र ही अब करना होगा, और हमें मरना होगा। जवानी हवा का झोंका है, आया और गया। दुनिया सराय फानी है, किले और महलवाले न रहे, तब हम क्या रहेंगे ? कल जहां फूल थे, वहां आज वीराना है। कल जो साहबे-हुस्न साहबे-हुक्म थे, आज वे नहीं हैं। मकां है, मकीं न रहे। हमारी हस्ती क्या है। दिल लगी ही न रही,

१. शायद २. कब्र की गोद ३. सिवा

तो हम क्यों रहें ? लैला और मजनूं न रहे, शीरीं और फ़रहाद न रहे, मगर उनकी उल्फत की बू अभी है, और ताकयामत रहेगी। हम जान दे दें, तो तुम रोना नहीं, हमें भूल जाना, या दूर चले जाना। हमारे मरने पर रूह तुम्हारे लिए भटकेगी, मगर कौन कहे, तुम्हें पाएगी या नहीं। उसे रास्ता कहां मिलेगा ? ढूंढ़ने कहां जाएगी ? खैर, मुझपर जो बीतेगी, सहूंगी। मगर प्यारे, तुम तबियत को रोके रहना। मलाल हो, तो ज़ब्त करना। मेरी रुसवाई का खयाल रखना। मरने की खबर पाकर यों न दौड़े चले आना। सबके सामने रोने न लगना। अगर पागल हो गए, तो अच्छा न होगा। हमारी इज़्ज़त का खयाल रखना। ज़बान बन्द रखिएगा। कभी किसीसे मेरा तज़किरा न कीजिएगा। चुपचाप रंजोगम उठा लेना, तबीयत किसी और तरफ लगा लेना। मेरी याद से क्या मिलेगा ? दिल में न कुढ़ना, घुट-घुटकर जान न दे डालना। मर्द हो, मर्द की तरह रहना। कभी-कभी चुपचाप कब्र पर आया करना, और तुरबत पर दो-चार फूल चढ़ा जाया करना। मेरा गुंचए-दिल खिला जाया करना। समझना, ख्वाब देखा था। ख्वाब का खयाल ही नहीं, बीवी और बच्चों का खयाल रखना। वह फूल-सा बच्चा कुम्हला न जाए। बीवी को अब न कुढ़ाना। सुना है, उन्हें बुखार होने लगा है। मैं उन्हें देखने आती, मगर अब तो जाने ही की तैयारी है। कल यहां से कूच है। आज यहां हैं, कल कब्र में होंगे। अब के बिछड़े हश्र के दिन मिलेंगे। अब तुम इतनी दुआ करो, कल की मुश्किल आसान हो। वाह ! क्या ज़िंदगी का लुत्फ उठाया, क्या नेक नाम कमाया, ज़िंदगी का कुछ भी मज़ा न मिला ! दिल में तुम्हारी याद लेकर चले। यह याद बनी रहे, तब है। हमें अपने मरने का तो गम नहीं, अफसोस यह है, कौन तुम्हारी दिलजोई करेगा ? मगर मैं करूं भी तो क्या ? अपनी-सी मैं निबाह चली। दुनिया की नज़र में कलमुंही बनी। खुदा की मर्ज़ी जो थी, वह होकर रही। बच्चे को प्यार, बीवी से तकसीर की मुआफी। दोस्तमन्, अलविदा, अलविदा, अलविदा।

क्या हर्फ़ ज़ुबां पर तेरी आया था कि ऐ शमअ,
गुलगीर[1] तेरे सर पै जो मुंह खोलकर आया।

---

१. कैंची

यहां तक हो गुजरी, तुम मरोगी, और मैं तमाशा देखूंगा ? वाह, प्यारी, मर्दानगी की बलिहारी, तुम मरो और मैं जिऊं। तुम जान दोगी, तो मैं भी मरूंगा। रूह को रूह ढूंढ़ लेगी। फिर कौन उन्हें रोकेगा ? जिस्म के मालिक और लोग हैं, रूह तो आज़ाद है। जो देखेगा, रोवेगा। आगे-पीछे जनाज़ा होगा।

यह एकाएक क्या सोचने लगीं ? तुम्हें मेरे सिर की कसम, ऐसी बात को दिल में जगह न देना ! अभी तुम्हारी उम्र क्या है, मैं बदनसीब तुम्हारे रास्ते में कहां से आ गिरा ? सोचता हूं, और अफसोस करता हूं। बीवी की हालत अबतर है। वह चारपाई पर पड़ गई है। बच्चा मुझसे संभलता नहीं, दिनभर रोता है, परेशान हूं, क्या करूं ? दिल में जान दे देने की आती है, मगर सोचता हूं, जिसके लिए इज्ज़त-आबरू, घर, सुख सब खोया, उसे खोकर जाऊं कहां ? दिल में वह हिम्मत, जवांमर्दी अब नहीं रही। मैं अंधा, अपाहिज हो गया हूं। खुदा के वास्ते यों चुपचाप न उड़ जाना। अब जहां जाना होगा, साथ चलेंगे। हम लोग दूर तक पहुंच चुके हैं। अब पीछे फिरने की कौन सोच सकता है ?

य' नख़्ले-आह[1] होता बेद[2] ही काश ;
न होता गो समर[3], साया तो होता !

छत नीचे को धंसी आती है। अंधकार घिरा आता है। कानों में कैसा शब्द हो रहा है। हाथ उठा सकती नहीं। क्या आज ही समाप्ति है ? लाल पास ही सो रहा है। कब से सोच रही हूं, एक बार प्यार से इसपर हाथ फेर लूं। जब तक जीती हूं, इस सुख से क्यों वंचित रहूं ? उनकी दशा देखकर छाती फटी जाती है। दिन में सो चक्कर लगाते हैं, पलंग के चारों ओर घूमते रहते हैं, पर कुछ बोल नहीं सकते। मन में ज़रूर कुछ तूफान है, पर उसे जानकर अब क्या करूंगी ? जब चलना ही है, तब इन बातों में क्या !

रात जो स्वप्न देखा है, उससे मन में भांति-भांति के संदेह उठते हैं। मानो मैं एक दिव्य लोक में पहुंच गई हूं। वहां प्रत्येक चीज़ चमक रही है। मेरे सब दुःख दूर हो गए हैं। सब कसक मिट गई है। वह वहां फूल चुनती फिरती है। वैसा ही उसका रूप, वही मकड़ी के जाले के समान बारीक वस्त्र,

१. आहरूपी वृक्ष २. बेंत ३. फल

वैसे ही संपुटित होंठ। वह हंसती हुई आई, और ढेर-से फूल गोद में बखेर गई, मैं देखती खड़ी रही। पीछे देखा, तो वह खड़े ज़ोर से हंस रहे हैं, वैसे ही, जैसे पहले हंसते थे। गोद में लाल था। उसे वे उसी भांति उछाल रहे थे। वैसा ही उनका चमकता हुआ गुलाबी रंग था। मैंने दौड़कर जो लाल को लेने को हाथ उठाया, आंख खुल गई। हाय! यह प्यारा स्वप्न भी हाथ से गया। जागकर देखा, पलंग खाली पड़ा है, और वे धरती में मेरे पलंग के नीचे, औंधे मुंह पड़े हैं। मुझमें उठने की ताब न थी। मैंने झुककर उन्हें छुआ, सचमुच वे जाग रहे थे। उठ बैठे, मेरा हाथ पकड़ा, चूमा, और आंसुओं से तर किया। भगवान् ही जानता है, वे कब से रो रहे थे। मैंने उनका हाथ उठाकर छाती पर रखा। बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर न कह सकी, गला भर आया। अंत में मैंने कह ही दिया :

'स्वामी, मुझे क्षमा करना, मैं जाती हूं, और ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि उस जन्म में फिर तुम्हारी चरण-सेवा मिले। मेरा जीवन खूब सुख से बीता। तुमने इतना सुख दिया, अब दुःख के लिए किसे उलाहना दूं? दुःख यही है कि तुम्हारी कौन सुध लेगा? कौन यत्न करेगा? हाय! मैं ही तुम्हें इस दुःख में डाल रही हूं। मैं जाती हूं स्वामी, लाल का ध्यान रखना।'

वे सुनकर कुछ न बोले। चुपचाप रोते रहे। मालूम होता था, अनुताप से उनका कलेजा फटा पड़ता है। उनकी आंखें लज्जा से अवनत और शोक से परिपूर्ण थीं। आह! हम लोग वेदना के मार्ग पर कितनी दूर निकल गए! क्या अब भी लौटना संभव है? इस जर्जर शरीर में प्राण लौट आएंगे? स्वास्थ्य हरा-भरा हो जाएगा? जीवन सुखी होगा? वैसे ही हंसेंगे? उसी भांति किलोल करेंगे? वह हमारी लुटी हुई सोने की गृहस्थी फिर हमें मिल सकेगी?

हाय! कैसी सुंदर सुनहरी धूप है, कैसा प्यारा नीला आकाश है, कैसा प्यारा दिन है, कैसा लुभावना, मधुर यह जगत् है? यह सब यहीं रहा। मैं चली इस सबको छोड़कर, लाल को भी छोड़कर और प्राणों से प्यारे पति को छोड़कर भी। इच्छा नहीं होती, पर जगत् में किस प्राणी की इच्छा पूर्ण हुई है! हे ईश्वर, उन्हें सुखी रखना।

घंटी बजी। मैं साहस करके फोन पर गया। तकदीर ठोकी, और भागा

हुआ पहुंचा, घर में कुहराम मचा था। ज़ईफ़ बाप की हालत देखी, सिर के बाल नोच डाले थे। पागल की तरह बक रहे थे। देखनेवालों का कलेजा मुंह को आ रहा था। यों तो दुनिया मरती है, पर नौजवान बेटी की मौत कयामत है। सब सिर पीट रहे थे। मेरे हाथ-पांव थर्राने लगे। वृद्ध गृहपति ने मुझे देखते ही कहा—डाक्टर साहब बचाइए। मेरी बेटी को बचाइए, मेरी इज्ज़त-आबरू को बचाइए। अभी दम है, शायद बच जाए। पर्दा फिज़ूल है। जाइए, भीतर जाइए।—मैं लपका हुआ भीतर गया। बुड्ढी मां सिर पीट-पीटकर रो रही थी—हाय! मेरी ग़ैरतदार कमसखुन बेटी, दिल पर जो गुज़री, वह दिल ही में रखा, कुछ बयान न किया। हाय! तुझे किसकी नज़र खा गई? ज़ईफ़ी में मां का दिल तोड़ दिया। अरे, आज मेरा घर बेचिराग हुआ जाता है। लोगो! कोई जतन करो, अभी तो उसमें सांस है। अरे, मेरी बेटी सब अरमान छाती में साथ लिए जा रही है, उसे रोको। अरी मेरी दुलारी, तूने मां से भी तो कुछ खिदमत नहीं ली।

मेरी हालत खराब थी, पैर लड़खड़ा रहे थे। अब गिरा, अब गिरा, यह हाल था। जिगर के टुकड़े हो रहे थे। भीड़ को हटाकर नब्ज़ देखी, दिल की धड़कन देखी, आंखों की पुतलियां देखीं, नाखून और दांत देखे। दिल में हिम्मत हुई। लपका हुआ फोन पर गया। कैप्टेन उड को दो नर्सों और ज़रूरी सामान-सहित बुलाया। बाहर आकर वृद्ध से कहा—घबराइए नहीं, अभी उम्मीद है, ज़रा मेरी मदद कीजिए।

दौड़-धूप होने लगी। कैप्टन उड ने आते ही मशविरा किया, और सुई लगाई। उपचार होने लगा। नर्स, मैं और कैप्टन जी-जान से लगे रहे। धीरे-धीरे दिन चढ़ा, और बीता; रात आई, और गम्भीर होने लगी। कैप्टन ने कहा—डाक्टर, मरीज़ न मरता है न जीता है, अजब झमेला है!—मरने का वक्त तो गुज़र गया।—मैंने कहा—साहब, अब मरने का नाम न लें। मरीज़ अच्छा हो रहा है।—रात ढलने लगी। रोगी ने सांसें लीं, आंखें खोलीं, और चारों तरफ देखा। मेरे चेहरे पर उसकी आंखें आकर ठहर गईं। उनमें से आंसुओं की धार बहने लगी। कुछ देर में वह बेहोश हो गई। मेरी हालत खराब हो रही थी, मैं होश में न था। कैप्टन उड ने मेरा हाथ हिलाकर कहा—डाक्टर, देखो, वह सो रही है। नब्ज़ और दिल की हालत ठीक है। अब कोई खतरा

नहीं है। अब मैं जाता हूं।

मैं आपे से बाहर होकर वृद्धा के सामने जा खड़ा हुआ। मैंने उसके पैर छुए, और कहा—अम्मी, खुदा का शुक्र करो, हमशीरा अब अच्छी हैं। अब कोई खतरा नहीं।—मेरा गला भर आया, और मैं वहीं गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा।

वृद्धा ने मेरे सिर पर हाथ रखकर गद्गद कंठ से कहा—बेटे, खुदा तुम्हें राहत बख़्शे। मेरी बेटी की जान और आबरू बचा ली, एक घर बर्बाद होने से बच गया।

मैं एक बार फिर रोगिणी के कमरे में गया। वह खूब सो रही थी। अब मैं वहां से चुपचाप चल दिया। उसकी आंखें खुलने पर सामने जाने की हिम्मत न थी।

अब क्या था, वह नशा उतर चुका था, जैसे स्वप्न देखा हो। मैं अपने-आप-पर लज्जित था। दोपहर को खबर मिली, वह अब अच्छी है, दूध पिया है, आपको याद किया है। मैंने एक पुर्जा लिखा :

'मुअज़्ज़िज़ बहन,

यह जानकर खुशी हुई कि आप अब अच्छी हैं। खुदावंद करीम की दुआ से आप जल्द उठने-बैठने लगें, यही चाहता हूं। तुम्हारा भाई—'

शाम को वृद्ध गृहपति ने आकर मेरा पल्ला और हाथ चूमे, और आंखों से लगाए। फिर वे लिपट गए, और रोकर बोले—आपने अपनी और मेरी इज़्ज़त रख ली। खुदा इसका बदला देगा।—इसके बाद उन्होंने नोटों का एक गट्ठा सामने रखकर कहा—इन्हें मंज़ूर करना होगा।

मेरी आंखें भर आईं। मैंने उन्हें वापस कर दिया। वे कुछ न कह सके, चले गए। मेरे दिल से जैसे वर्षों का बोझ उतर गया हो। आज मेरे दिल में उमंग थी। पाप का शैतान भाग गया था। अब मैं फिर वैसा ही प्रसन्न और सुखी था। मैं दौड़ा हुआ ऊपर गया। पत्नी चुपचाप पलंग पर पड़ी थी।

मेरी आंखों से आनन्द फूटा पड़ता था। मैं रातभर और दिनभर ग़ायब रहा था, मगर इस वक्त मुझे इसका कुछ ध्यान न था। मैंने आते ही पत्नी का तड़ातड़ चुंबन लेना शुरू कर दिया। वह बहुत कमज़ोर हो रही थी, घबरा गई। पर मैंने उसे हाथों-हाथ उठा लिया। गुसलखाने में ले गया। अपने हाथ से नह-

लाया, बाल धोए, तेल डाला, कंघी की, फूलों से चोटी गूंथी, और नई साड़ी पहना दी। वह रो रही थी चुपचाप। पर मुझे इसकी परवाह नहीं थी। इसके बाद मैंने उसे उठाकर कुर्सी पर बिठा दिया। पलंग उठाकर खड़ा कर दिया। फिर मैंने अपने लाल को नहला-धुलाकर नये कपड़े पहनाए, और उसे गोद में लेकर पत्नी को दे दिया। मैं स्वयं भी शायद आठ महीने बाद ठीक तौर से नहाया। हजामत बनवाई, और कपड़े भी बदले। जब मैं निबटकर पत्नी के पास आया, वह उठकर लिपट गई। एक बार हम दोनों रोए, खूब रोए। दुनिया में और कौन ऐसे मजे से रोया होगा! हमें रोता देखकर लाल जोर से हंस दिया। उसके दोनों हाथ उठ गए। वह जोर-जोर से चिल्लाकर अपने गोद के अधिकार को ध्वनित करने लगा। पत्नी हंस दी, उसने उसे गोद में लिया, चुमकारा, और मुझे दे दिया। उस दिन हम लोगों ने एकसाथ खाना खाया, और इस प्रकार पाप के शाप से हमारा पिंड छूटा।

एक दिन घर में आकर देखा, कुछ मेहमान आए हुए हैं। मैंने बाहर ही से आवाज़ दी—क्या मैं भीतर आ सकता हूं?

मैंने देखा, वही बारीक मकड़ी के जाल के समान वस्त्र पहने वह बेहिजाब बाहर निकल आई। उसकी गोद में लाल था, उसने हंसकर कहा—भाई साहब! आप आज इस वक्त अन्दर नहीं आ सकते। ज़रा वहीं खड़े रहिए।—इतना कह वह भीतर गई। चिलमनें छोड़ दीं, और एक कुर्सी लाकर बाहर दालान में डाल दी, फिर कहा—अब आइए, अम्मीजान और बहनें सब हैं।—आज हम बहुत खा-पीकर टलेंगी। बैठिए, अम्मीजान आपको बहुत याद करती हैं।

मैंने इस मेहरबानी और तकलीफ के लिए शुक्रिया अदा किया, और आगे बढ़कर चिलमन की ओर मुंह करके अम्मी को आदाब अर्ज किया। उन्होंने दुआ दी, और कहा—देखो भाई, ये लड़कियां आफत हैं, नागहानी तुम्हें तकलीफ देती हैं। कहती [illegible] करो, मगर मानतीं नहीं। घरभर में से ढूंढ़-ढूंढ़कर मेवा और मिठाइयां खा गईं। बेचारी बहू की जान घपले में डाल रखी है।

चिलमन के बाहर से मैंने सुना, वही बोल रही थी—अम्मीजान, आप तो नाहक खफा होती हैं। भाभी पराये घर की बेटी ठहरीं, वे चार दिन से यहां आकर मालकिन बन जाएंगी? हम ठहरीं इस घर की बहन-बेटियां, हम तो खूब खाएंगी,

और जो बचेगा, उठाकर ले जाएंगी, आप भांजी मारनेवाली कौन ?

मेरे आंसू निकल आए। मन में सोचा, यह भी एक सम्बन्ध है, पर पवित्र और वासनारहित। यह आत्मा का है, शरीर का नहीं। अहा ! इसमें कितना आनन्द है ! मैंने कहा—अम्मी, हमशीरा ठीक ही कहती हैं, ग़रीब भाई पर उनकी इतनी इनायत है ! उन्हें आप डांट-डपट न कीजिए।

बुढ़िया हंस दी। बोली—लो और सुनो, सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। अच्छा भई, अब हम न बोलेंगे।

दिनभर वे लोग रहे, खूब खाना-पीना रहा। पत्नी ने मन से खातिर की। उनके जाने पर देखा, कोई दो दर्जन थाल सजे रखे थे। किसीमें जड़ाऊ ज़ेवर, किसीमें मेवा, किसीमें रेशमी कीमती कपड़े। ये सब लाल के लिए थे।

पत्थर में अंकुर

पत्थर में भी अंकुर उगता है। इसका अर्थ यही है कि कठोर और दुर्दान्त व्यक्ति भी कुसुम सम कोमल-पवित्र बालिका के सम्मुख अपनी भयंकरता को त्यागने पर विवश हो सकता है। यह कहानी आचार्य-श्री की बहुचर्चित कहानियों में से है।

एक दस वर्ष की बालिका पर्वत की उपत्यका में बसे हुए छोटे-से गांव से हटकर एक झोपड़े के बाहर खड़ी भयाकुल नेत्रों से टेढ़े-तिरछे पहाड़ी रास्ते पर दूर तक देख रही थी। संध्या हो गई थी, भयानक घटाएं छा रही थीं, बादल गरज रहे थे, और बिजली चमक रही थी। भीषण वर्षा के सब आसार दिखाई पड़ते थे।

लड़की बिल्कुल अकेली थी। झोपड़ी के आसपास गहन जंगल था। गांव काफी फासले पर था। कम से कम इतना तो अवश्य था कि यदि घटनावश लड़की चिल्लाए या उसे किसी दुर्घटना का सामना करना पड़े, तो गांव से सहायता मिलना संभव न था।

बालिका बहुत ही सुन्दर थी—बहुत ही सुन्दर। उसके बाल सुनहरे थे, और वे उसके कंधों पर लहरा रहे थे। शरीर पर साधारण पुराना वस्त्र था, पर स्वच्छ था। वेश-भूषा पर, मालूम होता है, बालिका का कुछ ध्यान न था। इस समय वह बहुत व्याकुल, भयभीत और चंचल हो रही थी। सामने मीलों तक छोटी-बड़ी पहाड़ियां थीं। उनमें श्वेत रेखा की भांति पहाड़ी मार्ग चमक रहा था। उनपर दूर तक बालिका चारों ओर देख रही थी। वह विकल भाव से कभी-कभी झोपड़ी के पीछे के भाग में जाकर उधर भी देर तक और दूर तक देख लेती थी।

उसका पिता रात को न जाने कहां चुपचाप उठकर चला गया था। ऐसा वह बहुधा करता था, पर इस बार उसे लौटने में बहुत देर लगी थी। वह प्रायः दिन उगते-उगते आ जाता था। आज दिन बीत चुका था, पर उसका पता न था। दिन बहुत खराब था। बालिका प्रातःकाल ही से पिता के लिए भोजन बनाए प्रतीक्षा कर रही थी। बड़ी देर तक उसने भोजन को गर्म बनाए रखा। वह

सोचती थी, भोजन के समय तक तो जरूर ही आ आ जाएंगे। उसने पिता के हाथ-मुंह धोने को गर्म जल, साफ अंगोछा और सभी सामान ठीक-ठीक जुटा रखे थे। वह जानती थी, वे थके हुए आएंगे, उन्हें आराम की आवश्यकता होगी। एक नन्ही-सी बालिका अपने वशभर जो कुछ कर सकती थी, उसमें उसने कुछ भी उठा न रखा था. पर खेद की बात तो यह थी कि कन्या के पिता का आज अभी तक कहीं पता न था। दिनभर प्रतीक्षा करते-करते वह थक गई थी, और उसका धैर्य छूट रहा था।

धीरे-धीरे अंधकार बढ़ चला, और बूंदें भी गिरने लगीं। रात के साथ ही वर्षा ने भी जोर बांधा। बड़े जोर का मेंह बरसने लगा। भयानक तूफान ने झोपड़े को हिला डाला। क्षण-क्षण पर बिजली चमकने लगी। बालिका भय, शोक और उद्वेग से अधमरी-सी हो दोनों हाथों से मुंह ढांपकर झोपड़े में जाकर धरती में पड़ रही।

वायु के झोंके के साथ उसे पिता के आने की आशा होती। वह डरती दृष्टि से द्वार की ओर देखती, पर फिर हताश होती।

बहुत रात बीत गई। न तूफान थमा, न वर्षा। कन्या के मुंह से निकला—हे ईश्वर, पिता की रक्षा करो! वे इस समय कहां हैं? हे ईश्वर, उन्हें मेरे पास भेज दो, वे भूखे हैं, वे भीग गए होंगे! हे परमेश्वर, हे पिता, मेरे पिता को···। उसके दोनों हाथ जुड़ गए। दृष्टि आकाश की ओर जाकर टिक गई। वह सुंदर नन्ही-सी बालिका उस भयानक सन्नाटे की रात में, उस एकांत कुटी में, अकेली, मोम की तुतली की भांति, निश्चल बैठी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को मानो प्रत्यक्ष देख रही थी। उस परमेश्वर को, जो आंधी और मेंह, आकाश, पाताल, सुख और दुःख का स्वामी है। जो उसके पिता का रक्षक है। जो उसका मानो चिरपरिचित और प्यारा है। बालिका के नेत्र मुंद गए, मानो उसने अन्तरात्मा में ही परमेश्वर के दर्शन कर लिए। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। इसके बाद वह धीरे-धीरे धरती पर झुक गई।

आंधी के एक भयानक झोंके की भांति उसने झोपड़ी में प्रवेश किया। उसके शरीर के साथ ही एक बौछार ने सारी झोपड़ी को भी पानी से भर दिया। उसका सारा शरीर पानी में भीग गया था। पैर और जूते कीचड़ से भर रहे थे। हाथ की बन्दूक को एक ओर फेंकते हुए उसने कर्कश स्वर में कहा—लड़की,

तू सोती है या जग रही है ?

बालिका ने आंखें उठाकर देखा, उसके होंठों पर मंद मुस्कान छाई, उसने मन्द-मधुर स्वर से कहा—पिता, पिता, ओह ! मैं कब से तुम्हारी बाट देख रही हूं। ओह ! तुम भीग गए हो। राम-राम, उधर चलो, अलाव में आग जल रही है। खाना भी सुबह का रखा है, पर सब ठंडा हो गया। पिता, तुम कहां चले गए थे ? मैं अकेली आज कितना रोई, अगर भगवान् आज···। बालिका आगे बोल न पाई। उसने बालिका को पीछे धकेलते हुए झुंझलाहटभरे स्वर में कहा—चल, रहने दे भगवान् को। कुछ खाना हो तो ला। जल्दी कर, मुझे आज रात को बहुत काम है। अभी जाना होगा।—इतना कहकर उसने अपना भीगा वस्त्र उतारकर एक तरफ फेंक दिया, और लम्बे-लम्बे डग भरता आग के पास चला गया।

क्षणभर बालिका स्तब्ध खड़ी रही। फिर झटपट भोजन परोसने लगी। भोजन-सामग्री बहुत ही साधारण थी। वही उसने अपने प्यारे और नन्हे-से हाथों से थाली में रखी, और पिता के सामने रख दी। साथ ही वह पास बैठ गई।

उसने हाथ बढ़ाकर ज्यों ही थाली से कौर उठाया कि बालिका ने उसका हाथ पकड़ लिया। भूख में बाधा पाकर उसने क्रुद्ध होकर मुट्ठी बांधी। बालिका ने अपने दोनों हाथों में उस कठोर मुट्ठी को लेकर बारम्बार चूमा और कहा—पिता, तुम फिर भूल गए भोजन के समय भगवान् का नाम लेना, और वह भजन गाना, जो माता ने मुझे सिखाया था। वह मैंने तुम्हें सिखा दिया है। देखो, माता तुम्हारी कितनी तारीफ करती थी। तुम बड़े अच्छे हो पिता, आओ, वह गीत गाएं।—वह चुप रह गया। उससे बालिका का निषेध करते न बना, न उसे कोई कड़ा उत्तर ही दे सका। उसने भर्राए स्वर में कहा—गा, गा, तू जल्दी से वह भजन गा ले; मुझे भूख बहुत ज़ोर से लग रही है।

बालिका ने अधिक हठ न कर धीर-स्थिर स्वर से गाया :

प्रभु, मेरे अवगुन चित न धरो।
समदर्शी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो।
एक लोहा पूजा में राखत, एक घर बधिक परो,
सो बिभेद पारस नहिं जानत, कंचन करत खरो।

गीत खतम होते ही बालिका ने भक्ति-भाव से उस अदृष्ट प्रभु को प्रणाम

किया, और पिता के गले से लिपट गई। उसने रूखे स्वर से कहा—जा, ज़रा घोड़े को छप्पर में बांध दे। उसे थोड़ी घास डाल आ।

बालिका ज़रा झिझकी। उसने कनखियों से पिता की ओर देखा, वह खाने में लग गया था। वह चुपचाप झोपड़ी से बाहर आई। घोड़े को बांधा, घास डाली। वह सरदी और भय से कांप रही थी। अब भी बूंदें गिर रही थीं।

इसके बाद उसने भीतर आकर देखा, उसने जेब से बोतल निकाली है, और उसे मुंह से लगा गटागट पी रहा है। बालिका चीत्कार करके दौड़ी और उसने कहा—पिता, पिता, तुमने उस दिन कहा था······यह नहीं······इसे न पिओ पिता, ओ पिता······!

बालिका रोती हुई पिता पर झपटी। उसने बोतल छीनने की चेष्टा की, पर उसने कड़ककर कहा—हट जा री लड़की!—और कसकर एक लात मारी। बालिका लात खाकर दूर जा गिरी। वह दिनभर की भूखी-प्यासी नन्ही-सी बालिका धरती पर पड़ी-पड़ी देर तक पशु-पिता की ओर देखती रही, जिसके लिए वह इतनी व्याकुल, इतनी अधीर, इतनी उत्सुक थी, और इतना प्यार करती थी, उसने इतनी देर बाद आकर एक शब्द भी उसे प्यार का न कहा, भूख-प्यास की भी न पूछी। वह बालिका को लात मारकर बिना उसकी ओर देखे शराब पीता और बड़बड़ाता रहा। बालिका यह देखकर रो दी। बोतल खाली करके उसने एक तरफ फेंक दी, और तब वह उठा, भारी लबादा ओढ़ा, बंदूक उठाई, और बाहर चल दिया। दरवाज़ा बन्द करती बार उसने ऊंची और कर्कश आवाज़ में कहा—लड़की, डरना नहीं, तेरा भगवान् तेरे पास है।—इसके बाद उसकी जोर से हंसने की आवाज़ आई। बालिका द्वार तक दौड़ी, पर वहीं रह गई; उस भयानक रात में अकेली।

सुन्दर प्रभात था। गुलाबी सर्दी थी। धूप चमक रही थी। बालिका घुटनों के बल बैठी धीरे-धीरे उस भयानक पिता के पैरों के तलुए सहला रही थी. और पिता घोर निद्रा में खुर्राटे भर रहा था।

बहुत देर बाद वह तनिक हिला। बालिका को आशा हुई कि वह अब जगेगा। उसने मन्द मुस्कान से कहा—पिता, देखो, कैसा सुन्दर दिन है, तनिक आंखें तो खोलो।

उसने आंखें खोलीं। ठीक सर्प के समान आंखें थीं। उसने भृकुटी में बल डालकर कहा— अरी अभागिनी, ज़रा सोने भी न देगी? दूर हो, कैसी नींद आ रही थी।—इसके बाद वह फिर कम्बल ओढ़कर सो रहा। बालिका को फिर साहस न हुआ। वह वहां से उठकर आग के पास जा बैठी, और एक-एक लकड़ी आग में डालने लगी। वह न जाने क्या सोच रही थी। सोचते-सोचते उसकी आंखों से एक बूंद आंसू टपक गया। धीरे-धीरे वह सिसकियां लेने लगी।

उसने उठकर अंगड़ाई लेते हुए कर्कश स्वर में पुकारा—लड़की, क्या पानी गरम किया है?

'किया तो है।' बालिका ने धीमे स्वर में कहा, और वहीं बैठी रही। अब भी उसे रोना आ रहा था। वह धीरे-धीरे उसके पास आया, और बैठ गया। वह खूब ध्यान से उसके मुख को देख रहा था। उसे इस भांति देखते देख बालिका डर गई। वह कुछ डरकर सिकुड़ गई। उसने धीरे-धीरे बड़बड़ाना शुरू किया। फिर कुछ मृदु स्वर में कहा—लड़की, इतना डरती क्यों है?—इसके बाद वह कुछ मुस्करा दिया। बालिका भी मुस्करा दी। उसने साहस करके कहा—पिता, आज गांव में मेला है, तुमने उस दिन कहा था। क्या आज मुझे ले चलोगे? मैं बहुत-सी चीज़ें खरीदूंगी।

उसने यथासम्भव मृदु स्वर में कहा—अच्छा-अच्छा, चली चलना, और जो जी चाहे खरीद लेना। ले, तेरे लिए इतने रुपये हैं।—यह कहकर उसने जेब से एक छोटी-सी थैली निकालकर बालिका की गोद में फेंक दी।

थैली में कितनी रकम थी, यह बालिका ने नहीं समझा। पर आज पिता की असाधारण कृपा एक प्रसन्नता है, यह देखकर वह हर्षातिरेक से उछलकर पिता के गले से लिपट गई। उस समय वह भेड़िया-पुरुष बहुत दिन पूर्व की एक बात सोचकर आप्यायित हो रहा था। उसकी नीरस आंखों में आंसू आते-आते रह गए थे। वह सोच रहा था, बीस वर्ष पूर्व एक ऐसी ही सुन्दर, चपल बालिका इसी भांति उसकी कंठ-माला बनती थी, और उसकी माता? आह! उसके आंसू निकल ही पड़े।

पर क्षण ही भर में वह वैसा ही कठोर बन गया। उसने बालिका को परे ठेलकर कहा—हट-हट, जा, कुछ खाने-पीने का बंदोबस्त कर ले।

बालिका ने संशय के स्वर में कहा—आज मैं तुम्हें कहीं भी न जाने दूंगी, पिता, आज मेले में······।

बीच ही में घुड़ककर उसने कहा—हां-हां, न जाएंगे। तू जा, कुछ खाना-पीना देख।—यह कह और कम्बल को वह फेंक वहीं झोपड़ी से बाहर चला गया।

मेले में बहुत-से स्त्री-पुरुष थे। ऋतु बहुत सुन्दर थी। बालिका प्रसन्न थी, और प्रत्येक वस्तु को खरीद ले जाने को उत्सुक थी। उसने देखा, उसके पिता के बहुत-से मित्र वहां हैं। उनमें से कोई-कोई तो अतिशय भयंकर आकृति के लोग हैं। कुछ से वह कानाफूसी करके बातें करता है, कुछ से हंसकर। उनमें एक सुन्दर युवक भी था। उसने बालिका को देखकर कहा—क्यों बल्लू, यह लड़की कहां पाई?—बल्लू ने एक आंख ज़रा बन्द करके कहा—वह मेरी लड़की है जी, घर से आई है।—यह सुनकर दस-पांच आदमी ज़ोर से हंस पड़े। एक ने उसकी बगल में घूंसा मारकर धीरे से कहा—मैं समझ गया, मगर इस इल्लत को बांधकर धंधा कैसे करोगे?

बल्लू कुछ जवाब न दे सका। वह अन्यमनस्क हुआ। इधर-उधर देखने लगा।

एक आगंतुक ने कहा—चलो यार, आज बद-बदकर पिएंगे!

'नहीं, आज नहीं। देखते हो, लड़की साथ है।'

'ओहो! जैसे यही लड़की के बाप हैं। बड़ा लिहाज करते हो!'

'सुनो, इतने ज़ोर से मत बोलो।'

'क्यों, क्या किसीका डर है?'

'वह सुन लेगी।'

'अभी कहो, तो गला घोट दूं उसका।'

'ऐसा कहोगे, तो जान से मार डालूंगा, समझे?'

'समझ गया। मालूम होता है, लौंडिया ने मोह लिया?'

'तुम्हें उससे कुछ मतलब नहीं। खबरदार, उसकी बाबत कुछ न कहना।'

'अरे, यह तो सचमुच बाप की तरह ही बोल रहा है। चल, रहने दे। अभी उस घटना को कुछ ज्यादा दिन नहीं हुए हैं। उस घाटी में वे टिमटिमाती

आंखें……।'

उसने पिस्तौल निकालकर घोड़ा चढ़ाकर कहा—तब मरो।—पर दो-चार आदमियों ने बीच ही में रोक लिया।

इतने में एक नवीन आगंतुक की ओर उनका ध्यान गया। उसने आकर उसके कान में कुछ कहा। क्षणभर में वे लोग कलह छोड़कर चुपचाप परामर्श करने लगे। कुछ ही देर में उन्होंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। प्रत्येक ने एक बार अपनी बगल की पिस्तौलों की जांच कर ली, और घोड़ों की ओर बढ़े।

वह सुन्दर युवक अभी चुपचाप खड़ा था। उसे निकट बुलाकर बल्लू ने कहा—लड़की को कुछ चीज़ें खरीदनी हैं; रुपये उसके पास हैं। तुम उसे चीज़ें दिलवाकर झोपड़े में छोड़ आओ। इच्छा हो, हमारे लौटने तक ठहरना। दिन निकलते-निकलते हम आ जाएंगे।

युवक सहमत हुआ। बल्लू लड़की से युवक का परिचय करा अधिक देर न कर अपने अद्भुत दोस्त के साथ एक ओर जाकर पर्वत की गहन उपत्यकाओं में खा गया।

युवक बहुत ही हंसमुख और साफदिल था। मुस्तैदी और वीरता भी उसके अन्दर कूट-कूटकर भरी थी। उसने कुछ ही देर में बालिका को आकर्षित कर लिया। वह जब बालिका की पंसद का बहुत-सा सामान लादकर उसकी झोपड़ी की तरफ घूमा, तब खूब तेज धूप हो गई थी। दोपहर दिन चढ़ आया था। बालिका भांति-भांति के प्रश्न करती हुई उसके पीछे-पीछे चल रही थी। वह प्रसन्न थी। उसे एक साथी मिल गया था दिल खोलकर हंसने को और दिल खोलकर बातें करने को। वह न जाने कितनी बातें पूछ गई, कितने प्रश्न कर गई। युवक ने सबके उत्तर दिए। कुछ के झूठे, कुछ के सच्चे। पर बालिका ने सभीपर विश्वास किया। वह सरलहृदया बालिका झूठ और प्रवंचना से सर्वथा अज्ञात थी। उसे स्वभावतः एक युवक की, एक साथी की आवश्यकता थी। वह जब से घटनावश इस झोपड़े में आई थी, अकेली उस भयानक नर-पशु के साथ रह रही है। उसके साथ कोई इस प्रकार हंसकर बोल भी सकता है, उसका मनोरंजन कर सकता है, यह उसने कभी नहीं सोचा था। अब अनायास ही

ऐसा साथी पाकर बालिका आनन्द-विभोर हो गई। उसने झोपड़े में पहुंचकर युवक को अपनी सब चीज़ें दिखाईं। अपने हाथ से लगाए पौधों के इतिहास सुनाए। अपने जीवन के वर्णन, दिनचर्या की बातें सुनाईं। सिर्फ एक बात उसने छिपा ली, पिता का भीषण स्वभाव, भीषण व्यवहार और अत्याचार। असल में वह पिता की निन्दा नहीं कर सकती थी।

युवक की आयु उन्नसी-बीस वर्ष के लगभग होगी। वह बालिका को ठीक-ठीक समझ गया था, और प्रथम जो दुष्टता उसके मन में थी, उसपर उसे धीरे-धीरे मनस्ताप हो रहा था। बालिका की सरलता, सुन्दरता और भोलेपन पर वह मोहित हो गया था। उसके लिए उस कन्या को ठगना संभव न था, इसलिए वह ज्यों-ज्यों उससे प्रेम करता जाता था, त्यों-त्यों उसकी उत्फुल्लता नष्ट होती जाती थी, और वह अन्यमनस्क-सा होता जाता था। अन्त में वह स्वयं ही उस पवित्र मूर्ति बालिका के सम्मुख अपने को पतित और नीच अनुभव करने लगा। वह एक पेड़ की छांह में बैठकर अपने को धिक्कारने लगा। उसकी इच्छा हुई, क्या किसी भांति भी इस सुन्दर बालिका के समान पवित्र बन सकता हूं? जिसे कोई भय नहीं, कोई चिंता नहीं, जिसका छोटा-सा संसार है, छोटी-सी जिसकी आत्मा है, पर कितनी मधुर और कितनी आवश्यक!

बालिका वहां न थी। वह भीतर जाकर उसके लिए कुछ खाना तैयार करने में जुटी थी। इसी उम्र में आवश्यकता ने उसे गृहिणी की भांति कर्तव्य-परायण बना दिया था। सब कुछ ठीक-ठाक करके वह तितली की भांति उछलती हुई युवक के पास आई। वह उस समय भी दोनों हाथों में मुंह छिपाए बैठा था। बालिका ने एकदम उसके पीछे पहुंचकर कहा:

'अच्छा बताओ, मैं तुम्हें अब क्या-क्या खिलाऊंगी?'

युवक को हंसना पड़ा। उसने कहा—सो कैसे बता सकता हूं बिना देखे, खाए!

'वाह, सोचकर बताओ।'

'भुने हुए आलू तो खाने ही पड़ेंगे।'

'हां ठीक, और?'

'मकई के उबले हुए भुट्टे।'

'वाह, जो-जो मैंने रास्ते में बताया था, वही यह बता रहे हो।'

'तब नई चीज क्या बताऊं ?

'बताओ, बतानी पड़ेगी।'

'न भई, नहीं बता सकता।'

'बताओ, बताओ।

'अच्छा सुनो, मिठाई।'

'नहीं, भूल गए।'

'तब अब तुम बताओ।'

'हार गए ?'

'हार गया।'

'तब चलो।'

दोनों गए। दो-चार चीजें थीं। पर जिसका बालिका को गर्व था, वह मीठे पूड़े थे, जिसे उसकी मां ने बड़े चाव से बनाना बताया था।

दोनों खाने बैठे। युवक ने कहा :

'तुम्हारा यहां जी लगता है ?'

बालिका हतप्रभ हो गई। उसने कहा—लगता नहीं तो क्या ?

'बल्लू तुम्हें दुख तो नहीं देता ?'

'दुख क्यों देते ?' बालिका इस बार युवक को नहीं देख सकी।

'पर वह बड़ा दुष्ट है।'

'दुर, ऐसा न कहो। मेरे पिता मुझे बहुत प्यार करते हैं। आज ही इतने रुपये दिए, देखो।' यह कह वह जेब के रुपये खनखानाने लगी। पर युवक ने यह देखा नहीं। वह खूब जोर से हंस पड़ा। बालिका ने विस्मित होकर कहा, 'हंसे क्यों ?' 'पिता, क्या पिता, बल्लू ? वाह !' वह फिर हंसने लगा।

'इतना हंसते क्यों हो ? पिता की तुम हंसी क्यों उड़ाते हो ?'

'तुम कुछ बेवकूफ हो ?'

'कैसे ?'

'अच्छा, कहो तुम्हारी माता कहां है ?'

'देश में है। अब हम घर जानेवाले हैं। पिता कहते थे।'

'क्या बल्लू ने तुम्हें यह कहा था ?'

'और नहीं तो क्या ?'

युवक के मुख पर कई भाव आए और गए। पर उसने रुख बदलकर कहा :

'तब तुम चली जाओगी मुझे छोड़कर ?'

'तुम भी चलना। मां तुम्हें बहुत प्यार करेगी। मेरा एक भाई है, तुम्हारे ही जैसा, तुम्हारे ही बराबर। वह तुम्हें बहुत मानेगा।'

युवक विचलित हुआ। उसने बात बदलकर कहा :

'अच्छा, तुमको इतना अच्छा खाना बनाना किसने सिखाया ?'

बालिका खिल गई। उसने कहा—क्या तुम्हें पसन्द आया ?

'अब मैं रोज़ एक बार आकर खाऊंगा।'

तुम यहीं क्यों नहीं रहते, मैं पिता से कह दूंगी। यहीं रहो।' युवक एकटक बालिका को देखता रहा। खाना खतम हो चला था। वह उठने लगा। लड़की ने कहा—कहो, रहोगे ?

'रहूंगा।' युवक उठकर बाहर चला गया। बालिका कुछ काम में लग गई। जब वह बाहर गई, तब युवक बेचैनी से टहल रहा था। उसे देखते ही उसने कहा—अब मैं चला, बल्लू शाम तक शायद आ जाएगा।

'नहीं, उनके आने तक तुम यहीं रहो।'

'नहीं, नहीं, मैं अभी यहां नहीं ठहर सकता।'

'मैं नहीं जाने दूंगी।'

'लड़की, हठ न कर।'

युवक की दृष्टि में तीव्रता और स्वर में तीखापन था। बालिका देखती रह गई। युवक चल दिया। बालिका ने पल्ला कसकर पकड़ लिया, और रूठ गई। युवक ने कहा :

'जाने दो, मैं फिर आऊंगा।'

'तुम रूठ किस बात पर गए ?'

'रूठा नहीं।'

'रूठे तो हो।'

'नहीं।'

'हां।'

'मैं जल्द आऊंगा।'

'मैं जाने नहीं दूंगी।' बालिका की आंखों में आंसू आ गए। युवक बैठ

गया। बालिका भी बैठ गई। उसने देखा युवक रो रहा है।

'अरे, रोते क्यों हो ?' बालिका ने अपने हाथ से उसके आंसू पोंछे। युवक बोला नहीं। बालिका ने और पास खिसककर उसके गले में हाथ डाल दिया।

युवक ने भर्राए गले से कहा—लड़की, मुझसे इतना प्यार न कर।

'करूंगी।'

'न, ऐसा नहीं।'

'करूंगी, करूंगी।'

'तू मुझे जानती नहीं।'

'तुम बहुत अच्छे हो।'

'मैं अच्छा नहीं हूं।'

'तुम बड़े प्यारे लगते हो।'

'क्या तू मुझे प्यार करती है ?'

'करती हूं।' बालिका की आंखों से टप से आंसू टपक पड़े।

युवक ने कहा—एक बात कहूं ?

'कहो।'

'मैं चोर हूं।'

'दुर।'

'सच।'

'चोर क्या ?'

'चोर नहीं समझतीं, रास्ते चलते मुसाफिरों के माल को चुरा लेनेवाला।'

'तुम ऐसा काम करते हो ?'

'हां।'

'झूठे, तुम ऐसा नहीं कर सकते।'

'मेरा यही धंधा है।'

'नहीं।'

'ईश्वर जानता है, सच कहता हूं।'

बालिका अवाक् होकर देखने लगी। युवक ने कहा—और सुनो, बल्लू तुम्हारा पिता नहीं है।'

'पिता नहीं है ?'

'हां ।'

'तब कौन है ?'

'डाकू ।'

'अरे !' बालिका की आंखें भय से फैल गईं । उसका शरीर कांपने लगा । वह युवक से सटकर बैठ गई । उसने कहा :

'डाकू ?'

'हां, वह नित्य डाके डालता है । हम लोग साथ रहते हैं । वह सबका सरदार है । उसका लूट का माल देखोगी ?'

'देखूंगी ।'

युवक उठा, बालिका भी पीछे-पीछे उठी । गुप्त गृह में जाकर युवक ने बल्लू का सारा खजाना दिखा दिया । उसे देखकर उसने कहा :

'इतने रुपयों को वह लाए कहां से ?'

'रास्ते चलते मुसाफिरों को मारकर । क्या तुम्हें एक बात याद है ?'

बालिका के होंठ सफेद हो रहे थे । भय से वह अधमरी हो रही थी । उसने कहा—कौन बात ?

'एक रात की बात । तब तुम पांच-छः साल की थीं । अपने चचा और भाई के साथ माता को लेकर आ रही थीं पिता के पास ।'

'हां, कुछ-कुछ याद है । तब रात बड़ी अंधेरी थी । जोर का बादल गरज रहा था । माता चिल्ला रही थी, भाई ने कहा था—चोर ! चोर !!'

'हां, वे चोर हमीं थे ।'

'तुम ?'

'हां, मैं और बल्लू, पांच-सात और ।'

'मेरे पिता !'

'वह तुम्हारा पिता नहीं, डाकू है ।'

'और पिता ?'

'उन्हें बल्लू ने मार डाला था । वह तुम लोगों को लेने अकेले आ रहे थे ।'

बालिका मानो मूर्छित होने लगी । उसने अवरुद्ध कंठ से कहा :

'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता ।' युवक कहता गया—हम लोगों ने तुम्हें घेर लिया । चचा और भाई मारे गए । तुम्हारी माता भी मारी गई । तुम बच रही

थीं। तुम्हें बल्लू उठा लाया, और पाला।'

बालिका पत्ते की भांति कांप रही थी। उसे चिरस्मृति का उदय हो रहा था। अब वह बहुत कुछ समझदार थी। उसने कहा :

'मेरे भाई और मां मर गए?'

'उन्हें बल्लू ने मार डाला।'

'वह कहते हैं, वे घर लौट गए।'

'झूठा है।'

बालिका रोने लगी। युवक चुप बैठा रहा।

ज्यों ही बालिका को यह पता लगा कि बल्लू अभी एक ऐसी ही मुहिम पर गया है, उसमें एक अद्भुत तेज और साहस का उदय हो गया। उसने कहा—अभी चलो, मैं उन्हें रोकूंगी। तुम ठहरो, मैं अभी आती हूं।—यह कहकर बालिका झोपड़ी में घुस गई। कुछ क्षण बाद ही युवक हांफता हुआ भीतर आया। उसने कहा—रानी, गजब हो गया! बहुत-से पुलिस के सिपाही इधर ही को आ रहे हैं, उन्होंने बल्लू को पकड़ लिया है, वे मुझे भी पकड़ लेंगे। अब मैं क्या करूं?

क्षण-भर बालिका स्तब्ध रही। फिर उसने उसे रसोई के पीछेवाली कोठरी में ठेलते हुए कहा—यहीं बैठे रहो, मैं मौका पाकर तुम्हें निकाल दूंगी।

पुलिस के साथ दल-बलसहित बल्लू हाज़िर था। बालिका को देखकर वह अप्रतिभ हुआ। कुछ देर बालिका ने भी उसकी ओर देखा। फिर वह दौड़कर उसकी ओर झपटी, उसकी गर्दन से लिपट गई। उससे रोते-रोते कहा—मुझे सब बातें मालूम हो गई हैं। तुमने मेरे पिता, माता और भाई को मार डाला है। तुम मेरे पिता नहीं, डाकू हो। तुम ऐसा काम क्यों करते हो? हाय पिता···!—अभ्यासवश उसके मुंह से पिता शब्द निकल गया।

पुलिस ने कन्या का बयान कलमबंद किया। बालिका सब कुछ कह गुज़री। उसने युवक को भी बता दिया। युवक सब भंडा फोड़कर सरकारी गवाह बन गया। मुकद्दमा चला और बल्लू तथा उसके साथियों को फांसी की सज़ा हुई। युवक छूट गया।

फांसी पाने के एक दिन प्रथम वह बल्लू के पास मिलने गई। जेलखाने को

देखकर वह भयभीत हो रही थी। जब उसने बल्लू को कालकोठरी में बेड़ियों और हथकड़ियों से जकड़ा देखा, तो उसे काठ मार गया। बल्लू उसे देखकर हंस पड़ा। उसने उसे संकेत से पास बुलाया, और कहा—लड़की, अब तू समझ गई न कि मैं तेरा बाप नहीं हूं। पर फिर भी मैंने तुझे प्यार किया था। किया था न?—यह कहकर बल्लू ज़ोर से हंसने लगा। बालिका भयभीत नेत्रों से उसे देखने लगी।

बल्लू ने सच ही कहा था। ऐसा भीषण, दुर्दांत डाकू इससे ज़्यादा और अपने प्यार का क्या सबूत दे सकता था, जितना उसने बालिका को पालकर दिया।

बल्लू एक बार जोर से हंसकर एकाएक चुप हो गया। उसने सीखचों से हाथ बाहर निकालकर बालिका को पास आने का संकेत किया। वह निकट आई, तो बल्लू ने उसके कोमल हाथ पकड़ लिए, और यथासंभव मीठे स्वर में कहा—लड़की, तूने भी तो मुझे प्यार किया था। किया था न?

बालिका ने सिर हिला दिया। वह बोल न सकती थी। वह उसकी तरफ देख भी नहीं सकती थी, वह जानती थी, यह मेरे माता-पिता और भाई का हंता डाकू है, पर मुझे पिता की भांति प्यार कर रहा है।

बल्लू ने कहा—लड़की, कल इस समय वे मुझे फांसी पर लटका देंगे, मैं मर जाऊंगा। समझी?—वह फिर एक बार ज़ोर से हंसा। बालिका घबराकर उसकी ओर देखने लगी। उसने देखा, बल्लू की आंखों से झरझर आंसू टपक रहे हैं। पर वह अपने होंठों की हंसी को गायब नहीं कर पाता। बालिका ने कहा—पिता, पिता, मैं ऐसा न होने दूंगी। वे कौन हैं? नहीं, तुमने कुछ भी नहीं किया है। चलो, अब ऐसा काम न करना, हम लोग घर चलकर खेत बोएंगे। तुमने कहा था न?

'कहा था बेटी।' बल्लू ने सिर हिलाया। उसने फिर हंसने की चेष्टा की, पर हंस न सका। वह अब की बार फूट-फूटकर रो उठा। वह बारम्बार बालिका के हाथ चूमने और 'बेटी-बेटी' पुकारने लगा। इसके बाद उन्मत्त की भांति उसने कहा—मैंने तेरे माता-पिता और भाई को मारा, तुझे कितना कष्ट दिया। ओफ़्! नन्ही बच्ची, तूने माता की भांति मुझे पालन किया, मेरे अत्याचार सहे, तू दया और प्रेम की देवी, धन्य है।—इतना कहकर उसने बारंबार बालिका के

हाथ चूमे, और उन्हें आंसुओं से भिगो दिया।

बालिका चुपचाप खड़ी रो रही थी। बल्लू ने इस बार उसे अच्छी तरह देखा, उसने आंखें पोंछ डालीं। फिर युवक को पास बुलाकर कहा—बलवंत, मेरी बात सुनो। मैंने एक वसीयत की है। वह जेल के बड़े साहब के पास है। उसमें मैंने अठारह वर्ष की आयु होने तक इस बालिका का अभिभावक जिले के कलक्टर को बनाया है। मेरी समस्त संपत्ति भी वही संभालेंगे। वह सब मैंने इस बेटी के नाम लिख दी है। उसमें से दस हजार रुपया तुम्हें दिया गया है। वह तुम्हें एकाएक नहीं मिलेगा, साहब के पास रहेगा। उस रुपये से साहब तुम्हें पढ़ाएंगे, और फौजी तालीम देंगे। तुम बहादुर, साहसी और खुशमिजाज आदमी हो, शीघ्र फौज में उच्च पद पाओगे। अब तुम इस पतित काम को त्याग देना। मैं तुम्हारे बुरे कामों का गुरु था। अब गुरु की इस अन्तिम शिक्षा को मानना।

—जब बेटी की उम्र अठारह वर्ष से ऊपर हो जाएगी, और तुम उच्च सैनिक अफसर हो जाओगे, तब यदि तुम दोनों चाहोगे, तो तुम दोनों का विवाह हो जाएगा, और मेरी तमाम संपत्ति तुम्हें दहेज में मिलेगी, जो पचास लाख के लगभग है। सरकार ने इसी वसीयत के कारण उसे जब्त नहीं किया है। यदि तुम लोग ऐसा न करोगे, तो एक लाख रुपया लड़की को मिलेंगे, शेष धर्म-कार्य में लगाने का सरकार को आदेश है।

बालिका पूरी बातें नहीं समझी थी। फिर भी वह बहुत कुछ समझ गई थी। युवक चुप खड़ा सुन रहा था। इस समय उसकी आंखों में आंसू आ रहे थे।

वार्डर ने कहा—बस, समय हो गया। मुलाकात खतम करो।—बल्लू ने एक बार युवक का कंधा पकड़कर हिलाया, और फिर जोर से हंस दिया। युवक बल्लू के पैरों पर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा। बल्लू सीखचों के पास से हटकर कोठरी के भीतरी भाग में चला गया। बालिका 'पिता-पिता' चिल्लाकर सीखचों से लिपट गई। वार्डर ने बड़ी कठिनाई से उन्हें बाहर किया।

जर्मनी के महायुद्ध की भयानक खबरों से भारत के अंगरेज अफसर थर्रा रहे थे। भयानक गर्मी के दिन थे। एक सुंदर बंगले में उन्नीस वर्ष की बालिका

यूरोपीय पोशाक पहने विलायत की डाक तत्परता से देख रही थी। वह जल्दी-जल्दी दैनिक पत्रों को उलट रही थी। उसके नेत्र विकल थे, और वह घबरा रही थी। हठात् एक स्थान पर उसने कुछ देखा। उसकी दृष्टि कागज़ पर चिपक गई। आंखों में अंधेरा छा गया। उसने कई बार उन पंक्तियों को पढ़ा। वह झपटती हुई उठी, और दूसरे कमरे में बैठे मेरठ-डिवीज़न के असिस्टेंट कमिश्नर मि० क्लार्क के कमरे में घुस गई। उसने भर्राई आवाज़ में शुद्ध अंगरेज़ी में कहा :

'पापा, लेफ्टिनेंट बलवंतसिंह सख्त घायल हुए हैं। यह देखो, शायद उनकी टांग काटनी पड़ेगी।'

कमिश्नर को तार मिल चुका था। उन्होंने प्यार से युवती को पास की कुर्सी पर बैठाते हुए कहा—पर, आशा है, वह अच्छा हो जाएगा। मैंने कल ही तार द्वारा उसकी खास चिकित्सा की हिदायत कर दी है।

'पापा, मैं जाऊंगी, ज़रूर जाऊंगी।'

'नहीं बेटी, यह असंभव है।'

'नहीं, बिल्कुल संभव है।'

'रास्ता खतरनाक है। दुश्मनों ने सर्वत्र टारपीडो बिछाए हैं।'

'मैं जाऊंगी पापा अभी जाऊंगी।'

युवती का हठ देख अंगरेज़ अधिकारी की कुछ न चली। उसी सप्ताह में दोनों बंबई को प्रस्थान कर रहे थे।

वह फ्रांस के एक अस्पताल में पड़ा था। उसकी टांग काट डाली गई थी। आंखों के भी बचने की कम उम्मीद थी। पट्टी बंधी थी। वही युवती नर्स का वेश धारण कर उसकी सेवा में तत्परता से हाज़िर थी। रोगी ने क्षीण स्वर में पुकारा :

'नर्स, ज़रा सहारा देकर ऊपर तो उठाओ। मैं ताज़ी हवा में सांस लिया चाहता हूं।'

नर्स ने चुपके से ऊपर उठाया। तकिए का सहारा दिया, और बैठा दिया। इसके बाद वह उसकी कुर्सी को खींचकर बाग में ले आई।

'नर्स, तुम कितनी अच्छी हो ! तुम कितनी सेवा करती हो, तुम्हें धन्यवाद।'

नर्स चुप रही। वह बोल न सकी। उसने फिर कहा :

'नर्स, तुम्हें लाख-लाख धन्यवाद।'

नर्स ने मृदु-मधुर स्वर से कहा—लेफ्टिनेंट बलवंत, मैं केवल कर्तव्य पालन कर रही हूं। आपको कुछ चाहिए ?

'नहीं, ज़रा अपना हाथ दो, हाथ।'

नर्स ने झिझकते हुए अपना हाथ उसके हाथ में दिया। उसने उसे दोनों हाथों में थामकर कहा—नर्स, तुम्हारा हाथ भी तुम्हारे हृदय की भांति ही कोमल और सुंदर है। संभवतः तुम्हारा मुख भी ऐसा ही होगा। पर कैसा दुर्भाग्य है, मैं लंगड़ा और अंधा किसी भी स्त्री के प्रेम का अधिकारी होने योग्य नहीं रह गया।

नर्स ने कहा—यदि कोई स्त्री तुमसे प्रेम करे, तो क्या तुम उसे स्वीकार करोगे ?

'नहीं नर्स, ऐसा मत सोचना। मैं किसी भी स्त्री को प्यार नहीं कर सकता।'

'क्यों ? क्या अंधे और लंगड़े होने के कारण ?'

'नहीं-नहीं, नर्स, नाराज़ न होना, मैं एक बालिका को प्यार करता हूं। वह यहां से बहुत दूर मेरे देश में है।'

'शायद वह बहुत सुंदर है।' नर्स कांपते स्वर में बोल रही थी।

'सुंदर, आह ! वह देवी है, देवी। ईश्वर उसकी रक्षा करे। पर अब उसे देखना नसीब न होगा।'

युवक का कंठ भर आया। युवती ने भी आंखें पोंछीं। उसने कहा—कुछ लाऊं क्या ?

'नहीं, धन्यवाद। हां, अपना हाथ, वह कीमती हाथ। नर्स, मैं तुम्हारा आजन्म ऋणी रहूंगा।'

'धन्यवाद लेफ्टिनेंट, पर मैं तुमपर कौड़ी भी ऋण बाकी न छोड़ूंगी। खैर, तुम अपनी उस बालिका की बात कहो।'

'आह ! नर्स, उसपर डाह न करना।'

'डाह तो करूंगी ही, पर क्या उसने तुम्हारी ऐसी सेवा कभी की थी ?'

'कभी ऐसा अवसर ही न आया। वह सेवा की मूर्ति है।'

'उसकी तुम्हें कौन-कौन बातें पसंद हैं, कहो तो।'

'उसका वह गीत। वह मुझे याद है, सुनोगी नर्स, पर समझ न सकोगी।'

'सुनाओ।'

युवक ने गाया :

प्रभु, मेरे अवगुन चित न धरो।
समदर्शी है नाम तुम्हारो, चाहे तो पार करो।

युवक ने अंगरेज़ी में अर्थ समझा दिया। युवती ने कहा—मुझे याद करा सकते हो ?

'क्यों नहीं, पर याद होगा नहीं।'

'देखो, अभी हुआ जाता है।'

कुछ ही देर में नर्स ने विशुद्ध स्वर में वह गीत सस्वर सुना दिया। युवक के हृदय में तीन वर्ष पूर्व की सोई हुई स्मृति जागरित हो गई। उसने हठात् पलंग से उठकर दोनों हाथ फैला दिए—नर्स, नर्स, तुम कौन हो, यह तो वही स्वर, वही संगीत है।

नर्स ने दौड़कर उसे लिटाया, युवक मूर्छित हो गया।

आज लेफ्टिनेंट बलवंत की पट्टी खोली गई थी। ईश्वर की कृपा से उसकी दृष्टि ठीक हो गई थी। सम्मुख खड़ी नर्स को उसने पहचानकर छाती से लगा लिया। हर्षातिरेक से वह मूर्छित-सी हो गई। यह वही बालिका थी।

डिवीज़न के कमिश्नर मि० क्लार्क अपने बंगले पर क्लांत भाव से बैठे थे। दो व्यक्ति धीरे-धीरे आगे बढ़े। एक युवक था, जिसका एक पैर सही था, दूसरा पैर नकली था। वह लाठी के सहारे धीरे-धीरे बढ़ रहा था। उसकी बगल में वही युवती थी।

साहब ने देखते ही कहा—हलो, लेफ्टिनेंट बलवंतसिंह और रानी।

दोनों मिले सुख और आनंद से। दूसरे दिन उनका विवाह हो गया, और वे बल्लू की अतुल संपत्ति के स्वामी बने। उन्होंने वह सब संपत्ति लगाकर अपने गांव में वहीं, जहां बल्लू की झोपड़ी थी, एक अस्पताल बनाया। रानी उसमें नर्स का काम करने लगी, और बलवंत ने रोगियों की सेवा में जीवन लगा दिया। उस प्रांत में वह अस्पताल और वे दोनों प्राणी अमर हुए।

विश्वास पर विश्वास

विश्वास पर विश्वास करने पर उन्हें ठगा गया। एक भावुक युवती को एक अपराधी डाकू की पत्नी बनकर एकान्त वन में रहना पड़ा। नारी-हृदय की पुत्र-प्राप्ति की इच्छा प्रकृत और स्वाभाविक है, उसीसे प्रेरित होकर वह प्रेम और पत्नी-धर्म के संघर्ष में रहकर मृत्यु को प्राप्त होती है। यह कहानी अत्यन्त लोकप्रिय हुई है।

बस्ती से बाहर एक छोटी-सी टेकरी के नीचे उसका झोपड़ा था। ऊपर से देखने में वह दरिद्रता की छाया में डूबा हुआ था। बहुत कम पथिक उधर होकर जाते थे। उधर से जो रास्ता जाता था, वह आगे निकट ही घनघोर वन में खो गया था। देहाती लकड़ी बीननेवालों या अहेरियों को छोड़ और उधर किसे जाने की इच्छा हो सकती थी ?

उसका नाम था नन्दू। उम्र पचास को पार कर गई थी। चेहरे की खाल लटक गई थी और वह फूल गया था। अत्यधिक शराब पीने का यह फल था। आंखें हरदम जलती रहती थीं। आवाज़ तीखी थी। जब बोलता था, मानो सांड डकार रहा हो। कमर झुक गई थी और एक-दो दांत भी गिर गए थे। फिर भी कठिन पुरुषार्थ उसका जीवन था। वस्त्रों और शरीर की तरफ उसका कभी ध्यान भी न गया था। उसकी व्यवसाय-प्रकृति और जीवन ही इस योग्य न था। वह उस जंगल के एकान्त कोने में जंगली पशु की तरह रहता था! ऊपर से हर तरह यही बात प्रतीत होती थी।

पर हठात् कुटी में घुस पड़ने से यह बात गलत साबित होती थी। उस नर-पशु के साथ उस दरिद्र और अशुभ कुटी में एक मधुर मूर्ति रहती थी। चम्पा के समान उसका रंग था और बिल्कुल नपा-तुला शरीर था; कण्ठ-स्वर और चाल की मोहकता कभी-कभी उधर से गुज़रनेवाले पथिकों को नसीब हो जाती थी। उसका नाम था मैना, उसकी उम्र पचीस के लगभग होगी। पर सौन्दर्य मानो अस्फुट था। वह अस्फुट सौन्दर्य मैले और फटे वस्त्रों से, अरक्षित भाव से ढंका उस कुटी को सौभाग्य दे रहा था। यह उस नर-पशु की धर्मपत्नी थी!

हाय, कितना अद्भुत, कैसा आश्चर्यजनक बेमेल मेल था। उसे क्या कहा

जाए ? क्या लोहा और सोना की उपमा दी जाए या रात्रि और दिन की ? अथवा राहु द्वारा चन्द्रग्रहण की ? मेरी समझ में किसीकी नहीं। सभीमें एक न एक सौन्दर्य था, नहीं था इस जोड़े के सम्मिलन में।

यह नर-पशु और वह स्वर्ण-सुन्दरी थी। बस यहीं तक बात न थी, वह ऐसी पतिव्रता और पति-सेवा की पुतली थी कि इन दो गुणों ही के लिए नारी-जाति में उसकी उपमा दी जा सकती है। और यह बात आसपास प्रसिद्ध भी थी।

यह अद्भुत दम्पती, जगत् से दूर अवश्य रहते थे, किन्तु जगत् की दृष्टि से बचे न थे। पुलिस और सरकारी अधिकारियों से लेकर साधारण नागरिक तक उस बदमाश को, उसके कानून के विरुद्ध कार्यों से तथा उसके द्वारा नित्य होते हुए अपराधों के द्वारा जानते थे। उसी प्रकार आसपास सर्वत्र ही यह बात भी प्रसिद्ध थी कि जगत् का कोई भी प्रलोभन उसकी स्त्री को उसके प्रति विद्रोही एवं विचलित नहीं कर सकता था। यह बात भी प्रसिद्ध थी कि अनेक उच्च-पदस्थ राज कर्मचारी उसे भ्रष्ट करने और उसके द्वारा उसके पति के रहस्य-भेद करने की चेष्टा में हर तरह विफल हुए।

वास्तव में चोरी, डकैती, अफीम बेचना, जाली रुपया बनाना आदि कुकर्म ही उस अधम पति का व्यवसाय था। व्यवसाय यहीं तक रहता तो भी उसमें एक मर्दानगी थी। परन्तु वह नर-पशु अपने व्यवसाय की सहायता में चाहे जब निस्संकोच भाव से अपनी पत्नी के सौन्दर्य का उपयोग कर लेता था।

किसी भी सुलक्षणा पतिव्रता के लिए यह कितना कठिन है, इस बात पर विचार करना चाहिए। उठती हुई उम्र की युवती, परम सुन्दरी, जीवन की स्वाभाविक लालसाओं और अभिलाषाओं के स्थान पर, जो हृदय की प्रत्येक तरंग के साथ उठती हों, उसे अपने पवित्र विश्वास, अभ्यास और धर्म के विप-रीत पति ही की आज्ञा से वह अभिनय भी करना पड़ता था। इसके सिवा वह प्राय: दिन-भर और आधी रात तक और बहुधा तीन-तीन, चार-चार दिन तक अकेली, बिना किसी पशु-पक्षी के सहयोग के उस एकान्त जंगल में, धूप और सन्नाटे से भरा दिन और अन्धकार तथा भय से परिपूर्ण रात्रि व्यतीत करती थी। यही कारण था कि हास्य की रेखा कभी उसके सुन्दर कपोलों पर नहीं देखी गई। और धीरे-धीरे उसके गालों की सुर्खी और अंगों की लुनाई नष्ट होकर

उसपर स्याही श्रौर पीलापन फैल रहा था।

रामसिंह को बीसवां वर्ष बीत रहा था, पर अभी उसकी रेखें नहीं भीगी थीं। उसका रंग तपाए कुन्दन-सा श्रौर बदन इस्पात का बना था। चौड़ी छाती, लम्बी भुजा, उठी हुई गर्दन, प्रफुल्ल श्रौर उभरे हुए नेत्र श्रौर श्रोष्ठों से उसके हृदय की पवित्रता प्रकट होती थी।

वह अपनी वृद्धा श्रौर दरिद्र विधवा माता का एकमात्र पुत्र था। वह गत वर्ष ही सिपाहियों में भर्ती हुआ था। उस दिन प्रभात के समय जब उसकी माता ने उसकी विदाई की पूरी तैयारी कर दी, तब सिर पर पगड़ी बांधते-बांधते उसने कहा—मां! इस मुहिम में यदि मुझे विजय प्राप्त हुई तो अगले वर्ष मैं इस पगड़ी पर सुनहरा झब्बा लगाऊंगा, श्रौर मैं नायब तो बन ही जाऊंगा।

वृद्धा ने सुख की सांस ली; उसके होंठों पर हास्य, आंखों में आशा श्रौर आंसू एवं शरीर में रोमांच का उदय हुआ। वह बोल ही न सकी श्रौर चुपचाप बेटे के शरीर पर हाथ फेरने लगी। कुछ ही क्षण बाद माता श्रौर पुत्र दोनों पाशबद्ध हो गए।

वृद्धा ने आंसू पोंछते हुए कहा—रामू! बेटे! डाकुओं से तू कैसे लड़ेगा? तू अकेला कभी घर से बाहर नहीं गया था, आज तुझे भेजते मेरी छाती फटती है। मेरे लाल, जैसे पीठ दिखाता है, वैसे मुख दिखाइयो। दुखियारी महतारी को भूल न जाना।

रामसिंह ने उज्ज्वल नेत्रों को माता के मुख पर गाड़ दिया। वह हंसा। उसने कहा—मां! मैं नौकरी बजाकर शीघ्र आऊंगा, डर किस बात का है।

माता को कहने योग्य बात न थी। वह चुपचाप आंसू पोंछती जाती थी—तैयारी कर रही थी। कुछ ही क्षण बाद रामसिंह मां की आंखों से ओझल हो गया।

यह घटना उस समय की है, जब भारतवर्ष में बीसवीं शताब्दी की सभ्यता श्रौर अंगरेजों के साम्राज्य का विस्तार नहीं हुआ था। नागरिकता श्रौर व्यापार के वर्तमान साधन देश में न थे। यह उन दिनों की बात है, जब कलम ने तलवार पर विजय प्राप्त नहीं की थी, श्रौर भूखे-नंगे देहाती भी फटे चिथड़ों में शरीर

और तलवार लपेटे घर से बाहर काम-काज को निकला करते थे।

युवक घोड़े पर दिन-भर चलता-चलता थक गया था। घोड़ा और युवक दोनों ही सुस्ताने की इच्छा करते थे। सन्ध्या हो चली थी, सूरज और उसके आस-पास के बादलों में रंग उत्पन्न हो रहे थे, युवक ज़रा तेज़ी से घोड़ा बढ़ाकर यात्रा के अन्तिम भाग को दिन ही दिन में पूर्ण किया चाहता था। सामने घने वृक्षों के झुरमुट में नगर दीख पड़ता था, कुत्तों का स्वर उसके कान में आ रहा था, वह विश्राम और शान्ति का ध्यान करता बढ़ता चला जा रहा था। बंगल ही में एक चीत्कार ने उसे अचानक रोका। क्षण ही भर में घटनास्थल पर उसने देखा—एक सुन्दरी, जो गोद में बहुत-से फूल भर रही थी, भय से थर-थर कांप रही है, और एक सिंह उसपर आक्रमण करने की तैयारी में है। दृष्टि पड़ते ही दूसरे क्षण युवक की तलवार निकल आई, और उस वनपशु तथा युवक में एक विकट संग्राम छिड़ गया। इस अनोखे भयानक खेल को अकेली अबला अपने भय-कम्पित और अर्धमूर्छित नेत्रों से देखती रही। अन्त में वह वनपशु एक गर्जना के साथ धरती में गिरा और युवक ने धीर भाव से रक्त से भरी हुई तलवार धीरे-धीरे उसकी छाती से खींचकर बाहर की।

बालिका बहुत डर गई थी। वह अब भी थरथर कांप रही थी। युवक ने सहज स्वभाव से उसके निकट आकर कहा—क्या तुम बस्ती में जाओगी? मैं उधर ही चल रहा हूं।

सुन्दरी ने कहा—मैं नगर के निकट ही नगर से बाहर रहती हूं, पर तुम यदि मुझे थोड़ी दूर छोड़ आओ तो बड़ी दया हो, मैं बहुत डर गई हूं।

युवक ने कहा—अच्छी बात है, पर यदि आप घोड़े पर चढ़ना जानती हों तो चढ़ लीजिए।

युवती संकोच में पड़ गई। उसने कहा—ना, मैं नहीं चढ़ सकती, मैं गिर जाऊंगी।

युवक ने कहा—गिरने का कोई भय नहीं। उसने हाथ का सहारा देकर युवती को घोड़े पर चढ़ा लिया, फिर स्वयं कूदकर चढ़ गया। युवक ने कहा—अनुचित तो है, पर मुझे नौकरी पर सूरज छिपने से प्रथम ही पहुंचना है। उसने घोड़ा छोड़ दिया।

सन्ध्या की मनोहर स्वर्णप्रभा और वायु उनकी पीठ पर थपकियां ले रही

थी। उस मौन, अपरिचित एवं हठात् सम्मेलन का क्या होगा ?

ज्येष्ठ की झलझलाती दोपहरी, लूओं के झुलसानेवाले झोंके नंगी और उत्तप्त पहाड़ियों से टकरा रहे थे। उन उत्तप्त, नंगी पहाड़ियों के बीच जहां-तहां जंगली पेड़ों के खोखलों में पक्षियों के शावक अकेले छटपटा रहे थे, दाने-चारे की खोज में पक्षी उन्हें अकेले छोड़ गए थे। उसी तरह उन्हीं नग्न और उत्तप्त पहाड़ी के नीचे एक बिल्कुल जलते हुए छोटे-से झोपड़े में लू और चिन्ता से जलती हुई वही सुन्दरी अकेली खिड़की से बाहर दूर तक आंखें फैलाए हुए उस भयानक ग्रीष्म की अग्निवर्षा देख रही थी। उसके मुंह पर जलती हुई लूओं के थपेड़े पड़ते थे। पर उसे इसकी चिन्ता न थी। वह—मैना—कल सन्ध्या से अपने पति, उसी नर-पशु की प्रतीक्षा में वहीं खड़ी है। रात-भर वहीं खड़ी रही है, और अब आधा दिन बीत चला है, अन्न-जल की उसे इच्छा नहीं—मानो शरीर और मन उस एकनिष्ठ तपस्या के वशीभूत हो रहे हैं।

नन्दू एक बड़े डाके में से गहरा हाथ मारकर लाया था और पुलिस की खोज-जांच से कुछ समय दूर रहने के लिए घर से भाग गया था। मैना सोच रही है, क्या वे कहीं किसी विपत्ति में तो नहीं पड़ गए? वे पकड़े तो नहीं गए? वह बार-बार इस कुशंका को मन में प्रवेश करती और फिर निकाल फेंकती है। वह कभी रोती है, कभी दूर तक देखती और कभी सर्वशक्तिमान परमेश्वर को याद-कर घुटनों तक झुक जाती है।

हठात् घोड़े की पदध्वनि सुनकर वह चौंकी। क्षण-भर बाद एक सरकारी सिपाही धीरे-धीरे आता दीख पड़ा। झोपड़ी पर दृष्टि पड़ते ही उसने सावधानी से अपनी तलवार पर हाथ रखा और फिर वह धीर गति से आगे बढ़कर झोपड़ी के द्वार पर घोड़े से उतर पड़ा।

कुछ ही क्षणों में यह सब हो गया, परन्तु इतनी ही देर में मैना ने घर के समस्त द्वार बन्द कर लिए थे और वह सबसे भीतर की कोठरी में किवाड़ बन्द करके बैठ गई थी। द्वार पर थाप पड़ते ही वह चौंकी, पर कांपी नहीं। ऐसे प्रसंग कई बार हो चुके थे। कई थाप पड़ने पर उसने साहस किया। वह द्वार पर आई और द्वार खोल दिया। खोलकर देखा, बिल्कुल उठती उम्र का वही उसका रक्षक सुन्दर युवक, लाल, चमचमाता चेहरा लिए सामने खड़ा है। उसने हंसकर

कहा—तुम···आप ही इस मकान की स्वामिनी हैं? मैना ने जवाब दिया—हां···नहीं, मेरे स्वामी बाहर गए हैं।

'कृपा कर क्या आप मुझे क्षण-भर यहां विश्राम करने देंगी? कैसी आग बरस रही है! सरकारी काम से निकलना पड़ा; पर यदि विश्राम न मिला तो मैं और घोड़ा दोनों ही मर जाएंगे। क्या आप दया करेंगी?'

मैना का भय दूर हुआ। उसने कुछ सोचा, फिर कहा—भीतर आ जाओ। युवक भीतर घुसकर एक दृष्टि झोपड़ी के भीतरी अंग पर फेर गया। मैना ने कहा—क्या जल लाऊं? संकेत पाकर मैना जल ले आई। युवक ने जल पीकर कहा—आश्चर्य है, आप अकेली इस जंगल में किस तरह रह रही हैं?

'मैं अकेली नहीं हूं, मेरे पति भी हैं।' युवक ने तीव्र दृष्टि से मैना को देखकर कहा—आपके पति विचित्र पुरुष मालूम होते हैं। आप ऐसी सुन्दरी को यह झोपड़ा! यह वन! इस एकान्त में वे क्या धन्धा करते हैं? यह प्रश्न करके युवक ने तेज़ दृष्टि से मैना को देखा। मैना घबरा गई। वह कुछ न कह सकी। युवक ने एक बार घूमकर झोपड़े को फिर देख डाला।

अब मैना बोली—सरकारी आदमियों से मेरे पति को घृणा है। अब तुमने जल पी लिया, ठण्डे हो गए, अब तुम चल दो, वरना मेरे पति आने पर नाराज़ होंगे।

युवक मैना के बिल्कुल निकट आ गया। वह कुछ बोला नहीं। वह हंस दिया। मैना कांप उठी, पर वह भी बोली नहीं। युवक ने अपने अंगरखे का बटन दिखाकर कहा—क्या आप मुझे ज़रा सुई-डोरा देंगी? मेरा बटन टूट गया है।

मैना ने सुई-डोरा निकालकर कहा—अंगरखा उतार दो, मैं सिए देती हूं।

युवक ने जवाब दिया—सरकारी वर्दी उतारी नहीं जा सकती। क्या आप कृपा करके···

'ठहरो, मैं सिए देती हूं।' मैना बिल्कुल युवक से सटकर बटन सीने लगी। सीकर उसने बटन खींचकर लगाया। इतनी सावधानी होने पर भी युवक का श्वास-प्रश्वास और लोहे के समान छाती का स्पर्श उस नारी से अज्ञात न रहा। वह समझ ही न सकी कि क्या हो रहा है। उसका सिर चक्कर खाने लगा। वह सुई का अन्तिम डोरा बटन से निकाल ही न सकी और मूर्छित हो

गई।

युवक ने उसे सावधानी से बिछौने पर लिटाया और मुख पर पानी का छींटा दिया।

मैना ने आंखें खोलीं, देखा और उठकर बोली—अब तुम जाओ, तुम यहां मत ठहरो।

युवक ने गम्भीर होकर कहा—मुझे खेद है, बहुत खेद है; मैं जा नहीं सकता। तुम्हारे पति ने जो अभी डाका डाला है, उसकी जांच का भार मुझी-पर है। मैं मकान की तलाशी लूंगा।

'तलाशी!' मैना की भवें चढ़ गईं—तुम···तुम झूठे, कपटी, लबार—वह और कुछ न कह सकी।

युवक चुपचाप गालियां खा गया। मैना उसके नजदीक आकर बोली—तब तुम हमारे शत्रु हो।

'मैं आपका मित्र हूं।'

'तुम?'

'मैं'

'तुम?'

'मैं'

मैना ने सुई उठाई और खच से युवक की बांह में चुभो दी।

मानो कुछ हुआ ही नहीं। वह वेदना युवक ने बिना ज़रा-सी चेष्टा बदले सह ली। क्षण ही भर में मैना विचलित हो गई। वह स्तब्ध खड़ी थी, युवक ने सहसा उसकी बांह अपनी लोह-अंगुलियों से पकड़कर कहा—सुन्दरी, मैं शत्रु नहीं हूं।

मैना ने वेदना से तड़पकर कहा—छोड़! छोड़ दे!

युवक ने छोड़ दिया, मैना धरती में गिर पड़ी।

युवक ने उसे उठाया नहीं, वह खड़ा देखता रहा। मैना ने पड़े ही पड़े कहा—तुम जाओ, मेरे मकान से निकल जाओ!

युवक ने मानो सुना ही नहीं, वह उसके पास जाकर बोला—ईश्वर साक्षी है, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं। परन्तु कर्तव्य-पालन से विमुख नहीं हो सकता। मैं तलाशी लेता हूं।

'तब तुम मित्र होकर मेरे पति को विपत्ति में डालोगे ? मैं तुम्हारी मित्रता से घृणा करती हूं।'

'यह तुम्हारी इच्छा, पर मैं कर्तव्य से पीछे नहीं हट सकता।'

युवक ने तलाशी लेनी शुरू की। धीरे-धीरे घर की तमाम सामग्री उलट-पुलट होने लगी। मैना देख रही थी। एक अभूतपूर्व विषय उसके मस्तिष्क में उदय हो रहा था। वह सोच रही थी उस वज्र-छाती और वज्र-अंगुलियों की बात। एक बार उसके होंठ हिले, बहुत धीमे स्वर से, निकला—पुरुष, वज्र-पुरुष!

युवक ने सुना। उसने कहा—वज्र-पुरुष की बाबत सोच रही हो?

मैना ने क्रोध से कहना चाहा 'तुम्हारी', उसने यह बात कही भी, पर क्रोध न कर सकी। मुख से बात निकलते ही भयभीत-सी युवक को देखने लगी।

युवक फिर अपने काम में लगा। मैना बैठकर रोने लगी। कर्तव्य छोड़कर युवक को मैना के पास आना पड़ा। उसने कहा—मुझे बहुत दुःख है कि मैं आपको कष्ट देने आया हूं, परन्तु मैं विवश हूं। किन्तु सुन्दरी, क्या तुम इस घर और इस दशा में सन्तुष्ट हो? हाय! वह पति, जो इस प्रकार स्त्री को इस स्थान पर रखकर इस तरह भूल सकता है, वह तुम्हारे इतने स्नेह, विश्वास और आदर का पात्र है।

मैना ने क्रोध से कहा—तुम अपना काम करो, मुझसे मत बोलो; उनके विषय में बुरी बात मत बोलो।

युवक मैना के बिलकुल पास बैठ गया, किन्तु कुछ बोला नहीं।

'क्या तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो चुका?'

'अभी नहीं।'

'फिर अपना काम करते क्यों नहीं?'

'मुझे आपकी मदद की जरूरत है!'

'मेरा वश चले तो मैं तुम्हें जान से मार डालूं!'

युवक मुस्कराकर मैना को देखने लगा। मैना ने अनसुनी हो, उधर से मुंह फेर लिया।

'एक बात बताओगी?' युवक ने हठात् प्रश्न किया।

'क्या?' मैना चमक उठी।

'तुम कितने दिन से यहां हो ?'

'आठ वर्ष से।'

'इस आठ वर्ष के जीवन में तुम इस आनन्दशून्य वन-गृह में अपने पति की सहायता से एक सुन्दर—बिलकुल अपने ही जैसा सुन्दर—बच्चा भी न बना सकीं ?'

युवक के होंठों और नेत्रों में सिपाही को न सजनेवाला रस था। मैना न जाने क्यों विचलित हो उठी, उसने कहा—इसी तरह तुम कर्तव्य-पालन करना चाहते हो ?

युवक अपनी धुन में था, उसने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसने मानो स्वगत कहना शुरू किया—आठ वर्ष में आधी आयु बीत जाती है, विशेषकर विवाह के बाद स्त्री के आठ वर्ष !

मैना उठकर दूर चली गई। वह खिड़की के पास बाहर मुंह निकालकर खड़ी हो गई। एक नई वेदना उसके मन को मथने लगी। युवक वहीं बैठा था। वह उसके पास आई और कहा—क्या तुम विवाहित हो ?

'नहीं।'

'विवाह के बाद तुम क्या आदर्श चाहते हो ?'

'घर लौटने पर छोटे-छोटे बच्चों के प्यारे मुखड़े, पिता-सम्बोधन और यह सब देखकर स्त्री का धीमा विशुद्ध हास्य, और उसके बाद गर्मागर्म स्वादिष्ट भोजन तथा स्त्री-बच्चों के प्यार में डूबकर सुख की नींद।'

'सुख की नींद'—यह शब्द बेबस होकर मैना के मुख से निकल गया। वह ज़रा हंसी और बोली—मेरे शत्रु ! निस्सन्देह तुम्हारा हृदय तुम्हारे शरीर की तरह कठोर नहीं है। पर तुम मुझ अबला पर ज़ुल्म करने क्यों आए हो ?

युवक ने इतनी लम्बी बातें मानो सुनी ही नहीं। वह बोला—क्यों, आपको मेरा आदर्श पसन्द है ?

'नहीं, मुझे अपना जीवन पसन्द है।'

युवक उदास हुआ। उसे एक चोट लगी। वह क्रुद्ध होकर बोला—तुम्हारे इस जीवन को मैं अभी नष्ट कर दूंगा। वह फिर तेज़ी से तलाशी में लग गया। मैना आश्चर्य से युवक की भाव-भङ्गी देखती रही, उसने उसे रोका नहीं। झोपड़ी के एक कोने में पुरानी धूल-भरी एक अलमारी रखी थी। युवक ने

उसे खोलने को हाथ बढ़ाया ही था कि मैना दौड़कर अलमारी से लिपट गई। उसने कहा—इसे तुम कभी न खोलने पाओगे। यह मेरी है, इसके भीतर··· ना···ना···तुम देखने न पाओगे।

मैना घुटनों के बल बैठ गई। युवक की आंखें चमकने लगीं। उसने कहा—तब इसी अलमारी द्वारा मेरा कर्तव्य-पालन होगा···क्यों ?

'भाड़ में जाए तुम्हारा कर्तव्य, इसे तुम न खोल सकोगे।'

'मैं लाचार हूं' उसने शब्दों के साथ ही एक झटका दिया। अलमारी का पल्ला उखड़ आया, पर युवक की इच्छा पूर्ण न हुई। डकैती का माल उसमें न था, उसमें थे बड़ी सावधानी से बनाए और धरे हुए छोटे-से शिशु के वस्त्र, छोटे-से जूते, कुछ खिलौने और कुछ मिठाइयां। एक भी वस्तु इनमें से काम न आई थी।

नारी-हृदय की गम्भीर गुप्त-भावना इस तरह प्रकट हुई। युवक ने पीछे फिरकर देखा तो मैना धरती में पड़ी रो रही थी। युवक धीरे से उन वस्तुओं को लेकर उसके पास बैठ गया। उसने कहा—समझ गया, तुम अकेली जो कुछ बना सकती थीं, बनाकर बैठी हो; पर वह प्रेम की पुतली अभी तक नहीं बना सकी हो, क्यों ?

मैना ने रोकर कहा—तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम्हारे कर्तव्य को मैं पूर्ण किए देती हूं, तुम भले ही मेरा और मेरे पति का सर्वनाश कर दो, मगर मेरी इस लालसा, इस अभिलाषा को किसीपर प्रकट न करो। चलो, मैं तुम्हें चोरी का माल बताती हूं।

युवक चकित हो गया। वह नम्रतापूर्वक खड़ा हो गया। मैना ने वे तमाम वस्तुएं जल्दी से जलाकर खाक कर डालीं। इसके बाद उसने युवक की कमर से उसकी तलवार खींच ली। युवक ने बाधा न की। नंगी तलवार हाथ में ले मैना युवक की ओर बढ़ी, युवक निश्चल खड़ा रहा। क्षण-भर दोनों की दृष्टि मिली। मैना ने कहा—शत्रु ! क्या प्रमाण बिना पाए न टलोगे ?

'नहीं।'

मैना तलवार लिए और आगे आई। कुछ देर दोनों के नेत्रों ने युद्ध किया। धीरे-धीरे मैना के नेत्र, गर्दन और सिर झुकने लगे, वह खुद भी झुकी। घुटनों के बल बैठकर उसने तलवार की नोक पृथ्वी पर, युवक के पैरों के पास, फर्श के

पत्थर की कोर पर गाड़कर कहा—यह लो प्रमाण !

युवक ने सिंह की तरह उछलकर तलवार छीन ली। तत्काल पटिया उखाड़ डाली गई और चोरी का प्रायः समस्त माल बरामद हो गया।

प्रसन्नतापूर्वक युवक ने गठरी बांधी, उसने प्रफुल्ल नेत्रों से मैना की ओर देखा; मैना रो रही थी। एक अन्तर्वेदना युवक के हृदय में उदय हुई, उसने कहा—सुन्दरी, इस सहायता के बदले तुम क्या इनाम चाहती हो ?

मैना ने रोना रोककर कहा—मुझे मालूम है कि राज्य की तरफ से आज्ञा निकली है कि जो कोई मेरे पति को गिरफ्तार करेगा या चोरी का माल बरामद करेगा, उसे बड़ा ओहदा मिलेगा, इनाम भी मिलेगा। कितने अफसर यहां आकर यहां से रोते गए हैं; पर तुम जाओ, ओहदा बढ़ाओ और इनाम लो। हमारा सर्वनाश हो, कोई चिन्ता नहीं; मुझे उसका विशेष दुःख नहीं ; पर यदि तुम—लौहयुवक—मेरा एक अनुरोध मानो, मुझे बदला ही देना चाहो, तो मैं तुमसे कुछ मांगूं ?

'पति की क्षमा-प्रार्थना छोड़कर; क्योंकि वह मेरे बस की बात नहीं।'

'मैं वह नहीं मांगूंगी। जब तुम्हारा ओहदा बढ़ जाए, तब बड़े अफसर की बढ़िया पोशाक पहनकर एक बार विवाह से पहले मेरे सामने हो जाना। मैं अब से तब तक उस रूप में तुम्हें देखने को तरसती रहूंगी। तुम्हें देखकर मैं समझूंगी कि आठ वर्ष तन-मन से जिसकी सेवा धर्म और ईश्वर के सामने की, उसके प्रति विश्वासघात करके कुछ पाया तो।'

मैना और कुछ न कह सकी, झरझर उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

युवक ने सुना, समझा, रुका, पर अन्त में धीरे-धीरे गठरी लेकर घर से बाहर हो गया।

रात के दस बजे नन्दू झूमता-झामता और बड़बड़ाता आया। आते ही चारपाई पर पड़ गया। पड़े ही पड़े उसने स्त्री से अपने कपड़े उतारने और पैरों की धूल झाड़ देने के लिए कर्कश स्वर में हुक्म दिया।

मैना जब यह सेवा कर चुकी, तो उसने नन्दू से खाने के लिए पूछा। नन्दू ने खाने से इन्कार करते हुए दो-चार असभ्य गाली बककर कहा—बाएं हाथ में बड़ा दर्द है, ज़रा तेल की मालिश तो कर दे। मैना अन्यमनस्क भाव से उठी।

आस्तीन ऊंचा कर तेल मलने लगी। बांह पर हाथ फेरते ही उसे ढीली-ढीली मैली दुर्गन्धित देह कुछ अप्रिय-सी प्रतीत हुई। हठात् उसे युवक की वज्र-बाहु और वज्र-उंगलियों का स्मरण हो आया। वह अनमने भाव से शिथिल उंगलियों से तेल मालिश करने लगी।

नन्दू गर्मा उठा, उसने कहा—क्या हाथों का दम ही निकल गया है, ज़रा अच्छी तरह क्यों नहीं मालिश करती ?

मानो मैना ने सुना ही नहीं। उसका हाथ और भी शिथिल हो गया। नन्दू ने मैना को लात जमा दी। मैना ने तेल के पात्र में एक ठोकर देकर सिंह की तरह गरज कर कहा—अपनी इस देह को खुद संभालो, तुम्हारी बांदी नहीं हूं। कभी दर्द, कभी रोग, भाड़ में जाए, यह सब मुझसे न होगा।

नन्दू चकित हुआ। आज मैना का यह बिलकुल नया साहस कैसा ? क्रोध से उसका शरीर रोमांचित हो गया। नन्दू उठा, उसने मैना से कहा—तेरा यह साहस, क्या तेरी शामत आई है ?

मैना ने नन्दू को ढकेलकर कहा—दूर रहो, मुझे बास आती है।

धक्का खाकर नन्दू गिरा। वह कुछ समझ ही न सका। क्षण-भर बाद उसने बांस की लाठी उठा ली और रूई की तरह मैना को धून डाला। मैना धरती में गिरकर तड़पने लगी।

नन्दू ने कहा—तेल मल !

'हर्गिज़ नहीं !'

नन्दू ने और मारा—मैना बेहोश हो गई !

. . .

युवक तीर की तरह आफिसर के घर की तरफ चला। द्वार पर आकर उसके पैर जम गए मानो वह बेसुध हो रहा हो। वह वहीं एक ओर बैठकर सोचने लगा। वह एक मूर्ति का ध्यान करने लगा। किस तरह चुपचाप उसे मैंने अपनी तलवार निकाल लेने दी, किस तरह वह धीरे-धीरे मेरी छाती तक तलवार की नोक ले आई। अगर वह उसे छाती में सुई की तरह ही घुसेड़ देती तो क्या मैं उसे रोकता ? कदापि नहीं। फिर मैं मर्द क्या हुआ। वह घाव तो हज़ार बार खाता, परन्तु आंखों के घाव का क्या किया जाए ? वह आंखों की बर्छी कलेजे में पार करती हुई धरती में बैठ गई। उसी तलवार की नोक से उसने

पत्थर उखाड़, चोरी का माल मुझे दिया। शत्रु से ही शत्रु मारा गया। परन्तु यह अबला स्त्री हाथ में तलवार पाकर भी विश्वासघात न कर सकी। शत्रु को पानी पिलाया, शत्रु को शायद प्यार किया, उसे जीवनदान दिया, और अब वह उसे एक बार बढ़े हुए ओहदे पर नई पोशाक पहने देखने के लिए अपना और अपने पति का सर्वनाश कर गई। ओह रे स्त्री!

परन्तु मैं? अभी क्षण-भर बाद मैं नवीन पदवी और वेश धारण कर उसकी आंखों की साध मिटा सकता हूं। माता कितने उल्लास से मेरी विजय-कहानी सुनेगी! परन्तु वह···वह कितने क्षण यह देख सकेगी! फिर वह विजय किस वीरता की है? हे परमेश्वर! क्या मैं उसके विश्वास, वीरत्व, प्रेम और स्त्रीत्व के प्रति विश्वासघात नहीं कर रहा हूं! यही मेरा पौरुष है? धिक्कार है इसपर!

युवक गठरी को छाती से लगाकर रोने लगा। वह वहीं लेट गया।

प्रभात होने लगा था। चिड़ियां चहक रही थीं। कुटिया का द्वार धीरे से किसीने खटखटाया। नन्दू ने आलस्य से उठकर, झांककर देखा—सिपाही द्वार पर खड़ा है।

नन्दू घबराकर मैना के पास जाकर बोला—सरकारी कुत्ता है, तू ज़रा उसे हंस-बोलकर बातों में लगाना, मैं तब तक माल इधर-उधर कर दूं।

मैना उठी। उसने झांककर देखा, नन्दू को चले जाने का संकेत किया। नन्दू पीछे के द्वार से चला गया। मैना ने द्वार खोला, युवक भीतर आया।

मैना अचल खड़ी रही। युवक ने गठरी मैना के सामने रखकर कहा—सुन्दरी! मेरी नीचता को क्षमा करना। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

युवक लौटने लगा। मैना ने द्वार रोककर कहा—तुम्हारे सिपाही कहां हैं?

'मैं सिपाही नहीं रहा।'

'तब तुम अफसर हो गए?'

'मैं साधारण मनुष्य रह गया!'

'क्या ओहदा नहीं मिला?'

'नहीं!'

'क्या अफसर को विश्वास नहीं आया?'

'मैंने यह गठरी पेश ही नहीं की, मैं वैसी ही लौटा लाया हूं।'

'क्यों?'

'तुम्हारे विश्वास पर विश्वासघात करना शक्य न था।'

मैना ने एक बार युवक और गठरी को देखकर कहा—बुरा किया; अब ?

'मैं गिरफ्तार होने जा रहा हूं—मैं कर्तव्य-पालन नहीं कर सका, मैं साफ-साफ कह दूंगा।'

युवक दो कदम चला।

मैना ने हाथ पकड़ लिया। उसने कहा—देखो !

यह कहकर अपनी कमर का वस्त्र उधेड़ डाला। कमर चोट से लहू-लुहान थी।

'किस पशु का यह काम है ?'

'मेरे पति का !'

'वह कहां है ? उसे···' युवक होंठ चबाने लगा।

नन्दू मुस्कराता हुआ भीतर आया और झुककर युवक को सलाम किया।

युवक ने कहा—नीच, कायर, पशु, अधम !

नन्दू तनकर खड़ा हुआ। उसने कहा—सरकार के आदमी हो तो गाली क्यों देते हो ?

युवक ने मैना का शरीर दिखाकर कहा—अरे नीच, तेरा यह अत्याचार ?

नन्दू हंसकर बोला—ओफ ! यहां तक तुम लोगों की घनिष्ठता है। मुझे मालूम न था। तो तुम लोगों की यह पहली ही मुलाकात नहीं है, क्यों ? पर महाशय ! यह मेरी स्त्री है, तुम स्त्री-पुरुषों के बीच में क्यों पड़ने आए हो ? इसके बाद उसने सांड की तरह डकारते हुए मैना से कहा—पुंश्चली अभागिनी ! भीतर जा !

मैना गई नहीं। नन्दू मारने चला। मैना युवक से लिपट गई। युवक ने तलवार निकालकर कहा—एक हाथ भी छुआ तो सिर भुट्टे-सा उतार दूंगा।

नन्दू हांफता-हांफता बैठ गया, युवक ने कहा—ऐ सुन्दरी, क्या तुम मेरा प्रेम स्वीकार करती हो ? मैं तुम्हें धर्म से पत्नी बनाना स्वीकार करता हूं। यह पशु तुम्हारे योग्य नहीं।

मैना बैठ गई, कुछ बोली नहीं। नन्दू ने कहा—पराई स्त्री को फुसलाने की तुम्हारी यह चेष्टा घृणा के योग्य है। तुम मेरे घर से निकल जाओ।

युवक ने क्रोध से कहा—मैं इसे लिए जाता हूं, तुम रोक सको तो रोको।

नन्दू उठा। युवक ने मैना का हाथ पकड़कर कहा—चलो।

नन्दू ने हठात् लाठी का एक भरपूर हाथ युवक पर दे मारा। युवक ने हाथ बचाकर तलवार निकाल ली। क्षण-भर ही में नन्दू धरती में गिर गया। लोहू की धार बह चली। युवक मैना का हाथ पकड़कर ले चला।

कष्ट से कराह कर नन्दू ने कहा—मैना! प्यारी मैना! आज इस तरह मेरा अन्त हुआ। तुमने दस वर्ष रात-दिन मेरी सेवा की, जैसे तुम हाड़-मांस की बनी ही नहीं हो। आज किस जादू ने तुम्हें अपने पति से इतनी दूर कर दिया। मैना! प्यारी, हाय! मैंने तुम्हें बड़ा दुःख दिया। अब मैं मर रहा हूं। पर प्रिये! तुम जाओ, सुखी रहो। परन्तु एक बूंद पानी क्या तुम अन्तिम बार अपने पति को, अपने प्यारे हाथों से पिलाओगी, प्यारी मैना?

मैना आगे न बढ़ सकी। वह रुकी-मुड़ी। वह पति की ओर दौड़ी और रोते-रोते उससे लिपट गई। उसने जल-पात्र पति का सिर उठाकर मुंह से लगाया।

पानी पीकर नन्दू ने कहा—मैना! विदा! प्यारी मैना! मैंने तुम्हें जगत् में इतना प्यार किया जितना कोई न करेगा। सुनो-सुनो, अन्तिम बार पास आओ, पास। मैना पति पर झुकी और क्षण-भर ही में चीत्कार करके तड़प उठी। गर्म रक्त की एक और धार उठी, युवक ने देखा—अवसर पाकर नन्दू ने छुरी मैना के कलेजे में भोंक दी है।

युवक ने दौड़कर मैना को उठाया। मूर्छा खुलने पर मैना ने अपने को युवक की गोद में देखा। धीरे-धीरे उसने शक्ति-संचय करके अपनी बांहें युवक के गले में डालकर कहा—मेरे प्यारे दुश्मन! आखिर इस तरह ठगे गए; परन्तु एक प्यार तो दे ही दो। मैना ने प्यासे होंठ ऊपर को उठाए, युवक के आंसुओं से भीगे मुख को दो-तीन बार चूमा और गोद में गिर गई।

नन्दू और मैना दोनों निर्जीव पड़े थे।

युवक ने अफसर के सम्मुख अपने कर्तव्य-विमुख होने का प्रमाण देकर एक वर्ष का कठिन कारावास प्राप्त किया।

सफेद कौआ

यह एक उत्कृष्ट व्यङ्गध्वनि की कहानी है। भारत में अंग्रेजों का आगमन और पलायन, अंग्रेजी संस्कृति का भारतीय जीवन में प्रवेश, और गांधीजी की 'क्विट इंडिया' के जादू की करामात को व्यंग्य-विनोद की भाव-भंगिमा में सांग-ध्वनित किया गया है। हिन्दी कहानी-साहित्य में यह अपने ढंग की अकेली ही कहानी है। विनोद और चमत्कार के साथ कहानी में भावोत्कर्ष का सुन्दर समन्वय है।

महाराज शूद्रक सभा-पण्डितों के साथ धर्मासन पर बैठे ज्ञान-चर्चा कर रहे थे। इसी समय वेत्रवती ने सम्मुख आकर निवेदन किया कि धर्मावतार, एक चाण्डाल-कन्या राजद्वार पर आई है। उसके साथ सफेद कौओं का एक जोड़ा है। उसका कहना है कि ये कौए साधारण नहीं हैं। सब नीति, राजनीति, धर्म-विग्रह के ज्ञाता हैं, राजाओं के सचिव होने के योग्य हैं। विविध भाषाओं के पण्डित, सभा-जयी और महावाग्मी हैं। चाण्डाल-कन्या उन कौओं को देव-चरणों में अर्पित कर धन्य हुआ चाहती है। आगे देव प्रमाण।

राजा ने चमत्कृत होकर सभा-पण्डितों की ओर देखा, और कहा—यह तो बड़ी अद्‌भुत बात है; एक तो सफेद कौआ, फिर विविध भाषाओं और नीति-शास्त्रों का ज्ञाता, महावाग्मी! ऐसा तो कहीं देखा-सुना नहीं। शास्त्रों में भी नहीं पढ़ा।

सभा-पण्डित वेत्रवती की बात सुनकर अवाक् रह गए। एक वृद्ध पण्डित ने कहा—धर्मावतार, जैसे पृथ्वी की सब नदियां समुद्र में लीन होती हैं, उसी प्रकार विश्व-सम्पदाएं भी महाराज की चरणगामिनी हो रही हैं। कदाचित् यह सफेद कौआ कोई विलक्षण जीव है। सम्भव है, कोई शापभ्रष्ट मुनिकुमार ही तिर्यक्‌योनिगत हुआ हो। यदि वह वैसा ही है, जैसा वह कहती है, तब तो वह राजसभा की शोभा बढ़ाने योग्य ही है।

राजमन्त्री ने सोचकर कहा—यही चाण्डाल-कन्या पहले भी एक तोता लेकर हमारी राजसभा में आई थी। वह तोता भी सब वेद-वेदांगों का ज्ञाता

और विद्याओं का भण्डार था। कदाचित् यह सफेद कौआ भी कोई ऐसा ही जीव हो।

राजा ने कहा—कदाचित् ऐसा ही हो। और फिर वेत्रवती को आज्ञा दी कि वह उस चाण्डाल-कन्या को उपस्थित करे।

वेत्रवती राजा को अभिवादन कर, अपने हाथ का पतला लपलपाता बेंत हवा में लीला से घुमाती हुई चली गई, और थोड़ी ही देर में सुषमा की खान चाण्डाल-कन्या ने हाथ में एक पिंजरा लेकर राजसभा में प्रवेश किया। वह पिंजरा सोने का बना हुआ था, और उसमें बहुत-से मूल्यवान रत्न जड़े थे। कौओं के पैरों में सोने की पैंजनियां थीं। कौओं के भोजन करने की प्यालियां चीन देश की बनी हुई थीं, जो कभी मैली नहीं होती थीं।

चाण्डाल-कन्या का रूप-लावण्य अद्वितीय था। जैसे नीलमणि के समूचे टुकड़े को काटकर उसकी देह बनाई गई हो। उत्फुल्ल अरविन्द के समान उसके नेत्र थे। वह पुष्प-भार-नमित बाला एक हाथ में बांस का टुकड़ा और दूसरे में वह पिंजरा लिए राजा के सम्मुख आई। राजा को उसने विधिवत् दण्डवत् की, और रत्न-पीठ पर वह पिंजरा रखकर वीणा-विनिन्दित स्वर में बोली—देव, जैसे आप सब मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, उसी भांति संसार के सब पक्षियों में ये कौए श्रेष्ठ हैं। महाराज, ये कौए सुदूर कामान्दोलन द्वीप में उत्पन्न हुए हैं, जहां सूर्य अपना सम्पूर्ण तेज प्रकट नहीं करता। वह द्वीप सप्तसागर के मध्यभाग में अत्यन्त दुर्गम है।

चाण्डाल-कन्या का यह अलौकिक भाषण सुनकर राजा और राजसभा के सभी पण्डित आश्चर्यचकित होकर उन कौओं को देखने लगे। यह देख, कौए ने कहा—राजन्, मैं अपने देश के महाप्रतापी राजा की ओर से और अपनी ओर से भी आपका अभिनन्दन करता हूं। मेरे देश के प्रतापी राजा ने मेरे द्वारा महाराज से मैत्री-सम्पर्क स्थापित करने की याचना की है। और महाराज, मैं आपके चरणों में निवास करना चाहता हूं तथा अपने देश की सात महाविभू-तियां अपने राजा की ओर से आपकी भेंट करता हूं। यह कहकर उस कौए ने अपनी चोंच से उन चीनी की प्यालियों में से उठाकर सात गुटिका राजा के सम्मुख धर्मासन पर रख दीं। फिर उसने बद्धांजलि होकर कहा—धर्मावतार, ये सब जादू की गुटिकाएं हैं। इनका चमत्कार अलौकिक है। इन्हें पाकर आप

अब पृथ्वी के सब राजाओं में सर्वश्रेष्ठ हो गए।

राजा ने उन गुटिकाओं की ओर विस्मयपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—हे चतुर शिरोमणि सफेद कौए, तेरी तो सभी बातें नई और निराली हैं। इन गुटिकाओं में भला क्या करामात है, सो हमसे निवेदन कर।

कौए ने नम्रतापूर्वक राजा का अभिवादन किया—महाराज, पहली गुटिका में आग-पानी और तेल के दैत्य मन्त्रबद्ध हैं। ये तीनों परस्पर विरोधी हैं। अब इनके प्रताप से आप संसार में जल-थल और आकाश में वायु की गति से स्वच्छन्द विचरण कर सकेंगे। आपको घोड़ा, हाथी, बैल, गधा, खच्चर किसी भी सवारी की आवश्यकता नहीं रहेगी। दूसरी गुटिका में इन्द्र का वज्र मन्त्रबद्ध है। महाराज, आपके देश में कभी रात्रि का अन्धकार होगा ही नहीं; उज्ज्वल प्रकाश से आपके नगर-द्वार प्रकाशमान रहेंगे। यह तड़ित्-दूत क्षण-भर में संसार-भर के समाचार सत्य-सत्य आपको निवेदन करेगा। तीसरी गुटिका में मृत्यु-दूतों के साथ साक्षात् यमराज विराजमान हैं। यह गुटिका उन्मुक्त वायु में छोड़ देने से शत्रु के नगर, देश, जन-जनपद देखते ही देखते विध्वस्त हो जाएंगे। इस गुटिका में विश्व को विजय करने की शक्ति है। चौथी गुटिका में माता सरस्वती का वास है, इसके प्रताप से आपको विविध विद्याओं का ज्ञान हो जाएगा, सब ज्ञान-विज्ञान आपके हस्तामलक होंगे। दुर्लभ ग्रन्थ सुलभ हो जाएंगे। पांचवीं गुटिका में सब भूत-पिशाच सिद्ध हैं, इसके प्रताप से आप हज़ारों मील दूर बैठे देव-दैत्य-मानव-दानव, सबसे उसी प्रकार वार्तालाप कर सकेंगे, जिस प्रकार आपका यह दास आपसे बात कर रहा है। छठी गुटिका में महालक्ष्मी मन्त्रबद्ध हैं। इसके छूमन्तर जादू से कागज़ के टुकड़े ही धनरत्न बन जाएंगे। लाखों-करोड़ों की अक्षय सम्पदा बिना ही सम्पदा के दीख पड़ेगी। इसके परम प्रताप से स्वर्ण केवल धातु ही रह जाएगा। सातवीं गुटिका में कूटनीति के आचार्य दैत्यगुरु शुक्र, देवगुरु बृहस्पति, और मानव चाणक्य की आत्माएं मन्त्रबद्ध हैं। इसके प्रताप से आपकी वाणी में वह कूटरस उत्पन्न हो जाएगा, कि जो कार्य, रक्त की नदी बहाकर भी सम्पन्न नहीं हो पाते थे, अब बात की बात में ही हो जाएंगे।

कौए से ऐसी अद्भुत सात विधियां प्राप्त कर और उनका माहात्म्य सुनकर महाराज शूद्रक पुलकित हो गए। उन्होंने कहा—अरे कौए, तू तो बड़ा ही विलक्षण जीव है, तेरी वाणी अटपटी तो अवश्य है, परन्तु बात काम की करता है।

मैं तुझपर प्रसन्न हुआ। मांग, क्या मांगता है ?

कौए ने भूमि पर चोंच रगड़कर राजा को बारम्बार साष्टांग प्रणाम किया, और कहा—महाराज, अधिक लोभ से विनाश होता है, और बिना सेवा स्वामी से पुरस्कार मांगने से पुण्य क्षय होता है। इसलिए मैं अल्प से ही सन्तुष्ट रहता हूं। बस, मुझे इतना ही चाहिए कि मेरा यह पिंजरा राजद्वार में टांग दिया जाए, और इस दास की राजमन्त्रियों में गणना की जाए तथा मेरी सेवाओं की कद्र की जाए।

राजा ने उस कौए को तुरन्त राज्य का प्रधानमन्त्री घोषित कर दिया, और आज्ञा दी कि इसका पिंजरा सदैव राजद्वार में टंगा रहे, तथा इसे राजपरिवार से दूध में भिगोकर चने की दाल नित्य खिलाई जाए।

कौए ने बारम्बार धरती में चोंच रगड़कर कहा—बस महाराज, बस। अधिक लालच मत दिखाइए। चने की दाल मैं खाने का नहीं, न राजपरिवार का भोजन स्वीकार करूंगा। मेरा कुल चाण्डाल-पोषित है। यह हमारी कुल-परम्परा है, अतः मैं चाण्डाल-कुल के हाथ का ही भोजन करूंगा। इसके अतिरिक्त मेरा विशिष्ट भोजन भी चाण्डाल-कुल से ही प्राप्त हो सकता है। राजा ने कौए का अनुरोध स्वीकार किया, और सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि आज से यही सफेद कौआ हमारा सब राजकाज देखेगा। इसीका हुक्म सबको बजाना होगा। तथा आज से चाण्डाल-कुल अस्पर्श्य भी नहीं माना जाएगा।

इतना आदेश दे, महाराज शूद्रक ने धर्मासन त्यागा, और अन्तःपुर में जा सुखसेज पर विश्राम किया। चंवर-वाहिनी ने महाराज पर चंवर डुलाया, और महाराज सुख-नींद में सो गए।

राजा के धर्मासन त्यागते ही कौए ने चाण्डाल-कन्या को हुक्म दिया कि हमारा पिंजरा धर्मासन पर स्थापित कर। अब आज से हम धर्मासन पर बैठकर राज्य का सब काम देखेंगे। इसके बाद सभी पंडितों की ओर देख, तिरस्कार-युक्त वाणी में कौआ बोला—अरे मूर्ख पंडितो, अब आज से यह हमारा अनुशासन चला। तुम्हें उचित है कि यह बड़े-बड़े पग्गड़ की गठरियां सिर पर लादकर हमारे सम्मुख न आओ, न धोती पहनकर, न नंगे पांव। हमारे सम्मुख पैर ऊंचे करके भी नहीं बैठने पाओगे। और, हमसे हमारी ही भाषा में बात करना

सीखो। हमारा ज्ञान और हमारी विद्या पढ़ो, हम जैसा कहें वैसा करो, नहीं तो तुम्हारी सब जागीर-जायदाद, वेतन-मुशाहरा हम ज़ब्त कर लेंगे।

सभा-पण्डित बड़े घबराए। वे कहने लगे—हे काक-मन्त्री, भला हम तुम्हारी-सी बोली कैसे बोल सकते हैं, तथा हमें धोतियां तुम न पहनने दोगे, तो हम निर्लज्ज-नंगे कैसे राजद्वार पर आएंगे।

कौए ने कहा—मूर्खता की बातें मत करो, सीखने से सब आ जाएगा, नहीं तो भूखे मरोगे। सबको पदच्युत कर दूंगा। पहला काम तो तुम यह करो, चेहरे का घास-फूस साफ करो, सफाचट करना होगा, समझे। और हमारी बोली बहुत मुश्किल नहीं, केवल टा-टा करना सीख लो। वेश तुम्हारा हम ठीक कर देंगे।

सारे सभा-पण्डित टा-टा करते हुए अपने-अपने घर गए और दूसरे दिन सब क्लीन-शेव किए कोट-पैंट पहन, टाई फर्राते, बूट मचमचाते, फकाफक सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए दरबार में पहुंचकर बोले—हे काक-मन्त्री, टा-टा, अर्थात् सब ठीक-ठाक है न ? सब तुम्हारी पसन्द है न ?

काक ने कहा—टा-टा। ठीक है, ठीक है। शेष सब शीघ्र ही ठीक हो जाएगा।

एक पण्डित ने हाथ जोड़कर कहा—हे काक-मन्त्री, इस पोशाक में हमें एक बड़ा कष्ट है। हम लघुशंका को बैठ नहीं पाते हैं।

कौए ने फटकारकर कहा—अरे मूर्ख, लघुशंका के लिए बैठने की क्या आवश्यकता है, खड़े-खड़े कर।

'और दीर्घशंका ?'

कौए ने एक कागज़ का टुकड़ा देकर कहा—दीर्घशंका के बाद इस कागज़ से पोंछ। खबरदार, अंगविशेष पर जल का स्पर्श न करना। नहीं तो मेरे अन्न-दाता चाण्डाल-कुल को कष्ट होगा।

महाराज ने राजसभा में आकर देखा—वहां का सब नक्शा ही बदला हुआ है। सभा-पण्डितों को नये वेश में फकाफक सिगरेट का धुआं उड़ाते तथा सफाचट दाढ़ी, मूंछें मुंड़ाए देख, महाराज चकरा गए। इसके बाद ज्योंही उन्होंने राजा का स्वागत करते हुए कहा—महाराज, टा-टा।—तो महाराज बोले—हे सभा-पण्डितो, क्या तुम सब भांग खा गए हो, या कोई नाटक का स्वांग हमारे मनोरंजन के लिए भर लाए हो।—तब सभा-पण्डितों ने पतलून की जेब में हाथ

डालकर कहा—धर्मावतार, टा-टा। बस काक-मन्त्री की भाषा है, उन्हीं का वेश है, उन्हीं का बोलबाला है।

राजा ने देखा, धर्मासन पर कौए का पिंजरा रखा है। उसने अपनी चोंच ऊंची करके कहा—टा-ट महाराज।—महाराज ने हंसते-हंसते कहा—टा-टा, टा-टा। भई वाह, यह टा-टा भी खूब भाषा रही। टा-टा।

अब कौआ भी बारम्बार टा-टा करने लगा और सभा-पण्डितों ने भी टा-टा का समा बांध दिया।

अन्त में राजा ने कहा—हे चतुर चूड़ामणि काक, अब कहो; तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हम क्या करें? कौए ने एक सेफ्टीरेज़र और ब्लेड तथा शेविंग केक देकर कहा—पहले आप शेव कर चेहरे के इस जंगल को साफ कीजिए। फिर सभा-पण्डितों के जैसी पोशाक धारण कीजिए। राजा ने झट शेव कर सभा-पण्डितों की सहायता से बूट कसे, पतलून पहनी, टाई बांधी, हैट लगाया और कौए की ओर देखकर कहा—टा-टा, काक-राज।—कौए ने चोंच ऊपर कर कहा—टा-टा, महाराज।

राजा ने कहा—अच्छा, यह तो हुआ। अब मैं बैठूं कहां? धर्मासन पर तो तुम बैठ गए।

कौए ने कहा—महाराज, जब यह सेवक अब सब राजकाज देखने को बैठ ही गया, तो अब आप श्रीमानों को धर्मासन के झंझटों में सिरदर्द मोल लेने की क्या आवश्यकता है? आप अन्तःपुर में पधारकर भोग-विलास से जीवन धन्य कीजिए तथा यह मेरे देश का मधु है, मधुपान करके आनन्द के सागर में डुबकियां लगाइए। यह कहकर कौए ने एक बोतल बढ़िया शैम्पेन शराब राजा को देकर कहा—टा-टा, महाराज।

बात राजा के मन को भा गई। उसने कहा—टा-टा, काक-मन्त्री, तो मैं अब चला। राजा हंसते हुए अन्तःपुर में चले गए।

सभा-पण्डितों ने कहा—तो काक-राज, हम क्या करें? राजसभा का काम कैसे चलेगा?

'जैसे चलेगा, वैसे हम चलाएंगे, तुम सब केवल टा-टा कहो और डान्स करो।'

सभा-पण्डितों ने हाथ जोड़कर कहा—हे काक-मन्त्री, डान्स करना तो हम

जानते नहीं, बाप-दादों ने हमें सिखाया नहीं।

अरे मूर्खो, हमारा मेमसाहेब तुम्हें डान्स सिखाएगा। यह कहकर कौए ने अपनी जोड़ीदार मादा से कहा—डार्लिंग, इन जानवरों को ज़रा डान्स तो सिखाओ।

बस काक-मैडम नपे-तुले कदम रखती, इतराती, इठलाती, बलखाती, कमर हिलाती, चोंच घुमाती, पिंजरे से बाहर आ, सभा-पण्डितों के चारों ओर घूम-घूमकर टा-टा करने लगी। उस काक-वधू को इस तरह मटकते देखकर सभा-पण्डितों के मुंह में पानी भर आया, उनमें जवानी का ज्वार उमड़ आया। वे भी उसकी देखा-देखी लगे कूल्हे मटकाने और मुंह बन्द कर टा-टा कहने। काक-राज ताल देने के लिए बीच-बीच में पों-पों कर अपना वायु छोड़ने लगे। काक-वधू काक-मन्त्री का उत्साहवर्धन करने के लिए किलकारी भरने लगी। सभा-पण्डितों ने खूब डान्स किया। काक-मन्त्री ने सबको एक-एक प्याला अपने देश का मधुपान कराया। उस दिन बहुत रात तक यह राजकाज होता रहा। अन्त में सब कोई टा-टा करके विदा हुए।

महाराज अन्तःपुर पहुंचे तो राजमहिषी उनका सफाचट, चिकना-चुपड़ा, बुढ़ापे से पिचका हुआ पीला मुख देख अवाक् रह गई। राज-रानियां, दासियां, चेटियां, कंचुकी, वेत्रवती सब मुंह आंचल से ढांप हंसने लगीं। महाराज पतलून की जेबों में हाथ डाले, सिगरेट पीते—खांसते-हंसते अन्तःपुर में इधर-उधर घूमने लगे। राजमहिषी ने कहा—देव, यह क्या हुआ, किस प्रिय का मरण-समाचार मिला? यह मुण्डन कैसे हुआ? राजा ने कहा—हे रानी, टा-टा। और सब दासियो, टा-टा। यह मरण-समाचार का मुण्डन नहीं है, काक-मन्त्री का प्रसाद है।

'किन्तु महाराज के मुंह में आग लगी है, अरी चेटियो, जल-जल।' महिषी ने महाराज के मुंह से सिगरेट का धुआं निकलते देख घबराकर कहा। किन्तु, महाराज ने कसके एक कश लिया, और लापरवाही से धुएं का एक बादल बनाते हुए कहा—नहीं, नहीं, देवी आग-ऊग कहीं नहीं लगी, यह हम काक-मन्त्री के सद्-परामर्श से धूम्रपान कर रहे हैं।

'हाय-हाय, सर्वनाश, धूम्रपान? तब तो हृदय में अन्धकार ही अन्धकार

हो जाएगा।'

'अहा, तुमने काक-मन्त्री की महिमा को देखा नहीं, अच्छा ठहरो, मैं उन्हें यहीं मंगाता हूं।'

पट्टराजमहिषी ने कहा—यह कैसी बात महाराज, परपुरुष का अन्तःपुर में प्रवेश होने से मर्यादा भंग होगी।

'नहीं होगी। काक-मन्त्री परपुरुष नहीं, तिर्यक्योनि का जीव है—कौआ है। जैसे तुम्हारे पासशुक-सारिका हैं, वैसे ही मेरा यह काक-मन्त्री है, पर बात उसकी निराली है। देखो तो तुम।'—इतना कहकर राजा ने एक चेटी को संकेत किया। और वह लपकती हुई जाकर कौए के पिंजरे को उठा लाई।

अन्तःपुर में आते ही कौओं की जोड़ी ने चोंच रगड़-रगड़कर कहा—टा-टा, महारानी, टा-टा, महाराज। राजदासियों ने दुहराया—टा-टा, महाराज! टा-टा, काक-राज!

महाराज ने महिषी से कहा—कहो, कहो, सब कोई कहो, टा-टा, टा-टा।

'ऐं? यह टा-टा क्या? इसके क्या अर्थ?'

'अर्थ कुछ नहीं, यह काक-भाषा है, सभ्य भाषा; बस यही अर्थ है।'

महारानी तथा अन्तःपुर की अन्य सब महिलाएं, चेटियां हंसती हुई बोलीं —टा-टा।

कौए ने कहा—धर्मावतार, अन्तःपुर का यह अवरोध तो सर्वथा अवांछनीय, एकदम ऐटिकेट के विपरीत है। इसमें उन्मुक्त बाहरी हवा का प्रवेश कहां है?

'नहीं है, मानता हूं। अच्छा, अभी प्रतिशोध करता हूं। समूचे अन्तःपुर में खिड़की-दरवाजे फुड़वाता हूं।' राजा ने आग्रह के स्वर में कहा।

कौए ने उत्तर दिया—यह यथेष्ट नहीं है महाराज। समूचे अन्तःपुर को ढहा दीजिए और महारानी तथा महिलाओं को उन्मुक्त वायु में स्वच्छन्द विचरण करने दीजिए।

'अरे नहीं काक-राज, ऐसा करना बहुत खतरनाक होगा। ये स्त्रियां स्वच्छंद विचरण करने लगेंगी, तो हमारे वश की न रहेंगी, भाग जाएंगी।'

'नहीं भागेंगी महाराज, इन्हें ये जूते पहना दीजिए, बस काफी है।' कौए

ने साढ़े सात अंगुल ऊंची एड़ी के जूतों के एक सौ इक्कीस जोड़े राजा को दिए। उन जूतों को पहनकर रनिवास की सब स्त्रियां लड़खड़ाती हुई चलने लगीं। महारानी ज़रा राजा की ओर लपकीं, तो खट-से पैर मुचक गया। औंधे मुंह गिर पड़ीं। राजा ने दौड़कर महारानी को उठाया, तो तनाव में आकर उनकी पतलून फट गई।

काक-मन्त्री ने यह देखा तो अधीर होकर कहा—नानसेन्स महाराज !

'नानसेन्स, नानसेन्स।' साहस की वृद्धि के लिए महाराज ने बोतल से कौए के देश का एक पैग मधुरस पिया।

परन्तु महारानी ने उठकर लड़खड़ाते हुए दो कदम चलकर हंसते हुए कहा—टा-टा, काक-राज। महाराज ने फटी हुई पतलून पर हथेलियां रखकर कहा—टा-टा, काक-मन्त्री।

कौआ खुश हो गया। उसने कहा—अब ठीक हुआ महाराज।

'मान गया तुम्हारी खोपड़ी को काक-मन्त्री ! ये जूते बड़े मज़े के रहे, इन्हें पहनकर ये स्त्रियां अवरोध न रहने पर भी भाग न सकेंगी।'

कौए ने कहा—महाराज, सभ्यता के मध्यबिन्दु दो ही हैं : स्त्रियों के लिए अधिक से अधिक ऊंची एड़ी का जूता, और मर्दों के लिए पतलून की क्रीज़।

'समझ गया, समझ गया। परन्तु एक दिक्कत है। खैर, बैठने की व्यवस्था तो पैर लटकाकर हो जाएगी। परन्तु महल में खड़े-खड़े लघुशंका करने का स्थान बनवाना पड़ेगा।'

'सो बन जाएगा। खड़े-खड़े लघुशंका करने में बहुत लाभ है महाराज, वह फिर कहूंगा, अभी महारानी को हमारी मेडम विभूतियां भेंट करना चाहती हैं।'

'वाह, वाह, देखें कैसी हैं वे विभूतियां ?'

'वे ये हैं महाराज।' काकनी ने नखरे से एक लिपस्टिक, एक पफ समेत पाउडर का डिब्बा और एक काजल की डिब्बी महारानी के हाथ में धर दी। और उनका उपयोग भी बता दिया।

बस, अन्तःपुर की सारी स्त्रियों ने होंठों पर लिपस्टिक पोत, गालों पर पाउडर मल, आंखों में कान तक काजल की रेखा खींच दी—एक-एक रेखा भौंहों की कोर पर भी बना दी, फिर दर्पण में अपना पेण्ट किया हुआ मुखकमल देख सब खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

राजा ने खुश होकर कहा—यह तो खूब रहा काक-राज, राजमहिषी तो इन विभूतियों से खिल उठीं।

कौए ने कहा—महाराज, ये विभूतियां ऐसी ही हैं, इनमें संसार के सब दर्शनशास्त्रों का निचोड़ भरा है।

राजा ने कपार पर भौंहें चढ़ाकर कहा—अरे, दर्शनशास्त्रों का निचोड़ ? क्या कहते हो, काक-राज ?

'सत्य कहता हूं महाराज। यह सारा विश्व त्रिगुणात्मक है। सत्-रज-तम, तीन गुणों को त्रिगुण कहा है। सो यह जो श्वेत पाउडर है, सो सतोगुण का प्रतीक है, लाल लिपस्टिक है, सो रजोगुण का और काजल तमोगुण का प्रतीक है, इस त्रिगुणात्मक संसार को 'मेकप' कहा गया है महाराज। यह 'मेकप' महापरोपकारमूलक है। इसे देखकर देखनेवाले पुरुष-पुङ्गवों के नेत्र तृप्त होते हैं। स्त्रियों को इससे कुछ लाभ नहीं होता। वे परोपकार ही के लिए यह 'मेकप' करती हैं।'

'तब तो यह धर्म-लाभ हुआ काक-राज, क्या कहने हैं तुम्हारे बुद्धि-सागर। टा-टा।'

'टा-टा, महाराज, अच्छा तो अब आप इन सब राज-महिलाओं के साथ डान्स कीजिए एक बार।'

'किन्तु काक-राज, इन जूतों से तो मैं चल ही नहीं सकती।' राजमहिषी ने हताश होकर कहा।

राजा ने कहा—न हो, इसकी एड़ी ज़रा-सी घिस दी जाए।

'नहीं महाराज, अभ्यास से चलना आ जाएगा। इनसे केवल यही लाभ नहीं है कि स्त्रियां भाग न सकेंगी; इस तरह चलने पर सौन्दर्य का भी उदय होगा। देखा आपने, वह नई चेटी चलती है, तो किस अदा से कूल्हे मटकाती है।' कौए ने एक युवती दासी की ओर संकेत करते हुए कहा।

'देख रहा हूं—देख रहा हूं। मज़ेदार है, दिलचस्प है। हां, यह लिपस्टिक और पाउडर मैं भी ज़रा-सा अपने होंठों और गालों पर मल लूं, तो कैसा रहेगा ?'

'नहीं महाराज, यह स्त्रियों ही की विभूति है। आप केवल पतलून की क्रीज़ का ख्याल रखिए। इसके लिए आप खड़े-खड़े लघुशंका कीजिए, खड़े-खड़े भेंट-मुलाकात, कामकाज आदि सब कुछ कीजिए, खड़े-खड़े बैठिए, खड़े-खड़े

खाइए।'

'श्रौर खड़े-खड़े सोऊं भी ?'

'नहीं-नहीं, सोने के लिए स्लीपिंग सूट दूंगा ।'

'तब ठीक है, टा-टा। श्राश्रो रानी, डान्स करो ।'

'महाराज, महारानी मेरे साथ डान्स करके मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाएं, श्रौर महाराज मेरी काकनी के साथ डान्स कर उसे उपकृत करें। यही ऐटीकेट है।'

'समझ गया। यह श्रदल-बदल का मामला है। बहुत श्रच्छा है। इसमें स्वाद बदलता रहता है। तो महारानी, जाश्रो, जाश्रो, काक-मन्त्री के साथ दिल खोलकर डान्स करो, छुश्राछूत, सोच-संकोच को गोली मारो।'

'महाराज, मुझे तो लाज लगती है।'

'तो काक-मन्त्री के देश का मधुपान करो। लाज-शर्म सब हवा हो जाएगी। फिर ताक धिनाधिन, ताक धिनाधिन।' महाराज हंसते हुए श्रपना श्रंग-विशेष बजाने लगे।

कौए ने राजमहिषी को श्रंक में भरकर कहा—टाटा ।

राजा ने काकनी को सीने से लगाकर कहा—टा-टा ।

श्रन्तःपुर की महिलाश्रों ने, जो जहां मिला, उसीसे जोड़ा मिलाकर कहा—टा-टा ! टा-टा।

देखते ही देखते महाराज शूद्रक के धर्म-राज्य में, धर्म-सभा में, श्रन्तःपुर में, जनपद में घोर परिवर्तन नज़र श्राने लगे। महाराज शूद्रक श्रब रात-दिन काक-मन्त्री के देश का मधुपान कर पौर-कन्याश्रों के साथ मज़े में दिन बिताने लगे। राजकाज का कर्ताधर्ता कौश्रा ही हो गया। राजमहिषी श्रौर राज-महिलाएं श्रदल-बदल का सार समझ, राहबाट-चौराहों पर घूमने श्रौर नित नये जोड़े छांटने लगीं। कौए के देश का मधु-प्रसाद सुविधा से सब जनपद को वितरण करने के लिए जगह-जगह मधुशालाएं खुल गईं। कौए को दी हुई सातों गुटिकाश्रों की करामात से देश श्रोतप्रोत हो गया। उसके प्रभाव से बड़े-बड़े परिणाम हुए। यज्ञस्तूप जलाकर मिलों की चिमनियां बना डाली गईं, तपोवनों में कम्पनियां खुल गईं। समाधि के स्थलों पर श्राफिस बन गए। ध्यान के समय काम का दौर-दौरा हुश्रा। गंगा-यमुना की कोमल देह क्षत-विक्षत कर डाली गई। यज्ञधेनुश्रों के मांस-खण्ड प्रिय खाद्य बन गए। श्रसूर्यम्पश्या महिलाएं सार्वजनिक

हो गई। स्त्रैण नरवरों ने प्रथम ताम्र-खण्ड पर, और पीछे जीवन की श्वासों पर अभ्युदय और निःश्रेय बेच डाला। अबोध बालिकाएं वैधव्य का वेश पहनने और निबाहने लगीं। अन्नपूर्णा भीख मांगने लगी। इन्द्र दासता के टुकड़े खाने लगे। विश्वेदेवा और रुद्र-वसु-यम पदच्युत हो गए। मनुष्य घोड़ों की भांति दौड़ने, भेड़ की भांति मरने और गधों की भांति पिसने लगे। अन्त में एक ऐसा विस्फोट हुआ कि उसीमें नीति-धर्म-समाज और तत्त्व—सब छिन्न-भिन्न हो गए।

एक लंगोटी बाबा राजद्वार पर आया। गंजी खोपड़ी, बड़े-बड़े कान, टूटे हुए दांत, दुबला, पतला, नंगा और पांव प्यादा। उसने धर्मासन से सम्मुख आकर पुकार की, महाराज शूद्रक के धर्म-राज्य की जयजयकार की। पर उसने आश्चर्यचकित होकर देखा—धर्मासन पर महाराज शूद्रक हैं ही नहीं। वहीं कौए का पिंजरा रखा हुआ है। सभा-पण्डित सब मधुपान कर नींद में ऊंघ रहे हैं। केवल द्वारपाल द्वार पर बैठा हथेली पर तम्बाकू मल रहा है।

लंगोटी बाबा को देखकर उसने हंसकर कहा—तम्बाकू खाओ बाबा।

'तम्बाकू नहीं, मैं धर्मासन के सम्मुख पुकार करने आया हूं।'

'तो बाबा, पतलून पहनो, टा-टा कहो, और हमको टिप दो। हम खड़े-खड़े तुम्हारा काम करा देंगे, काक-राज हमपर प्रसन्न हैं। वे हमारी ही आंखों से देखते हैं और हमारे ही कानों से सुनते हैं। हां, करते हैं मनचाहा। मुल, हमारी भी बात रखते हैं। बख्शीश दो।'

'यह काक-मन्त्री कौन है ?'

'तुम नहीं जानते ? वह कामान्दोलन द्वीप का जीव है।'

'और महाराज शूद्रक ?'

'वे तो मौज-मज़ा करते हैं, काक-राज का दिया मधुपान करते हैं। राजकाज से उन्हें क्या लेना-देना।'

लंगोटी बाबा ने द्वारपाल की बात सुनकर कहा—तू यहां क्यों बैठा है ?

'पेट के लिए।'

'तेरा पेट कहां है देखूं ?

द्वारपाल ने हंसते हुए अपना ढोल-सा मोटा पेट दिखा दिया।

'और दिल।'

द्वारपाल ने अपने सीने पर हाथ रखा।

'बुद्धि।'

'बुद्धि देखनी है, तो काक-राज में देखो बाबा, हमें बुद्धि से क्या लेना-देना है, टिप दो और काम लो, नहीं तो जै सीताराम।'

'जै सीताराम क्या ?'

'खसको यहां से, और क्या ?'

'तुम्हारा धर्म कहां है भाई।'

'मन्दिर में है।'

'उसकी कौन देखभाल करता है।'

'एक ब्राह्मण है, उसे हम रोटी दे देते हैं।'

'तुम कभी धर्म की सेवा नहीं करते ?'

'न।'

'और यह लाठी।'

'सिर फोड़ने के लिए है।'

'किसका ?'

'जिसका काक-मन्त्री कहे, नमक उसीका खाते हैं।'

'अपनी मेहनत का नहीं खाते ?'

'तो क्या हराम का खाते हैं ?' दरबान ने कोप करके लाठी उठाई।

लंगोटी बाबा ने हंसकर कहा—क्या पीटोगे ?

'ज़रूर पीटेंगे।'

'तब पीटो भाई।' बाबा पलथी लगाकर वहीं बैठ गए।

दरबान ने कहा—बाबा, बिना काम मत बैठो, हुक्म नहीं है।

'फिक्र मत करो, तुमने जै सीताराम कहा था न।'

'कहा था।'

'सीताराम को जानते हो ?'

'जानता हूं।'

'तो कहो—रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम।'

दरबान ने ये शब्द दुहरा दिए।

बाबा ने कहा—यों नहीं भाई, आंखें बन्द करके, हृदय के द्वार खोलकर, भक्तिपूर्वक कहो।

दरबान ने वैसा ही किया।

'दर्शन हुए ?'

'किनके ?'

'पतित पावन सीताराम के।'

'न'

'तो तुमने हृदय के द्वार नहीं खोले, केवल आंखें ही मूंदी, हृदय में लाठी का ध्यान था ?'

'था तो बाबा।'

'तो बेटा, लाठी फेंक दे।'

'और नौकरी ?'

'वह भी छोड़ दे।'

'खाऊंगा क्या ?'

'जोत, बो और खा।'

'पहनूंगा क्या ?'

'कात, बुन और पहन।'

'करूं क्या ?'

'कह, रघुपति राघव राजाराम—पतित पावन सीताराम।'

दरबान ने ऐसा ही किया। बाबा ने कहा :

'दर्शन हुए।'

'हुए, हुए।' दरबान ने आंसू बहाते हुए लंगोटी बाबा के पैर पकड़ लिए। दोनों मिलकर गाने लगे—रघुपति राघव राजाराम।

धीरे-धीरे राजद्वार पर भीड़ लग गई। सबने उस गान में अपना कण्ठ-स्वर मिला दिया।

काक-मन्त्री ने सुना, तो गरजकर कहा :

'यह कैसा शोर है, पकड़ो इन सबको।'

सब लोग भयभीत होकर भागने लगे। किन्तु बाबा ने कहा—मैं स्वयं आता हूं।

लंगोटी बाबा कौए के पिंजरे के पास जा खड़े हुए। कौए ने कहा :

'तेरी पतलून कहां है ?'

'मैं गरीबों का प्रतिनिधि हूं, लंगोटी-भर पहनता हूं।'

'टा-टा क्यों नहीं बोला ?'

'मैं रघुपति राघव बोलता हूं।'

कौए की मैडम ने कौए के कान में कहा—अरे इसके मुंह न लगो, यह बड़ा खतरनाक आदमी है।

'कौन है यह ?'

'वही है जिसने कुशद्वीप में झाड़ की सींक से तुम्हारी एक आंख फोड़ दी थी। याद है।'

'वह यह है ?'

'वही है डियर, मैंने इसके टूटे दांत देखते ही पह्चान लिया।'

'तो इस बार मैं इसे ठीक कर दूंगा।' उसने बाबा से कहा, 'मैं तुझे जानता हूं, तू वही ढोंगी बाबा है, जिसने कुशद्वीप में मुझे काना किया था।'

'मैं भी तुम्हें जानता हूं, तुम वही शैतान हो, जिसे मैंने कुशद्वीप में मनुष्य का लोहू पीते देखा था।'

'मैं इस बार तुझे ठीक कर दूंगा।'

'अच्छा होता तुम शैतानी छोड़कर भले जीव बन जाते।'

'बकवाद न कर, टा-टा कहता है या नहीं ?'

'नहीं।'

'तब ठहर, कौआ अपनी मादा सहित पिंजरे से निकल आया, और लंगोटी बाबा को पिंजरे में ठूंस दिया। लंगोटी बाबा खिलखिलाकर हंसने और लोगों से कहने लगा—आओ-आओ, यहां हम रघुपति राघव का गीत गाएं।

द्वारपाल ने हांक लगाई और सब सभा-पण्डित, सब राजसेवक, कर्मचारी, नगर-जनपद, जन, सभी पिंजरे में घुस बैठे, और लगे रघुपति राघव की धुन अलापने।

इसके बाद लंगोटी बाबा ने कहा, 'खुल जा शमशम।' तो खट से पिंजरे का फाटक खुल गया। सब बाहर आकर रघुपति राघव गाने लगे। कौए ने गुस्से में आकर फिर उन सबको ठूंस दिया। वे फिर निकल आए। फिर ठूंसा,

फिर निकले, फिर ठूंसा, फिर निकले। कौश्रा थककर हांफने लगा। चोंच से अपने पर नोचने लगा। काक-पत्नी ने कहा—कहती न थी, इसके मुंह न लगो।

'यह बाबा तो निकल-घुस के काम में पूरा उस्ताद निकला।'

'देखो, देखो, उसने फिर झाड़ू की सींक उठाई, कहीं वह तुम्हारी दूसरी श्रांख तो फोड़ देना नहीं चाहता; हाय, हाय, कहे देती हूं, काने हो गए—यहां तक तो बर्दाश्त कर लिया, दोनों फूट गईं तो तलाक दे दूंगी। श्रंधे हस्बैण्ड को जन्म-भर ढोती न फिरूंगी।'

'तो अब मैं क्या करूं? पाजी ने सबको साथ ले लिया, कोई भी तो टा-टा नहीं कहता।'

'मेरी राय मानो तो सुलह कर लो।'

कौए ने श्रछता-पछताकर कहा—बाबा, झगड़ा न कर, सुलह कर ले, जा, मैं तुझे दो पतलून दूंगा, सबको एक देता हूं। बोल, टा-टा बोल।

बाबा ने कहा—रघुपति राघव राजाराम।

उनके साथ लाखों कण्ठ-स्वरों ने गाया—रघुपति राघव राजाराम।

बाबा ने झाड़ू की एक सींक उठाई श्रौर कौए की श्रोर चला। कौश्रा घबराकर श्रपनी मेडम के साये में मुंह छिपाकर कहने लगा—बचाश्रो-बचाश्रो, डार्लिग। कहीं यह मेरी दूसरी श्रांख भी न फोड़ दे।'

कौए की मैडम ने कहा—तीन पतलून दे दो उसे, तीन।

कौए ने कहा—बाबा, मैं तुझे तीन पतलून दूंगा, टोस्ट श्रौर मक्खन भी दूंगा। श्रा सुलह कर ले।

बाबा ने झाड़ू की सींक ऊंची करके कहा—भाग रे कौए, भाग। चारों श्रोर से हज़ारों-लाखों नर-नारी, श्राबाल-वृद्ध उमड़ श्राए। किसीके हाथ में लकड़ी, किसीके हाथ में पत्थर, ईंट, किसीके हाथ में बांस। महिलाश्रों में किसीके हाथ में झाड़ू, किसीके हाथ में बेलन, किसीके हाथ में लोढ़ा श्रौर किसीके हाथ में चूल्हे की लकड़ी। सबने एक स्वर में चिल्लाकर कहा:

'भाग रे कौए, भाग।'

'भाग रे कौए, भाग।'

'भाग रे कौए, भाग।'

कौए ने ग्रपनी कानी ग्रांख में ग्रांसू भरकर एक बार ग्रपनी मेडम की ग्रोर देखा, मेडम के रंग-बेढंग देखकर कहा—फिर चलो डियर, जिन्हें भूंकना सिखाया, वे ही काटने ग्रा रहे हैं। बस खैरियत इसीमें है कि कानी ग्रांख लेकर भागो।

कौए ने सफेद पर फैलाकर सुलह का संकेत किया। लंगोटी बाबा ने भी लंगोटी हिला दी। कौग्रा बोला :

'ग्रच्छा, हम भागे जाते हैं बाबा, लेकिन हमारी जान बख्शनी होगी।'

लंगोटी बाबा बोले—तुझ कौए को मारकर कोई क्या लेगा—जा भाग। ग्रौर कौए ने भागने को पर फड़फड़ाए। इसपर कौए की मेमसाहब ने कहा—ग्रब इन गधों से डरना क्या, बाबा कह चुका तो जान का खतरा नहीं, ग्रांख फूटने का भी भय नहीं, ग्रब भागेंगे तो ठाट से, डान्स करते हुए, 'टा-टा' कहकर।

बस दोनों कदम-कदम डान्स करते हुए राजसभा की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। काक-मेडम ने हंस-हंसकर सब सभा-पंडितों से चोंच मिलाई। कौए ने कहा—बाबा, टा-टा।

बाबा ने हाथ मिलाकर ग्रौर हंसकर कहा—टा-टा, टा-टा।

सबने एक स्वर में कहा—टा-टा, टा-टा।

ग्रौर कौग्रा उड़ गया।

लम्बग्रीव

इस कहानी में कलाकार की आहत आत्मा असह्य वेदना से चीत्कार कर रही है। उस चीत्कार से देव-दैत्य तक विचलित हो गए हैं। कलाकार, जो नित्य ही भूत-दया, प्राणियों के सुख और जीवन के आनन्द के स्वप्न देखता रहता है, जब महामहानरमेध का द्रष्टा बना तो फिर उसकी वेदना की सीमा क्या होगी? शायद ही विश्व के किसी कलाकार ने भारत की विभाजन-विभीषिका पर ऐसा हाहाकार किया होगा। कहानी के टेकनिक का जहां तक सम्बन्ध है, लेखक को जातिगत विद्वेष से अछूता रहने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। कहानी में विशुद्ध मानव-प्रेम और भूत-दया है। रत्ती-भर भी प्रोप्रेगैंडा नहीं है, व्यंग्य और श्लेष के चमत्कार के तो कहने ही क्या हैं। चन्द्रकला कहानी का प्राण है, जो शिव का शिरोभूषण और विभाजन के पुरोहित का राष्ट्रचिन्ह है। कहानी-लेखक की सर्वोत्कृष्ट कहानियों में यह अन्यतम है।

उत्तुङ्ग हिमकूट पर धूर्जटि क्रोध से फूत्कार कर उठे। उनका हिम-धवल दिव्य-देह थरथरा गया। अभी-अभी उनकी समाधि भंग हुई थी और उसी समय उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके जटाजूट से कोई चन्द्रकला को चुरा ले गया। चन्द्रकला की रजत-प्रभा से हीन उनकी पाण्डुर जटा धूमिल और मलिन हो रही थी, जाह्नवी की शुभ्र-रेखा सूख गई थी। उनके क्रोध और चलभाव से उनके मृदु अङ्ग के सुखस्पर्श से सुप्त सर्प जागरित हो इधर-उधर सरकने लगे। कमर में लिपटा हुआ व्याघ्रचर्म स्खलित होकर नीचे खसक गया। जिस हिम-शिला पर कैलाशी शताब्दियों से ध्यानसुप्त, स्थिर, समाधिलीन तुरीयावस्था में उपस्थित थे, वह पिघलकर बहने लगी। उन्होंने एक बार अच्छी तरह निर्णय करने के लिए जटा को झाड़ा, वहां चन्द्रकला नहीं थी। उसे कोई चुरा ले गया था।

उन्होंने झांककर मर्त्यलोक की ओर देखा।

महाराज्यों की राजधानी दिल्ली अपने भाग्य पर इतरा रही थी, तब से अब तक इस महामन्दोदरी पुंश्चली ने न जाने कितने नर-नाहरों का रक्तपान किया, न जाने कितनी बार पति-हन्ताओं से यह वरी गई, यह अक्षययौवना आज दुलहिन बनी नई 'सजधज' में सजी खड़ी थी। रंग-बिरंगी ध्वजा, पताका, बन्दन-वारों से ओतप्रोत। विविध वाद्य, जन-कोलाहल-आपूरित कांच की भांति

चमचमाती सड़क पर असंख्य बिजली की दीपावलियों से प्रतिबिम्बित चांदनी-चौक में नर-नारी, आबाल-वृद्ध भरे थे। लालकिले के सामने दृष्टि के इस छोर से उस छोर तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दीख पड़ रहे थे। सब कह रहे थे—सात सौ वर्षों के बाद ! आज सात सौ वर्षों के बाद !—किसी सौभाग्य की सुखद भावना से उनके मुखमण्डल आनन्दित थे। उनके उत्सुक हृदय आन्दोलित, और भुजदण्ड विजयोल्लास से फड़क रहे थे। लालकिले के सिंहद्वार पर उनकी दृष्टि केन्द्रित थी। वहां एक तथाकथित ऐतिहासिक समारोह हो रहा था, जवाहरलाल नेहरू ऊंची भुजा किए किले के सिंहद्वार के ऊंचे कंगूरे पर हाथ में तिरंगा झंडा लिए खड़े थे, यूनियन जैक गतयौवना नारी के यौवन की भांति उनके चरणों में झुका हुआ था।

कैलाशी को अब और सह्य नहीं हुआ। एक बार दूर तक उस जन-कोलाहल और नरमुण्ड-पूरित नगर-गरिमा के ऊपर, अनन्त नक्षत्रों से भरे आकाश के नीचे अमन्द अंधकार से व्याप्त विश्व पर उन्होंने अमर्ष-मिश्रित दृष्टि डाली। वहां और सब कुछ यथावस्थित था, परन्तु चन्द्रकला नहीं थी। अन्ततः उनकी सर्वव्यापिनी दृष्टि सुदूर देश-प्रांत में इधर-उधर घूमकर एक अंधेरे मरुस्थल में, एक चल-चंचल कृष्णकाय क्षुद्र बिन्दु पर केन्द्रित हुई। उन्होंने भृकुटी कुंचित करके देखा और फूत्कार की, त्रिशूल उठा लिया और डमरू हाथ में लेकर बजाया :

डम-डम-डम-डम
डमर-डमर-डम
डमर-डमर
डमर-डमर
डमर-डमर
डम-डमर-डमर-डम
डमर-डमर

नन्दी ने हुंकार भरी, शृङ्गी-भृङ्गीगण दौड़ पड़े, उमा निद्रा से चौंक पड़ी, हिमकूट हिल उठा, कैलाश चल-विचलित हो गया, देव-दानव, नाग, दैत्य, जीव, अज भय-विस्फारित नेत्रों से एक-दूसरे को देखने लगे। स्वर्गलोक में डमरू-ध्वनि पहुंची। मर्त्यलोक में डमरू-ध्वनि पहुंची। पाताल-लोक में डमरू-ध्वनि पहुंची। अरे !

हुआ क्या ? कैलाशी आज कहीं असमय में ही रौद्र-भाव तो नहीं विस्तार कर रहे हैं ?

शृङ्गी-भृङ्गी ने भूमि पर गिरकर प्रणतिपात किया, उमा रत्नपीठ त्याग अस्त-व्यस्त पांव-प्यादे ही उठ धाईं, नन्दी बारम्बार कुकुन्द हिलाने और हुंकार भरने लगे। परन्तु डमरू बजता ही गया :

डम-डम-डम-डम
डमर-डमर-डम
डमर-डमर
डमर-डमर
डम-डमर-डमर-डम
डमर-डमर—

वेग से, अति वेग से, अत्यन्त वेग से। उसमें से अग्नि-स्फुलिंग निकलने लगे, वायु देव कांपने लगे। भूलोक में आंधी, उल्कापात, जल-प्रलय, भूकम्प होने लगे। जड़, जङ्गम त्राहि माम्, त्राहि माम् चिल्लाने लगे ! !

उमा ने भय, भक्ति, स्नेहपूरित मन्दस्मित वाणी से कहा—देव ! यह क्या ! आपके रक्षित लोक, परलोक, नक्षत्र-मण्डल सब ध्वंस हो जाएंगे ! प्रभो ! डमरू-नाद बन्द कीजिए ! सब ध्वंस हो जाएंगे !

'सो हो जाएं।' शिव ने त्रिशूल ऊंचा करके भीषण वेग से डमरू-नाद करते हुए कहा।

'जय देव ! जय-जय देव ! जय देवाधिदेव ! जय देव-देव ! ···' शृङ्गी-भृङ्गी, नन्दी, शिलिमुख, सूचीमुख, भुचुण्डी, शूर्पकर्ण, असिपत्र, वैताल, हिन्ताल, गोशृङ्ग, वज्रपद्म, लोहिताक्ष आदि शत-सहस्र रुद्रगण आ जुटे। किसीकी कमर में ताज़ा चूती हुई हाथी की खाल बंधी हुई, कोई व्याघ्रचर्म स्कन्ध पर लपेटे था। कोई नंग-धड़ंग, कोई कबन्ध, कोई प्रलम्ब, कोई निरवलम्ब, कोई विकटदन्त, कोई कृतान्त। कोई वीणा, मृदङ्ग, मुरज लिए; कोई शूल-शक्ति वर्मशरपुंज लिए दिग्दिगन्त से आ जुटे। सबने झांककर देखा :

घण्टाघर के कलङ्कित कलेवर पर विद्युत्-दीपावलियां रंग-बिरंगी आभा बिखेर रही थीं। चांदनीचौक जगमगा रहा था और दिल्ली के छैल-छबीले स्त्रैण नर 'हा-हो-हू-हू' करते, कचालू के पत्ते चाटते, पान कचरते, भीड़ में भारी यौवन-मदमाती, सैर-सपाटे की शौकीन लेडियों और मिसों को, जानते, अनजानते

दबोचते, घूरते, धर्मधक्के देते, ठिठोली और चुहल करते इधर से उधर गर्व-भरी चाल से आ-जा रहे थे। मानो इन्होंने अपने रक्त-जीवन और शौर्य के मूल्य पर यह तथाकथित स्वातन्त्र्य-लाभ किया है।

सबने देखा, सबने सोचा, यही क्या कैलाशी के क्षोभ का विषय है ?

परन्तु कैलाशी की दृष्टि सुदूर सूने मरुस्थल में अलक्ष, कृष्ण, चल-चंचल पिण्ड पर केन्द्रित थी। सभीका ध्यान दिल्ली के रंगीन दृश्य से हटकर वहीं पहुंच गया। बहुत ध्यान करने से अब सबने देखा—उस शून्य काली रात से आपूर्यमाण रेगिस्तान में एक लम्बग्रीव, अशुभ दर्शन, विगलित यौवन किन्तु भद्र-वसन नर-जन्तु ऊंट पर बैठा, हिचकोले खाता, अपनी कमज़ोर आंखों से, चश्मे की सहायता से, चेष्टा करके देखता, मार्गहीन मार्ग पर दौड़ा जा रहा है और कैलाशी की वक्रदृष्टि उसी भाग्यहीन पर केन्द्रित है। उनकी भृकुटी में बलि-रेखा स्पष्ट होती जा रही है, और नासिका-रन्ध्र फूल रहे हैं। श्वास वेग से आ रहा है, त्रिशूल का हाथ ऊंचा उठता ही जा रहा है, डमरू का वज्रनाद तीव्रतम होता जा रहा है।

उमा ने शंकित, भीत होकर कहा—अरे ! कहीं त्रिशूली तृतीय नेत्र तो नहीं खोल रहे हैं ? प्रलय हो जाएगा, असमय ही में विश्व भस्म हो जाएगा, असमय ही में•••

गण, गणपति सब विचलित हुए। वे निरुपाय उमा का मुंह ताकने लगे। उन्होंने कातर कण्ठ से कहा—मातः ! कैलाशी के अमर्ष का निवारण करो, उन्हें शिव-रूप में अवस्थित करो !

उमा ने शुभ्र-स्निग्ध हाथ कैलाशी के कंधे पर रखकर कहा—कौन है वह अधम मानुष, देव ?

'लम्बग्रीव।'

'क्या किया है उस पातकी ने ? एक नगण्य, जरा-मृत्युपाश-ग्रसित मानुष पर देवाधिदेव का ऐसा रोष क्यों ?'

'देखो, देखो, उसकी स्पर्धा ?' उन्होंने उंगली से संकेत कर उधर कुछ दिखाया।

उमा ने भयभीत होकर देखा—चन्द्रकला उसकी टोपी में संलग्न थी। फिर उन्होंने सदाशिव की धूमिल जटाओं को देखा जो चन्द्रकला के अभाव से

धूमिल और श्रीहीन हो रही थीं।

उमा भय और क्षोभ से जड़ हो, उस अंधेरे रेगिस्तान के मार्गहीन मार्ग में दौड़ते हुए ऊंट की, और उसके लम्बग्रीव आरोही की ओर देखने लगीं।

कैलाश की भृकुटी कुंचित होती जा रही थी, ओष्ठ फड़क रहे थे, कैलाशी कहीं तृतीय नेत्र न खोल दें, इसीसे भयभीत हो उमा ने कहा—क्या उसने चन्द्रकला को चुरा लिया है ?

'देखो तो तस्कर को ?' कैलाशी ने फिर हिमधवल उंगली उठाई।

किन्तु मर्त्यलोक में किसीको भी इस देवकोप का पता न था। लाहौर की अनारकली पेरिस के सौंदर्य और मोहक विलास से स्पर्धा-सी करती हुई दीख रही थी। सड़कें फैशनेबल ग्राहक-ग्राहिकाओं से पटी पड़ी थीं और दुकानें विदेशी फैशन की सामग्रियों से ! जीवन की कठिनाइयों की यहां परवाह न थी। गेहूं, उर्द और चना खा-खाकर, पंचनद की उर्वरा भूमि में उत्पन्न दूध, घी और रस की मुंहछुट खुराक खा-खाकर कद्दावर और स्वस्थ माता-पिताओं ने जो युवक-युवतियों की, आज के युग की, चपल जोड़ियां उत्पन्न की थीं, वे पच्छिमी हवा के झोंकों में झूम-झूमकर अपने विलास और यौवन का उन्मुक्त प्रदर्शन करती घूम रही थीं। धरती और आसमान पर वे अपने यौवन और विलास को छोड़कर दूसरी किसी वस्तु को देख ही न पा रही थीं। चरित्र और जीवन के साथ संश्लिष्ट कुछ गम्भीर दायित्व और भारी त्यागमय भावनाएं भी हैं, इनसे वे बिलकुल बेखबर थीं। और उनके पिता-पितृव्य मोटे और बेडौल पेट पर, जो बहुधा बेतुले गेहूं और चना खाने और यथावत् परिश्रम न करने से हो जाता है, कीमती विलायती सिल्क का अंग्रेज़ी-कट सूट का खोल चढ़ाए, सिर पर बत्तीस गज़ का एक थान लापरवाही से लपेटे, चोरी, चोरबाज़ारी, हरामखोरी और आपापंथी से गट्ठर के गट्ठर अंग्रेज़ों के दिए कागज़ी रुपयों को जेबों में भरे फिरते थे, जिनका स्वच्छन्द उपभोग करने में इन युवक-युवतियों को कोई रोक-टोक नहीं थी।

इन्हीं के साथ, अफ्रीका का जंगल चेहरों और सिर पर उगाए, वीर का बाना धारण किए बहुत लोग कोमल अन्तस्तल का रत्ती-राई बहिष्कार कर कड़ाह-प्रसाद और झटके का बेखटके आस्वाद ले रहे थे।

हठात् कैलाशी ने तृतीय नेत्र खोल दिया। सहस्र उल्कापात का वज्रनाद विश्व पर व्याप्त हो गया। अग्नि-स्फुलिंग की एक ज्योतिष्मती धारा हिमकूट से सीधी अनारकली पर आ पड़ी।

और, देखते ही देखते अनारकली भस्म होने लगी। लाहौर में भगदड़ मच गई। शताब्दियों से सुप्त और चिरदासता में मग्न विलास-लिप्सा और उसके साधन धांय-धांय जलने लगे।

नन्दी, शृंगी, भृङ्गी, भुशुण्डी, शिलिमुख, सूचीमुख, विकरालाक्ष, लम्बकर्ण, अतिसवक्ष आदि रौद्रगण दौड़ पड़े। गली-गली, कूचों-कूचों में उन्होंने मोटे, तोंदल, निकम्मे, लोलुप, कायर जनों को मारकर गिराना प्रारम्भ कर दिया, रौद्र नेत्र से विस्फारित अग्निशिखा लाहौर को घेरकर चारों ओर से भस्म करती ही रही। उसी अग्नि-समुद्र में घिर-घिरकर भागते-दौड़ते, हाय-हाय करते भद्र-अभद्र सब पटापट मरने लगे। विलास की लिप्सा ने वासना को घसीटकर साथ ले लिया और छांट-छांटकर विलास-पुत्तलिकाओं का अपहरण किया। देव, दैत्य, दानव भी पिल पड़े। भोग और भोग के साधन वे बटोरने लगे। इस धकापेल में शत-सहस्र पवित्र कुमारिकाएं, निर्दोष, पंचनद की पुत्रियां लांछित हुईं, नग्न की गईं, और दूषित हुईं। बहुतों ने जान दे दी, बहुतों ने आत्मार्पण किया। बहुत जूझ मरीं, बहुतों का क्रूर घात हुआ, बहुत वद्ध हुईं, बहुतों ने अखाद्य भक्षण किया। सम्पूर्ण पंचनद पर रुद्र का तृतीय नेत्र घूम गया। दाहक ज्वाला की परिधि बनाकर हरी-भरी पंचनद-भूमि, नगर, गांव, बस्ती, जनपद, जन सब भस्म होने लगे। मृत्यु और मृत्यु से भी कठिन यातनाओं, यन्त्रणाओं के अवर्णनीय नारकीय अभिनय हुए!

महानिष्क्रमण आरम्भ हुआ। लक्ष-लक्ष नर-समूह, घर-द्वार, खेत-सम्पत्ति छोड़ बेघर बने, पत्नी-पुत्रों से हाथ धोए, राह के भिखारी बने, बहिष्कृत हुए। शताब्दियों से परिचित घर-द्वार, खेत-खलिहान वहीं रहे, भग्न प्राण और जर्जर शरीर को ले, गठरी-मुठरी सिर पर लाद, कोई पांव प्यादे, कोई घोड़ा, गदहा, ऊंट, खच्चर, बैलगाड़ी पर, कोई अपने सशक्त साथी की पीठ पर चले अज्ञात यात्रा को, असहाय भिखारियों, खानाबदोशों की भांति। महिलाओं के पैरों में घाव हो गए, सुकुमारियां मूर्छित हो गईं, बालक सिसक-सिसककर मरने लगे,

वृद्धजन आंसुओं से अपनी धौली दाढ़ी धोते चले—कांखते, लंगड़ाते, गिरते-पड़ते, भूखे-प्यासे। एक-दो नहीं, लक्ष-लक्ष, सहस्र-सहस्र, शत-शत।

उल्कापात ने उन्हें छिन्न-भिन्न किया। आघात ने उन्हें आहत किया, रोग ने उन्हें अल्पायु मृत्यु दी, भूख ने उन्हें आबरू बेचने पर लाचार किया। न बूढ़े की लाज रही, न कुल-वधू की मर्यादा। न बड़े का बड़प्पन रहा, न छोटे का शील। प्राणों को देते-लेते, जीवन और मृत्यु का सामना करते, रात को तारों से भरी खुली रात में बीच राह सोते, दिन जलती धूप में झुलसती आंखों से जार-जार आंसू बहाते, थके हुए, गिरे हुए, घायल हुए परिजनों को घसीटते और कंधों पर ढोते हुए चलते गए। मरतों पर आशीर्वाद के अश्रुविन्दु न्योछावर करते, और जीतों पर निराशा की गहरी सांस खींचते। प्राण-पुत्तलिकाओं का उन्होंने अपने हाथों वध किया—घर में बन्द करके आग में फूंक दिया, और चल पड़े अपनी समझ से निर्द्वन्द्व होकर, सब कुछ खोकर केवल प्राणों का भार लेकर।

उमा ने आंखों में आंसू भरकर कहा—बहुत हुआ देव, बहुत हुआ। अधम, क्षुद्र, मर्त्य प्राणियों पर दया करो, नर-संहार रोको। निष्पाप कुमारियां लाज खो रही हैं; स्नेहवती माताओं की गोद सूनी हो रही है। नर-रक्त की नदी पंचनद की हरी-भरी भूमि को लाल बना रही है।

परन्तु त्रिशूली ने वाम हस्त ऊंचा करके डमरू वाद्य किया!

डम-डम-डम-डम

डमर-डमर-डम

डमर-डमर

डमर-डमर

डम-डमर-डमर-डम

डमर-डमर।

और फिर हुंकृति करके एकबारगी ही विष-वमन किया।

उमा मूर्छित होकर रत्न-सिंहासन से नीचे गिर गई। रौद्रगण विक्षिप्त हो दिल्ली पर दौड़ पड़े।

अरर-धम

अरर-धम

धम-धम

अग्नि-स्फुलिंग, लोहवर्षण, मृत्यु, लूट, अमर्ष, पाप और ताप का सम्पूर्ण विस्फोट हो गया। लाशें गली-कूचों में सड़ने लगीं। चांदनीचौक श्मशान हो गया। दुर्गन्ध, अराजकता, अंधेर और पाप के सब रूप प्रकट हुए। सड़कर फूली हुई लाशों पर मक्खियां भिनभिनाने लगीं। कुत्ते, सियार, गृद्ध, लालकिले के चारों ओर घूमने लगे। यमराज भैंसे पर सवार होकर मृत्यु के आखेट का लेखा, जोखा रखने आ पहुंचे। महामाया ने कालचक्र वेग से घुमाया, देव-दानव सब आकुल, भीत और आतंकित हो गए।

देवराज सब देवों के परामर्श से सतीश्वरी महामाया के मणिमहल की ड्योढ़ियों पर पहुंचे। और मस्तक झुकाकर बोले—देवि, देवाधिदेव धूर्जटि एक अधम तस्कर के दोष से मर्त्यलोक के लक्ष-लक्ष मानवों का विध्वंस कर रहे हैं! अब आप ही सहायता कीजिए देवि, आप ही की यह सृष्टि है; आप ही यदि इसे विध्वंस करेंगी तो कैसे होगा, कृपा कर कालचक्र को रोकिए, देवि महामाया।

महामाया ने हंसकर कहा—एक व्यक्ति के दोष से नहीं देवराज! सभीका दोष है। उन्होंने अपना जीवन अपने ही में केन्द्रित कर लिया है, वे आत्म-पुजारी, रूढ़ि के दास और वासना के पुजारी हो गए हैं। कर्तव्य-पथ को उन्होंने त्याग दिया है। वे मानव-कुल-कलंक हैं, मरें वे सब, देवाधिदेव की आज्ञा से, मैं नवीन सृष्टि-रचना करूंगी।

इन्द्र ने नतजानु होकर कहा—प्रसन्नमयी, ऐसा नहीं है। लोक गतानुगतिक है, जन-जीवन के रथचक्र को घुमाकर कर्तव्य के पथ पर लाने का भगीरथ प्रयत्न कुछ जन कर रहे हैं। आप कालचक्र को रोकिए, देवि!

महामाया ने झांककर चांदनीचौक की ओर देखा—गन्दी और अवांछनीय भीड़ भरी थी। भद्र-अभद्र सब जन भीड़ में आ-जा रहे थे। सड़कों पर खोंचे-वालों, कचालूवालों और अंडेवालों का जमघट था। खुले मैदान में मुर्गी के अंडे पक रहे थे। लोग अंट-शंट खा रहे थे। बहुत लोग शराब पी-पीकर अश्लील गीत गा रहे थे। बहुत-से स्त्रियों को देख-देख ठिठोली कर रहे थे; बहुत-से झूठे सौदे कर रहे थे। बहुत-से जेब काट रहे थे, कबाब पक रहे थे,

मांस के जलने की चिरांध फैल रही थी, बहुत लोग खड़े-खड़े गन्दे खाद्य खा रहे थे, सड़कों पर गन्दगी और कूड़ा-कर्कट का अम्बार लगा था। गाड़ियों में भीड़, धक्कम-धक्का, गाली-गलौज, झूठ, बेईमानी, दगाबाज़ी, अव्यवस्था, अशौच।

महामाया ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—मैं महामारी को भेजूंगी, दिल्ली के ये भेड़िये और सूअर पटापट मरेंगे। ये क्या सभ्यता, व्यवस्था, स्थैर्य, शिष्टाचार और संयम सीखेंगे ही नहीं ? इतना खोकर भी, इतना भोगकर भी !

क्रोध से महामाया का मुंह विवर्ण हो गया।

देवराज ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं, नहीं, देवि, अभी आप निर्णय न करें, देखिए, इधर क्या हो रहा है ?—देवराज ने एक ओर उंगली उठाई। महामाया ने देखा :

एक हिम-धवल शय्या पर एक क्षीणकाय कृष्णवर्ण वृद्ध चुपचाप लेटा था, और शय्या को घेरे कुछ भद्रजन आंखों में आंसू और अनुनय-भरे उसकी ओर ताक रहे थे। एक लम्बे कद के श्वेतकेशी छरहरे तरुण ने कहा :

'बापू, हम सब कुछ करेंगे, आप अपने जीवन की रक्षा कीजिए।'

बापू ने कहा—भद्र, मेरा जीवन तो मेरे लिए है ही नहीं, जिनके लिए है, वे ही इसे नष्ट भी कर सकते हैं। परन्तु मैं मानुष-द्वेष सह नहीं सकता। सब भाई हैं, एक भाई द्वेष करे तो दूसरा क्षमा कर दे, तभी उसके दोष का निवारण हो सकता है।

'ऐसा हम कह रहे हैं बापू !' एक बूढ़े मुसलमान ने आगे आकर कहा।

बापू ने मुस्कराकर उसका हाथ प्रेम से पकड़ लिया। फिर कहा—कीजिए मौलाना, कीजिए, और जब आप सफल होंगे तो मैं उपवास त्याग दूंगा। मैं चाहता हूं विश्वशान्ति, अटूट-प्रेम, दृढ़ विश्वास और हार्दिक सहयोग। इसीके लिए मैंने जीवन धारण किया और इसीके लिए मैं जीवन की बलि दूंगा।

महामाया ने मृदु हास्य से कहा—यह कौन देवभक्त है, देवराज ?

'गांधी हैं, प्रसन्नमयी ! ये मानवता की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे रहे हैं, और ये इनके साथी जवाहर, प्रसाद, आज़ाद, सरदार, राजाजी और परिजन।'

'साधु, देवराज साधु, तो तुम गांधी को लेकर देवाधिदेव की सेवा में

जाओ। आज अपराह्न में मैं उनकी आत्मा को दिव्य प्रकाश दूंगी।'

देवराज ने महामाया को प्रणाम किया और मर्त्यलोक को प्रस्थान किया।

उसी दिन, अपराह्न में नई दिल्ली में बिरला भवन के मुक्त उद्यान में जब शत-सहस्र जन आबाल-वृद्ध श्रद्धा आंचल में भरे, विनयावनत-तपोदग्ध-द्वितीया की क्षीण चन्द्रकला की भांति उस जीवित सत्त्व का अभिनन्दन कर रहे थे, जो उनके बीच हास्य की ज्योत्स्ना बखेरता हुआ हिम-धवल पीठ की ओर देव-वन्दना के लिए जा रहा था—तीन बार ज्योति-किरण फटी और तीन ही बार महानाद हुआ। उस महानाद में एक स्वरघोष भाग्यशालियों ने सुना, 'हे राम!'

महामाया ने माया-विस्तार की ओर नश्वर-अविनश्वर का हठात् विच्छेद हो गया, कोटि-कोटि मर्त्य प्राणी विमूढ़ हो आकुल हो उठे। मर्त्य-लोक नयन-नीर से प्रच्छालित हुआ। महामाया के प्रसाद से गांधी हिमकूट पर कैलास के हीरक द्वार पर देवराज इन्द्र के साथ जा पहुंचे। हीरक द्वार खुल गया, कुमार कार्तिक आनन्द से नृत्य करके झूमने लगे। कैलाश उज्ज्वल आभा से आलोकित दिव्यज्योति से आपूरित हो गया।

'कैलाशी ने शुभदृष्टि डाली, कहा—कौन है यह हिम-धवल शुभ्रकेषी?

'गांधी है देव।'

देवाधिदेव मुस्करा उठे, आप ही आप उनका तृतीय नेत्र निमीलित हो गया, उच्च हिमकूट पर वासन्ती वायु बहने लगी, विविध वर्ण पुष्प खिल गए, मकरन्द लोभी भ्रमर गूंजने लगे, कोयल कूकने लगी, मलय-मारुत का सुखस्पर्श पा कैलाशी आनन्द विभोर हो गए। बादलों को छिन्न-भिन्न करती हुई उमा रत्नशृंगार किए आ उपस्थित हुईं।

कैलाशी ने धीरे से त्रिशूल नीचे रख दिया। डमरू अपने स्थान पर अवस्थित हुआ। शुद्ध शिव रूप होकर धूर्जटि ने कहा:

'हे कालपुरुष, तू जयी हो। आ मेरे शीर्षस्थान पर आसीन रह, और वहीं से अनन्त विश्व पर जब तक भूलोक में काल का आयुदण्ड है, तू ही चन्द्र-कला के स्थान पर शीतल स्निग्ध-शुभ्र-शिव ज्योत्स्ना की मर्त्य प्राणियों पर वर्षा करता रह! मर्त्य प्राणियों पर वर्षा करता रह!'

मुखबिर

वह युवक किसी प्रेस में एक कम्पोजिटर था, अत्यन्त गरीब, सीधा और थोड़ा पढ़ा। देखने में दुबला-पतला, अभद्र-असभ्य-सा। बातचीत में भीरु, जीवन में लापरवाह। दिल्ली की बम-फैक्टरी के उद्घाटन का उल्लेख तो भारतीय विप्लव के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण बात है—परन्तु इस हुतात्मा को शायद किसीने जाना भी नहीं। उसके त्याग-तप ने भय और प्रलोभनों ही को नहीं, बड़ी से बड़ी ईर्ष्या को भी जय कर लिया था। कहानी बहुत सरस बन पड़ी है।

एक बाईस वर्ष का सुन्दर-सुगठित युवक सिर्फ एक स्वच्छ खद्दर की धोती पहने घास पर घुटनों के बल औंधा पड़ा था और उसकी पीठ पर एक गौरवर्ण सुकुमार बालक, जिसकी आयु पांच वर्ष की होगी, सवार था। बालक युवक के कान पकड़कर उसे घोड़ा बनाए हुए था और लात मारकर अपने घोड़े को चलाने का प्रयत्न कर रहा था। पर घोड़ा वहीं अड़ा खड़ा था।

शरद् ऋतु का सुन्दर प्रभात था। सुनहरी धूप चारों ओर फैली हुई थी। बालक और युवक दोनों मानो संसार-भर के प्राणियों की अपेक्षा सर्वाधिक प्रसन्न थे।

गांव छोटा-सा था, और सामने हरे-भरे खेत लहरा रहे थे। उन्मुक्त वायु इन प्रकृत विनोदियों से सानन्द विनोद कर रही थी। धीरे-धीरे एक और दुबला-पतला युवक वहीं आ खड़ा हुआ। वह इन दोनों से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे खड़ा इनका खेल देखने लगा। घोड़े का अभिनय करनेवाले युवक ने उसे देखा नहीं। वह जोर से हंस और बदन हिला-हिलाकर सवार को गिराने की चेष्टा कर रहा था। हठात् बालक का ध्यान निकट खड़े उस आगन्तुक की ओर चला गया। उसका उल्लास-प्रवाह रुक गया। उसने कहा—बाबू······।

युवक ने आंख उठाकर देखा और चौंक उठा। फिर उसने बच्चे को धीरे से पीठ से उतारकर उसे घर चले जाने का आदेश किया और संकेत से युवक को निकट बुलाकर पूछा—सब ठीक है?

'नहीं।'

'क्या हुआ ?'

'प्रयत्न निष्फल हुआ।'

युवक की आंखें चमकने लगीं। कुछ ठहरकर उसने पूछा—कारण ?

'सरदार स्वयं आपको कैफियत देना चाहते हैं।'

'क्या कोई और भी सम्वाद है ?'

'हां, पुलिस ने नम्बर चार और तीन सेन्टरों पर छापा मारकर वहां के सभी कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया है।'

'सरदार कहां है ?'

'वे चौदहवें सेंटर में परसों शाम को पौने आठ बजे आपकी प्रतीक्षा करेंगे।'

'सेंटर दो में क्या हो रहा है ?'

'अपने कार्यक्रम की तैयारियां।'

'प्रयोग-तिथि कौन-सी है ?'

'चौथी नवम्बर।'

'बाहर की क्या खबर है ?'

'कुछ भी नहीं।'

'सातवें सेंटर का प्रयोग कब होगा ?'

'अनिश्चित समय के लिए वह स्थगित कर दिया गया है।'

'किसकी आज्ञा से और क्यों ?'

'पुलिस बहुत ही सावधान है और साधन भी यथेष्ट उपस्थित नहीं।'

'अब तुम कहां जाओगे ?'

'अभी मैं आपका आदेश सरदार को दूंगा।'

'अच्छी बात है, मैं नियत समय पर सरदार से मिलूंगा।'

आगन्तुक चला गया और युवक गम्भीर भाव से वहीं घास पर बैठकर अपनी काल्पनिक दृष्टि से किसी अज्ञात भय को देखने लगा।

थोड़ी देर बाद एक और व्यक्ति आकर युवक के पास बैठ गया, फिर उसने स्नेह-भरे स्वर में पूछा :

'वह फिर आया था क्या भैया ?'

युवक चौंक उठा और हंस पड़ा। दूसरे व्यक्ति ने फिर कहा—लल्लू कहता था, वह बाबू आया है।

'हां, आया तो था।'

'कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ ?'

'कुछ नहीं, मैंने उसे समझा दिया। वह पन्द्रह दिन को मान गया है। कुछ अधिक व्याज का वादा करने से ही वह सन्तुष्ट हो गया।'

'पर भैया, यह कर्जा चुकेगा कैसे ?'

'सब चुक जाएगा, तुम चिन्ता क्यों करते हो ? लल्लू खा चुका ?'

'कहां ? वह बिना तुम्हारे थोड़े ही खाएगा।'

'बड़ा पाजी है। चलो फिर भोजन किया जाए। ओह ! भूख के मारे पेट में चूहे कूद रहे हैं।'

दोनों घर की ओर चल दिए। युवक कनखियों से दूसरे व्यक्ति को देख रहा था और वह अत्यन्त चिन्तित भाव से नीचा सिर किए कुछ सोचता हुआ चल रहा था। हठात् उसने सिर उठाकर कहा :

'एक काम किया जाए भैया, वह गया किधर है ? मैं उसे दौड़कर बुला लाता हूं।'

'क्यों, क्या करोगे ?'

'घर में एक-दो गहने हैं, उन्हें बेचकर इसका रुपया अभी दे दिया जाए।'

'इस समय तो बला टल ही गई, फिर देखा जाएगा। इस वक्त चिन्ता न करो।'

'तुम क्या कुछ कम चिन्तित बैठे थे ? मैं मर जाऊंगा, पर तुम्हें और लल्लू को कभी उदास नहीं देख सकता।'

युवक ने एक बार जी भरकर अपने इस पतले-दुबले मित्र की ओर देखा। बड़ी कठिनाई से उसने अपना उद्वेग और आंसू रोके, फिर थोड़ी देर बाद वह अस्वाभाविक रूप से हंस पड़ा। उसकी हंसी से वह व्यक्ति भी हंस पड़ा और पूछा :

'इतनी जोर से क्यों हंसे ?'

'तुम्हारे भोलेपन पर।'

'क्या तुम मेरी बात पसन्द नहीं करते ?'

'हरगिज़ नहीं, भाभी की चीज़ लेने का भला हमें क्या अधिकार है ?'

घर निकट आ गया और बालक ने चिल्लाकर कहा—छोटे चाचा, देखो यह मेरा नया कुरता !

'यह कहां पाया रे पाजी, इसे तो मैं पहनूंगा ।' युवक ने बच्चे को गोद में उठा लिया । इसके बाद तीनों प्रेमी मिलकर एकसाथ भोजन करने बैठे ।

युवक का नाम और व्यवसाय बताने की आवश्यकता नहीं । उसके मित्र का नाम था हरसरनदास । इसकी आयु थी लगभग पैंतीस वर्ष । एकाध बाल पकने लगा था, शरीर का दुबला-पतला भद्दा-सा आदमी था । बच्चा इसी व्यक्ति का एकमात्र पुत्र था । बच्चे की माता हरसरनदास की दूसरी पत्नी थी । वह सुन्दरी, चुस्त और अत्यन्त विनोदी स्वभाव की स्त्री थी । युवक न इसकी जाति का था न बिरादरी का । वह एक अनाथ बालक के तौर पर इस गांव में अल्पावस्था में आया और यहीं बड़ा हुआ था । बीच के सात-आठ वर्ष उसने दिल्ली में व्यतीत किए थे । इन सात-आठ वर्षों का उसका गोपनीय इतिहास कोई नहीं जानता । लोग तरह-तरह के अन्दाज़ लगाया करते थे । कोई कहता था—वह कालेज तक की पढ़ाई पास कर चुका । कोई कहता वह बड़ा कारबारी हो गया है । पर युवक सिवा दस-पांच दिनों के लिए बीच-बीच में गैरहाज़िर हो जाने के अपने कारबार के सम्बन्ध में कुछ प्रमाण नहीं रखता था । अलबत्ता वह गांव-भर में प्रिय और आदरणीय अवश्य माना जाता था । वह सबकी सब प्रकार की सेवा करता । उसका चरित्र निर्मल और उच्च था । उसकी भाषा संयत, विनम्र और स्वभाव अत्यन्त सरल था । गांववाले उसे मानते, प्यार करते और आड़े वक्त उसीसे सलाह-मशवरा भी करते थे ।

हरसरन पर उसकी योग्यता, देश-भक्ति, त्याग और चरित्र का काफी प्रभाव था । हरसरन के बच्चे और इस युवक का प्राण तो एक ही था । वह और उसकी स्त्री दोनों ही युवक की मानो पूजा करते थे । युवक का घर नहीं, कुटुम्ब नहीं, सगे-सम्बन्धी नहीं, वह हरसरन के ही घर रहता, वहीं खाता, सोता था । मानो वह उसी घर का व्यक्ति है । गरीब हरसरन तन-मन से युवक के सुख-दुःख का ख्याल रखता था ।

भोजन के बाद युवक ने कहा :

'देखो भाई हरसरन, आज मेरा शहर जाने का इरादा है ।'

'क्यों ?'

'एक नौकरी लग रही है, अब शायद वहीं रहना हो।'

'कितने की नौकरी है ?'

'पचास-साठ तो मिल ही जाएंगे।'

'बस इतने ही ?'

'नौकरी आराम की भी तो है !'

'क्या सरकारी है ?'

'राम-राम ! क्या मैं सरकारी नौकरी करूंगा !'

'वही तो, फिर चलो हम भी शहर चलें, वहीं कुछ काम-धन्धा देख-भाल लेंगे।'

'तुम भला वहां क्या धन्धा करोगे ?'

'हम तुम्हें, ज़रा भी कष्ट न देंगे। अपने लिए कोई काम ढूंढ़ लेंगे। क्या कोई नौकरी नहीं मिल जाएगी ?'

'नहीं, ऐसा न होगा। तुम झंझट में पड़ जाओगे। तुम यहीं मौज करो, मैं बराबर आता रहूंगा।'

परन्तु हरसरनदास की पत्नी ने आकर आग्रह-भरे स्वर में कहा—वहां कहां खाओगे ? कहां रहोगे ? फिर लल्लू तुम्हारे बिना यहां कैसे रहेगा ?

बहुत वाद-विवाद के बाद दूसरे दिन चारों प्राणियों ने कूच कर दिया और दिल्ली के एक मुहल्ले में साधारण-सा मकान किराये पर लेकर रहने लगे। हरसरनदास किसी कपड़े की दुकान में बीस रुपये मासिक का नौकर हो गया। यहां रहते इन लोगों को दो मास व्यतीत हो गए। हम नहीं कह सकते कि युवक ने कुछ वेतन लाकर हरसरन के हाथ पर धरा या नहीं। हां, इतना हम जानते हैं कि अब भी हरसरन ही युवक को खिलाता, और अपने घर में रखता है।

आधी रात व्यतीत हो रही थी। चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, थोड़ी वर्षा हो जाने के कारण ठण्डी हवा चल रही थी। आज युवक अभी तक नहीं आया था, बच्चा उसकी राह देखते-देखते सो गया था और दोनों स्त्री-पुरुष बिना खाए युवक की प्रतीक्षा कर रहे थे। इधर कई दिनों से युवक का समय

पर आना नहीं हो रहा था। वह बहुत व्यस्त और चिन्तित भी रहता था। हरसरन बहुत चेष्टा करने पर भी उसके हृदयगत भावों को नहीं जान सका था। पर वह इतना ज़रूर समझ गया था कि कुछ भारी भेद अवश्य है। मेरा यह मित्र किसी असाधारण काम में जुटा है। पर वह उसपर इतनी भक्ति रखता है कि वह बिना भेद जाने ही उसका सहायक और समर्थक बन गया।

आधी रात बीतने के बाद युवक आया। उसने धीमे स्वर से कहा—हरसरन, भाभी को दूसरे कमरे में भेज दो। अभी कुछ दोस्त यहां आएंगे। एक मित्र बहुत घायल हो गया है।

हरसरन लपककर व्यवस्था करने लगा। क्षण-भर ही में दो व्यक्ति एक अल्पवयस्क युवक को पीठ पर लादे भीतर घुस आए। वह बेहोश था, उसका एक हाथ बिलकुल ही उड़ गया था, मुंह झुलस गया था, दूसरे दोनों आदमियों में से भी एक थोड़ा घायल था। उसके वस्त्र कालिख और खून से भरे थे। बेहोश व्यक्ति को चारपाई पर लिटाकर युवक ने हरसरन से कहा—दरवाज़ा बन्द कर दो।

इसके बाद गर्म पानी करके उन्होंने मूर्छित युवक के घावों को धोया और पट्टी बांधी। दूसरे घायल की भी पट्टी आदि बांधी गई। फिर उन दोनों की पोशाक भी बदल दी गई।

चारों व्यक्ति चुपचाप घायल और बेहोश युवक को घेरे बैठे थे। युवक ने हरसरन से कहा—भाई हरसरन, अब मैं कुछ भेद तुमपर प्रकट करूंगा। क्या तुम सुनने को तैयार हो?

हरसरन इसकी प्रतीक्षा ही में था। उसने कहा—फिक्र न करो, मुझे क्या करना होगा, कहो।

'भाई हरसरन! तुम्हारे स्त्री-बच्चे हैं, इस कारण मैंने तुम्हें अलग ही रखना ठीक समझा था, पर अब तुमसे कुछ छिपाना मैं पाप समझता हूं। परन्तु देखो, भाभी को कुछ भी न मालूम होना चाहिए। समझे?'

'ऐसा ही होगा।'

'तब सुनो, तुम अखबारों में बम, खूनखराबी, गोली, पिस्तौल और डाके आदि की घटनाएं पढ़ा ही करते हो?'

'हां, हां, उस दिन···'

'हमीं लोग वह सब करते हैं।'

'मुझे भी शक था भैया, मगर···'

'सुनो, मैं सबका प्रधान हूं। देश-भर में सैकड़ों हमारे सेण्टर है। हमने इस शैतान अंग्रेजी राज्य-सत्ता को जड़ से उखाड़ने का सारा सरंजाम जुटा लिया है, हमारे पास रुपया भी बहुत जमा है।

'परन्तु···'

'सुनते जाओ, तुम देखते ही हो कि मैं तुम्हारी कसाले की रोटी खाता हूं और एक पैसा भी मेरे पास नहीं रहता। यह धन देश का है, हमारा नहीं। इसकी एक पाई भी अपने काम में लेना हमारे लिए हराम है। यही हाल मेरे इन मित्रों का भी है। ये सभी कालिज के उच्च डिग्री-प्राप्त बड़े-बड़े खान्दानी रईसों के बेटे हैं। चाहते तो बड़े-बड़े अफसर बन सकते थे, बड़े चैन से दिन काट सकते थे। पर ये अपने गुलाम देश की आजादी के लिए, करोड़ों भूखों और नंगों के पेट भरने और आबरू की रक्षा के लिए तन-मन-धन दे चुके है। किसीने ब्याह नहीं किया है। दुःख और मृत्यु इनके लिए कुछ नहीं है। जीवन का मोह ये त्याग चुके हैं। वेदना और प्रलोभन इनसे दूर हैं। ये महात्मा, योगी, तपस्वी देश के बालक हैं। भाभी के हठ और आग्रह से मैं बहुत अच्छा खाता-पहनता हूं। पर मेरे ये प्यारे भाई बहुधा फाके करते या कहीं मेहनत-मजूरी करके पैसा मिलने पर चना-चबैना खाकर पानी पी लेते हैं।'

हरसरन सकते की हालत में बैठा रहा। फिर उसने सिर पर से पगड़ी उतारकर युवक के पैरों पर रख दी। उसके नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लग गई। उसने हिचकियां लेकर कहा—मेरा मन कहता था, तुम देवदूत हो, अब तुम देवदूतों के सरदार निकले, मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूं। मेरा तन-मन तुम्हारे लिए है, बाल-बच्चेदार हूं, तो क्या, मैं प्राणों को कुछ भी नहीं समझता भैया, चाहे जब तुम सबके लिए मेरी चमड़ी हाज़िर है, जूते बनवा लो। जहां तुम्हारा पसीना गिरेगा, वहां मेरा खून गिरेगा। तुम देश के लिए और मैं तुम्हारे लिए।

युवकों ने उसे छाती से लगा लिया। अब युवक ने कहा—जो वीर इस

समय मृत्यु-शय्या पर है, वह एक साहसी रत्न है। वह मां का इकलौता बेटा है, उसकी उम्र अठारह वर्ष की है। हम लोग कुछ भयानक बम के प्रयोग कर रहे थे कि एक बम फट गया और एक वीर इस दशा को प्राप्त हुआ। अब इसके प्राणों की रक्षा संभव नहीं दीखती। किसी डाक्टर को तो हम नहीं बुला सकते।

'क्या करना चाहिए यह बताओ।' हरसरन ने बेबसी से कहा।

इतने में ही मूर्छित युवक ने ज़ोर-ज़ोर से सांस लेनी शुरू की। एक युवक बोला—अब कुछ नहीं हो सकता भाइयो, हमारा यह वीर साथी जा रहा है, देखो हुचकियां आने लगीं।—वह युवक घुटनों के बल बैठकर रोगी की पट्टी पर सिर रख बालक की भांति फूट-फूटकर रोने लगा। सभीके नेत्र भीगे थे। इधर घड़ी ने तीन बजाए और उधर युवक का प्राण-पखेरू उड़ गया!!!

एक युवक ने कहा—सरदार, अब रोने से क्या होगा? अभी तीन बजा है, अभी बहुत काम करना है। साहस कीजिए।

'अब क्या करना होगा?' हरसरन ने कहा।

'पहली बात लाश को हटाना है, दाह-क्रिया तो सम्भव ही नहीं।'

'तब बहा दिया जाए?'

'यही होगा, पर जमुनाजी तक लाश जाएगी कैसे?'

'लाश को बक्स में बन्द करना होगा।'

'इस समय बक्स लेकर जाना भी निरापद नहीं।'

हरसरन बोला—यह काम दिन में होगा और वह मैं कर लूंगा। दिन में कोई भी न देख पाएगा। आप लोग अब सुरक्षित स्थानों में चले जाएं।

'अब और सुरक्षित स्थान इस समय नहीं है। कल संध्या तक हमें यहीं रहना होगा। मेरे इन मित्रों को संध्या की मीटिंग में भाषण देना है।'

'आज तो सभाबन्दी है, भाषण कैसे होगा?'

'सभा अवश्य होगी और गोलियां भी अवश्य चलेंगी।'

'तुम्हें एक काम करना होगा, हरसरन भाई।'

'कहो।'

'सुबह ही भाभी को कुछ दिन के लिए मायके भेजना होगा।'

'यह हो जाएगा। उसके साथ असबाब में मैं लाश को भी अनायास ही ले जाऊंगा।'

'आज और कल दिन-भर हम यहीं रहेंगे। कोई गैर आदमी न आने पाएगा, हमारे साथ बहुत-सा सामान भी होगा।'

'मैं उस कमरे को खाली किए देता हूं।'

इसके बाद लाश की उपयुक्त व्यवस्था की गई और छः बजते-बजते तीनों युवक घर से बाहर निकले। इसके आधे घण्टे बाद ही हरसरन एक बड़ा-सा ट्रंक और कुछ सामान तांगे पर लाद स्त्री और पुत्रसहित एक ओर को चल दिया।

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'हरसरन दास।'

'इसी मकान में रहते हो?'

'जी हां।'

'क्या काम करते हो?'

'एक फर्म में नौकर हूं।'

'तुम्हारे साथ और कौन है?'

'मैं अकेला हूं। मेरी स्त्री अपने पिता के घर गई है।'

'मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

'कहिए।'

'तुम्हारे वे दोस्त कहां हैं जो तुम्हारे साथ रहते हैं, अजी वही गोरे-गोरे बाबू। असल बात यह है कि मैं तुम्हारे उन दोस्त का सहपाठी हूं। वे और मैं लाहौर में डी० ए० वी० कालेज में एकसाथ पढ़े हैं। मैं दिल्ली आया था, सोचा—मिलता चलूं।'

हरसरन को विश्वास नहीं हुआ। उसने अन्यमनस्क होकर कहा—मुझे कुछ भी मालूम नहीं वे कहां हैं।

'यह तो बड़े ताज्जुब की बात है, क्या उनके जल्दी लौटने की उम्मीद भी नहीं है?'

'नहीं', इतना कहकर हरसरनदास उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—मुझे

अब काम पर जाना है।

आगन्तुक ने सर्प के समान दृष्टि से उसे घूरकर कहा—तुम्हारे दोस्त किस कोठरी में रहते हैं ? उसे मेरे लिए खोल दो, तो मैं उनके आने तक उनकी प्रतीक्षा में ठहर जाऊं।

'मेरे पास चाभी नहीं है।'

'मगर उनकी कोठरी कौन-सी है ?'

'यहां उनकी कोई कोठरी नहीं है।'

'वे यहीं तो रहते हैं ?'

'यहां वे नहीं रहते।'

'तब कहां रहते हैं ?'

'मैं नहीं जानता। अब आप जाइए, मुझे देर हो रही है।'

आगन्तुक ने हंसकर कहा—तब तुम मुझे पहचान गए दोस्त। क्यों ?

'आप कोई हों, मुझे इससे क्या सरोकार है।'

'खैर, जब जान ही गए हो तो यह बात मैं नहीं छिपा सकता कि मैं घर की तलाशी लूंगा। मकान चारों तरफ से घेरा हुआ है, गड़बड़ न करना। मैं तुम्हें भी बादशाह के खिलाफ साज़िश करनेवालों में गिरफ्तार करता हूं।'

आगन्तुक जेब से हथकड़ियां और सीटी निकाली। सीटी बजाई, और एक कदम आगे बढ़कर हरसरन के हाथ में हथकड़ी डाल दी।

हरसरन ने कहा—बुरा हो तुम्हारा।

आगन्तुक ने अपनी रोबदार घनी काली दाढ़ी से चमचमाते दांत निकालकर हंस दिया और हथकड़ी की चाभी घुमाते हुए बोला—अब जिसका बुरा-भला होना होगा हो जाएगा।—इसी समय चार कान्स्टेबिल और पुलिस के एक इंस्पेक्टर कमरे में घुस आए। हरसरन को एक कान्स्टेबिल के सुपुर्द करके आगंतुक ने इंस्पेक्टर से कहा—दो-चार भले आदमियों को बुलाओ, मकान की तलाशी ली जाएगी।

हरसरन ने चिल्लाकर कहा—बुरा हो तुम्हारा।

शीघ्र ही दस, बीस, पचास आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। तरह-तरह की बातें और तरह-तरह की भावभंगिमाएं होने लगीं। हरसरन हथकड़ियों से जकड़ा हुआ चुपचाप खड़ा था। किसी भी प्रश्न के पूछे जाने पर वह भरपूर

वेग से चिल्लाकर कहता था—बुरा हो तुम्हारा।

तलाशी में बहुत-से तेजाब, बम बनाने के खोल, बहुत-से कल-पुर्ज़े, तार, बैटरियां और धातुओं के टुकड़े बरामद हुए। हरसरन से अधिक उत्तर पाने से निराश होकर पुलिस उसे लेकर दल-बलसहित थाने को चली गई। उस दिन के अखबारों में बम-फैक्टरी के भेद-उद्‌घाटन की बड़ी लम्बी-चौड़ी भूमिकाएं छपीं।

पुलिस की हिरासत में हरसरनदास निर्विकल्प बीजरूप पड़ा था। पुलिस के अफसर आकर गर्मी से पूछते—क्या तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत है? तुम अपना बिस्तरा मंगा सकते हो, किसीसे मिलना चाहो तो मिल सकते हो, पत्र लिखना चाहो तो वह भी कर सकते हो।

छोटे अफसर आकर उसके पास बैठ जाते, पूछते—कहो अब तुम्हारे वे बदमाश दोस्त कहां हैं, जिन्होंने तुम जैसे सीधे-सादे गरीब आदमी को फंसाया? हम जानते हैं कि तुम बेकसूर हो, पर भाई, तुम इसका सुराग दो, सांस-गांस बताओ तो कुछ पता चले। हमारा काम अपराधियों को पकड़ना है, भलेमानसों को सताना नहीं। देखो भाई, पुलिस को लोग नाहक बदनाम करते हैं कि आसामियों को सताती है। क्या तुम्हें कुछ तकलीफ दी? तुम चाहे जिससे मिलो, पत्र लिखो, खाओ, पिओ, अपने कपड़े मंगाओ, तुम्हें छुट्टी है।

ये सारी बातें हरसरन मानो पत्थर की मूर्ति की भांति सुनता हुआ जड़वत् बैठा रहता और एकाएक गरजकर कहता—बुरा हो तुम्हारा।—बड़े साहब और छोटे साहब भी यही जवाब पाते। डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट और खान बहादुर को भी यही जवाब था। जमादार, इन्स्पेक्टर, सिपाही सभीको केवल यही जवाब था—बुरा हो तुम्हारा।

इस जड़ भरत से कुछ मतलब हल होगा, इसकी आशा पुलिस में किसी-को भी न रही। बार-बार 'रिमाण्ड' लिया गया, अन्त में पुलिस अपनी असलियत पर आई। एक दिन दो भीमकाय कांस्टेबिल हवालात में घुस आए। हरसरन दीवार की ओर मुंह किए पड़ा था। कांस्टेबिलों ने पुकारकर कहा:

'क्यों दोस्त, सोते हो या जागते हो?'

हरसरन ने बिना विलम्ब, बिना हिले-डुले कहा—बुरा हो तुम्हारा।

'अरे यार, सिगरेट-बीड़ी पीओ, लो।'

हरसरन का वही जवाब था। अब एक ने ज़ोर से ठोकर लगाकर कहा—साले, बुरा तेरा होगा, फांसी पर जब चढ़ेगा, खड़ा हो।—दूसरे कांस्टेबिल ने उसकी गर्दन पकड़कर अनायास ही उसे उठा लिया और कहा—किसका बुरा हो ? सीधा बैठ और जवाब दे कि यार लोग कहां-कहां हैं और कौन-कौन हैं ?

हरसरन चुपचाप बैठ गया। दोनों कांस्टेबिलों ने उसे भरपूर मार दी। इस बार उसने अपना वह 'पेटेण्ट' शब्द भी उच्चारण करना त्याग दिया। वह निर्जीव मांस के लोथड़े की भांति तमाम मार चुपचाप सह गया। इसके बाद उसके दोनों हाथ चारपाई के नीचे दबाकर दोनों कांस्टेबिल उसपर बैठ गए और भांति-भांति के प्रश्न पूछने लगे। वेदना से उसकी आंखें निकलने लगीं, प्यास से कण्ठ लटपटा गया। धीरे-धीरे सारा दिन व्यतीत हो गया। भूख, प्यास, नींद और वेदना सभीने उसके साधारण क्षुद्र शरीर पर पूर्ण वेग से आक्रमण किया। पर क्या शंकर की आत्मा उसपर अवतीर्ण हुई या कोई पिशाच उसे सिद्ध था, वह निर्लेप निर्विकार उस वेदना को बिना एक बार उफ किए सहन कर रहा था। जब नींद के झोंके आते, वे दोनों राक्षस उसके कान या गर्दन पकड़कर झकझोर डालते, उसके नाखूनों में पिन चुभोते, उसके मलद्वार में लकड़ियां ठूंसते, और साधारण मार की तो चर्चा करने की आवश्यकता ही नहीं।

एक रात भी बीती और एक दिन भी। कांस्टेबिल बदलते गए। जो आते वे सोडा, चाय, बर्फ, मिठाई उड़ाते और अट्टहास के साथ उसका उपहास करते।

अन्ततः पुलिस हार गई। उसे जो कुछ भी प्रमाण मिल सके, उन्हें ही लेकर केस का चालान कर दिया। इक्कीस दिन तक भयानक यन्त्रणा और पीड़ा को भोगकर उस रौरव नरक के समान हवालात से वह अर्धमूर्छितावस्था में बाहर निकाला गया। उसका शरीर गिरा पड़ता था, पर उसे पकड़कर मोटर-लारी में बैठाया गया और वह ज़िला-मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मार से उसका होंठ सूज गया था और आंख के पास घाव हो गया था। छाती और पीठ पर मार के अनगिनत निशान और सूजन थी। दो कांस्टेबिलों ने उसे

घसीटकर मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा किया।

मजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारा नाम ?

'.........'

'अरे, तुम्हारा नाम क्या है ?'

'.........'

'क्या यह गूंगा है या बीमार है ?' मजिस्ट्रेट ने इन्स्पेक्टर से पूछा।

'हुजूर, यह पूरा मक्कार और मगरा है।'

मजिस्ट्रेट ने उससे फिर पूछा :

'तुम्हें कुछ कहना है, कुछ शिकायत है ?'

हरसरन ने एक बार मजिस्ट्रेट की ओर सिर उठाकर देखा और चिल्लाकर कहा—बुरा हो तुम्हारा।

मजिस्ट्रेट ने गंभीरतापूर्वक कुछ लिखा और उसे जेल में भेज देने की आज्ञा प्रदान की। हरसरन एक नरक से दूसरे नरक में गया।

'टिक, टिक, टिक !'

'टिक, टिक, टिक !'

हरसरन ने कालकोठरी में पड़े-पड़े सुना—बगल की किसी कोठरी से शब्द आ रहा है।

'टिक, टिक, टिक !'

'टिक, टिक, टिक !'

वह उठकर बैठ गया। कालकोठरी में बन्द हुए उसे आज सातवां दिन था, इस बीच में उसे दिनभर में केवल एक बार मनुष्य की सूरत देखने को मिलती है, जब वह शौचादि के लिए बीस मिनट के लिए कोठरी से बाहर निकाला जाता है। पर मनुष्य का कंठ-स्वर उसने सुना ही नहीं। वह शब्द ध्यान से सुनकर हरसरन ने भी उंगली से ठोका :

'टिक, टिक, टिक !'

उधर से आवाज आई—क्या तुम भी कोई दुखिया कैदी हो ?

हरसरन के मुख पर उसके स्वाभाविक शब्द आए, होंठ फड़के, पर उन्हें रोककर उसने कहा—हां, और तुम ?

'मैं भी, मुझे खड़ी बेड़ी दी गई है। क्या तुम किसी राजनीतिक मामले में हो ?'

'हां, और तुम ?'

'मैं भी, तुम्हारा नम्बर ?'

'तीस, और तुम्हारा ?'

'अठारह, क्या तुम्हें बाहर का कुछ समाचार मिलता है ?'

'नहीं, और तुम्हें ?'

'मुझे मिलता है, मैंने चालाकी से काम लिया है, । तुम कब से इस कोठरी में हो ?'

'नौ दिन से, और तुम ?'

'मुझे चौथा दिन है। चुप, कोई आता है।'

'तुम्हारा भला हो।'

हरसरन चुप हो गया।

आधी रात बीत गई। जेल में सन्नाटा था, हरसरन मच्छरों और जुंओं एवं सील और दुर्गन्ध से तंग होकर छटपटा रहा था। शब्द हुआ :

'टिक, टिक, टिक !'

'तुम्हारा नम्बर ?'

'अट्ठारह और तुम्हारा ?'

'तीस, क्या अभी तक जागते हो ?'

'हां, कोई नई खबर है ?'

'मुझे तुम्हारा नाम मालूम हो गया है, क्या तुम्हें पीटा भी जा रहा है ?'

'हां !'

'कल जेल-सुपरिण्टेण्डेंट जेल का मुआयना करेंगे, उनसे शिकायत करना।'

'शिकायत करना मैं अपमान समझता हूं।'

'फिर चुपचाप कब तक सहोगे ?'

'जब तक वे कष्ट देंगे।'

'एक और खबर है।'

'क्या ?'

'तुम्हारी स्त्री आई है।'

'ऐं ? कब ?'

'कल। वह तुम्हें जमानत पर छुड़ाने की चिन्ता में है।'

'सच ?'

'हां, सुनो।'

'कहो।'

'मुलाकात करोगे ?'

'किससे ?'

'अपनी स्त्री से।'

'कैसे होगी ?'

'मैं करा दूंगा।'

'तुम ?'

'अफसर-जेल को मैंने चांदी के टुकड़ों से वश में कर लिया है।'

'छिः ऐसे थे तो जेल क्यों आए ?'

'सब लोग तुम्हारी तरह लोहे के कैसे बनेंगे दोस्त ?'

'मैं मुलाकात नहीं करूंगा।'

'सुनो।'

'कहो।'

'कल शिकायत ज़रूर करना।'

'हरगिज़ नहीं।'

इसके बाद हरसरन ने कहा—सुनो।

उधर से जवाब नहीं आया। हरसरन ने संकेत किया—टिक-टिक-टिक। उसका भी उत्तर नहीं आया। वह चुपचाप आकर फिर कम्बल पर पड़ गया।

दिन निकल आया। जेल-वार्डर गश्त लगाकर चला गया।

'टिक, टिक, टिक !'

हरसरन ने दौड़कर शब्द किया—टिक, टिक, टिक !

'अट्ठारह ?'

'हां, क्या तीस ?'

'हां।'

'क्या तुम्हें कोई नई सूचना मिली है ?'

'नहीं, तुमने कुछ सुना है ?'

'बहुत कुछ, मगर साहस न खोना।'

'कहो, मैं सुनने को तैयार हूं।'

'तुम्हारी स्त्री ने सब बता दिया है।'

'क्या ???'

'उत्तेजित न हो—क्या तुम उस भेद को नहीं जानते ?'

'कौन-सा भेद ?'

'मैं उस भेद की बात नहीं कहता जिस मामले में हम यहां आए हैं।'

'किस भेद की बात कहते हो ? बोलते क्यों नहीं ?'

'तुम्हारी स्त्री और दोस्त के गुप्त प्रेम का भेद।'

'दुष्ट, कुत्ता !'

'गाली बकने से क्या होगा ? बहुत-सी बातें मालूम हुई हैं।'

'कौन बातें ?'

'एक तुम्हारे बच्चे की बात।'

'उसकी क्या बात मालूम हुई ?'

'उसे तुम्हारा दोस्त क्यों इतना प्यार करता है, जानते हो ?'

'क्यों नहीं, वह उसे अपने बच्चे के समान ही समझता है।'

'समझता नहीं, वह उसीका बच्चा है।'

'झूठा, बेईमान, पाजी ! दूर हो। मैं तुझसे बात न करूंगा।'

'फिर सब बातें कैसे जानोगे, मैंने कहा था आपे से बाहर न होना।'

'तुम धूर्त, झूठे और बेईमान हो।'

'क्या सबूत देखोगे ?'

'तुम्हारा बुरा हो। दूर हो तुम।'

हरसरन दीवार के पास से हट आया। कई बार खट-खट हुई, पर व्यर्थ। हरसरन ने फिर उधर ध्यान नहीं दिया। उसके बदन में आग-सी लग गई। हे ईश्वर ! क्या यह सच है ? वह सीधा-सादा युवक, तेज और त्याग का मूर्तिमान अवतार, पवित्र जीवन और तपस्या की मूर्ति, क्या ऐसा कुकर्म करेगा ? मैंने अपनी जायदाद मिट्टी में मिलाई, घर-द्वार छोड़ा, उसके लिए अधम नौकरी की, इसलिए कि मैं उसके त्याग पर, देश-प्रेम पर मोहित हूं ? वह देवदूत की भांति

बोलता है। स्वर्गीय प्रभा उसके नेत्रों में है। मैं मूर्ख क्या उसके लिए इतना भी न करता। वह देश की सेवा में संलग्न है, मैंने अपने को उसकी सेवा में संलग्न किया। वह देश के लिए सर्वस्व त्याग चुका था और मैंने उसके लिए सर्वस्व त्यागा। सो क्या इसीलिए? नहीं, नहीं, ऐसी बातें सोचना भी पाप है। सर्प देवता हो सकता है पर देवता सर्प नहीं हो सकता। उसका पुत्र? राम-राम, क्या मेरी स्त्री व्यभिचारिणी है? व्यभिचारिणी की आंखें ऐसी होती हैं? व्यभिचारिणी क्या इस तरह हंसा करती है? ऐसी तत्पर और निःसंकोच होती है? हे ईश्वर! मैं क्या सोच रहा हूं। आज मैंने समझा कि मेरी आत्मा कितनी पापी है। हां, यह हो सकता है कि वह मुझसे हज़ार गुना अधिक उसे प्यार करती हो। परन्तु वह इस योग्य है। पर वह प्यार क्या अपवित्र ही हो सकता है? उसका पुत्र! उसका पुत्र!! हरसरन ने अपने सिर में पांच-सात घूंसे मारे। उसने कपड़े फाड़ डाले और वह भूमि पर लोटने और तड़फने लगा। इसके बाद वह दीवार के पास गया। टिक-टिक-टिक शब्द किया। एक बार, दो बार, तीन बार, पर कुछ भी उत्तर नहीं आया। वह तड़पती हुई मछली की भांति भूमि में पड़ा बिलखता रहा। उसने आघातों से शरीर को क्षत-विक्षत कर लिया। इसी भांति मर्मवेदना में उसकी रात्रि व्यतीत हुई। दिन आया और गया। खाना-पीना भी उसने छोड़ दिया। वह सैकड़ों बार दीवार के पास गया, टिक-टिक किया, पर कुछ भी उत्तर न प्राप्त हुआ। अब वह दीवार से सिर टकराने और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। तीन दिन बीत गए। हरसरन चुपचाप धरती पर पड़ा था। शब्द हुआ—टिक-टिक-टिक!

भूखा-प्यासा हरसरन सिंह की भांति झपटा। उसने तनिक उत्तेजित स्वर से कहा:

'तुम हो अठारह नम्बर?'

'हां।'

'ईश्वर का धन्यवाद है तुम यहीं हो। क्या तुम्हें भी कोई सज़ा मिली?'

'नहीं, तुम कहां थे?'

'खड़ी बेड़ी पर लटका दिया गया था।'

'क्यों?'

'तुमसे बातें करने और खबर मंगानेके अपराध में।'

'पर तुम झूठे हो।'

'अभागे भाई, मालूम होता है तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है !'

'तब सबूत दो।'

'सबूत पीछे लेना, पहले नई खबर सुन लो।'

'नई खबर क्या है ?'

'वे दोनों आज रात पकड़े गए हैं।'

'कौन दोनों ?'

'तुम्हारी स्त्री और मित्र ।'

'फिर वही बात ? दुष्ट !'

'वे दोनों रात को एक ही कमरे में थे !'

'तुम्हारा नाश हो, तुम गारत हो जाओ !'

'तुम्हारी स्त्री ने पुलिस को संकेत करके बुला लिया।'

'झूठे, बेईमान।'

'वह पुलिस से मिल गई है। पुलिस ने उसे बड़ी रकम दी है।'

'नीच, पाजी, चुप रह ।'

'अभागे भाई ! शोक है तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। तुम्हें बड़ी मर्मवेदना हो रही है।'

'सूअर, मैं तुझे देखते ही जान से मार डालूंगा।'

'कुछ चाहते हो ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ मांगना चाहते हो ?'

'कुछ नहीं।'

'अब शायद हमारी मुलाकात नहीं होगी।'

'क्यों ?'

'मैं आज ही रात को दूसरी जगह भेज दिया जाऊंगा, ऐसा प्रतीत होता है।'

'और सबूत ?'

'सबूत देखना चाहते हो ?'

'नहीं, कदापि नहीं, जाओ, मुलाकात की कुछ ज़रूरत नहीं है।'

'हरसरन वहां से हट आया। दो-तीन बार टिक-टिक शब्द हुआ। हरसरन

ने वहां कान नहीं दिया। वह दोनों हाथों पर सिर रखकर औंधे मुंह पड़ा रहा। वह कुछ सोच रहा था। उसके मस्तिष्क में सारे शरीर का खून इकट्ठा हो गया था। वह मानो जेल की छत, आकाश, स्वर्ग, सूर्य-मंडल, ब्रह्माण्ड सभीको भेदन करके ऊंचा और ऊंचा उड़ा चला जा रहा था। दिन निकल आया। पर हरसरन उसी दशा में पड़ा रहा। उसके कपड़े फट गए थे और शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। उसने तीन दिन से कुछ खाया न था।

वह दिनभर योंही पड़ा रहा। बीच में डाक्टर और जेल के अधिकारी उसे देखने आए। वह किसीसे कुछ नहीं बोला। धीरे-धीरे रात हुई और वह क्रमशः गम्भीर होती गई। फिर ध्वनि आई—टिक टिक टिक !

हरसरन झपटकर वहां पहुंचा।

'तुम झूठे, लबार, दुष्ट !'

'आह, क्या तुम्हारा सिर बिल्कुल फिर गया है, ? शान्त हो भाई, बहुत बुरी खबर है, क्या तुम्हें देखने डाक्टर नहीं आया ?'

'कौन-सी खबर है, कहो, कहो !'

'वह कहने योग्य नहीं।'

'कह, अरे दुष्ट ! कह।'

'मैं तुम्हारी गालियों का बुरा नहीं मानूंगा। ईश्वर तुम्हें शान्ति दे, क्या तुम उस खबर को सुन सकते हो ?'

'कह, अरे पाजी कह।'

'उसने स्वीकार कर लिया !'

'किसने ?'

'तुम्हारे मित्र ने।'

'क्या ?'

'कि वह तुम्हारी पत्नी का जार है, और वह उसकी रखेली है।'

'उसका नाश हो, अब चुप रहो।'

'सुनो, एक बात कहता हूं।'

'कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है, भागो यहां से।'

'सुनो भाई, मैंने एक निश्चय किया है, अब मैं नहीं सहन कर सकता, मैं अभी चला जाऊंगा। फिर अब मुलाकात नहीं होगी।'

'जाओ जहन्नुम में। तुमने क्या निश्चय किया है ?'

'वही तुम भी करो। विश्वासघाती को मज़ा चखा दो।'

'क्या ? क्या ??'

'मुखबिर हो जाओ।'

'हरामी, विश्वासघाती दूर हो।'

'तब फांसी पाओ। जिसने तुम्हारे जैसे विश्वासी मित्र की स्त्री को बिगाड़ा, धोखा दिया। उसे, तुम्हारी जगह मैं होता तो अवश्य फांसी पर लटकवाता।'

'अरे झूठे, दूर हो।'

हरसरन वहां से लौट आया। कुछ ही देर बाद उसने शब्द किया—टिक टिक टिक।—कोई भी उत्तर नहीं आया। अब वह बड़ी तेज़ी से उस छोटी-सी दुर्गन्धित कोठरी में चक्कर काटने लगा। उसकी आंखें फटी पड़ती थीं। मुट्ठियां बंद थीं और वह दांत मिसमिसा रहा था। वह ज़ोर-ज़ोर से पैर पटकता फिरता था। एक बार गत दस वर्ष का जीवन चित्रपट की भांति उसकी आंखों के सामने फिर गया। कैसे उसका विवाह हुआ था, कैसे उसने अपने मित्र से अपनी पत्नी की भेंट कराई थी; वे दोनों कितना शीघ्र घुल-मिल गए, वे घंटों बैठे गप्पें लड़ाते थे। मैं काम पर जाता, वे दोनों घर रहते। क्या यह सम्भव हो सकता है कि दोनों में बुरा सम्बन्ध हो ? फिर जब बच्चा हुआ तो वह कहा करती थी कि इसकी सूरत तुम्हारी जैसी नहीं तुम्हारे मित्र के जैसी है। क्यों ? बच्चे ?? क्यों ??? हाय यह मैंने कभी नहीं सोचा, सदा हंसकर टाल दिया। आज अब इसे समझकर ही रहूंगा। उसकी सूरत उसके समान क्यों है ? और वह क्यों यह बात बार-बार कहा करती थी। और क्यों वह उसे सदा इतना प्यार करता था ?? ठहरो, मैं अभी इसका मूल कारण समझ लूंगा। इतना कह-कर वह ज़ोर-ज़ोर से सिर में और छाती में घूंसे मारने लगा। इसके बाद उसने दीवार में टक्करें मारनी शुरू कीं और फिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश में आने पर वह कुछ क्षण चुपचाप पड़ा रहा। फिर उठकर बेचैनी और घबराहट में टहलने लगा। अब वह बड़बड़ा रहा था—मैं उसे मार डालूंगा और उसे भी। मैं सभी को मार डालूंगा। विश्वासघाती, वंचक,

चोर !!! इस बार उसने बड़े वेग से अपने शरीर को चीरकर कई घाव कर लिए। अब वह दीवार के पास जाकर टिक, टिक, टिक शब्द करने लगा। पर उत्तर न मिला। इसके बाद वह दीवार पर मुख रखकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने और दीवार पर घूंसे मारने लगा। वार्डर और जेल-अधिकारियों के बहुत चेष्टा करने पर भी उसके भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दिन समाप्त हुआ और रात्रि आई। वह उसी भांति दीवार में घूंसे मारता और चिल्लाता रहा। वह बारम्बार तीस को गालियां देने लगा।

रात ज्यों-ज्यों ढलने लगी, वह शिथिल होता गया। अन्त में वह बेहोश होकर गिर पड़ा। इस बार वह खूब सोया।

धूप चढ़ गई। दोपहर हो गई। हरसरन उठकर बैठ गया। कुछ देर वह सोचता रहा। इस समय वह बहुत सौम्य, स्थिर और गम्भीर था। उसने एक बार बहुत सापेक्ष दृष्टि से चारों ओर देखा। फिर वह बड़ी देर तक उस दीवार की ओर देखता रहा। एक बार वह उठकर दीवार की ओर चला भी। पर बीच ही से लौट आया। इस बार उसने वार्डर को पुकारकर कहा :

'अभी इसी वक्त बड़े साहब के पास मुझे ले चलो। मैं मुखबि़र होऊंगा।'

जेल में हलचल मच गई। फोन पर फोन खड़कने लगे। अधिकारी वर्दियां कसने लगे। वार्डर और सिपाही चुस्ती से नाकों पर खड़े हो गए। तमाम कैदियों को अपने-अपने बारक में बन्द होने का हुक्म दे दिया गया। रास्तों और दरवाज़ों की सफाई की जाने लगी। कुछ ही देर में पुलिस के उच्चाधिकारी, मजिस्ट्रेट और जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट की मोटरें जेल के फाटक पर आ लगीं। भूखा, नंगा, पागल और सर्वांग में क्षत-विक्षत हरसरन बाहर निकाला गया। वह चल नहीं सकता था। दो सिपाही उसे सहारा देकर लाए। आफिस में आकर वह गिर गया। उसे होश में लाया गया। डाक्टर ने कुछ शक्तिवर्धक दवा दी। जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उसे कुर्सी पर बैठाया। धीरे-धीरे होश में आकर उसने चारों ओर देखा। वह कुछ बड़बड़ा रहा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा—क्या तुम सरकारी गवाह बनकर शाही क्षमा चाहते हो ?

'मैं मुखबिर बना चाहता हूं ! मुखबिर !'

'क्या तुम बयान दे सकते हो ?'

'तुम लोग क्या चाहते हो ?'

'हम लोग तुम्हारा बयान लेना चाहते हैं ।'

'क्या तुम उसे फांसी दे दोगे ?'

'यह बात तो कानून के हाथ में है ।'

'उसे फांसी दे दो ।'

'तुम जो कुछ जानते हो, सब सच-सच बयान कर दो ।'

'मुझे क्या मिलेगा ?'

'क्षमा, तुम्हें क्षमा कर दिया जाएगा ।'

हरसरन के होंठों पर हंसी आई। उसने कहा—मेरे पास एक सबूत है, उससे सब काम सिद्ध हो जाएंगे । मुझे घर ले चलो । मैं तुम्हें एक ऐसी चीज़ दिखाऊंगा जो कभी किसीने न देखी होगी ।

अधिकारीगण ने परामर्श किया। पुलिस का दल तैयार किया गया। सभी उच्चाधिकारी साथ चले । मोहल्ले में सन्नाटा छा गया। लोग भीत-चकित दृष्टि से इस प्रबल दल को देखने लगे । घर में ताला लगा था। उसे तोड़ डाला गया। घर के भीतर जाकर हरसरन पागल की भांति जल्दी-जल्दी घर में घूमने लगा। एक बार वह पलंग के ऊपर लेटकर हंसने लगा। दूसरी बार उसने अलमारी की दराज खोलकर उसमें से एक बढ़िया कोट निकाल-कर पहन लिया, पर तत्काल ही उसे फेंक दिया ।

अधिकारी सतर्क होकर उसकी चेष्टा देख रहे थे। पर किसीने भी उसकी चेष्टा में कोई बाधा नहीं दी। वह इधर-उधर घूम-घूमकर हंसता, कभी बड़बड़ाता, और कभी इधर की चीज़ें उधर फेंकता रहा। इसके बाद वह अपनी पत्नी और पुत्र की तस्वीर के सामने जा खड़ा हुआ । इस बार वह फूट-फूटकर रोने लगा । उसने तस्वीर को छाती से लगा लिया। वह बहुत रोया।

अन्त में एक अधिकारी ने कहा—जिस काम के लिए आए हो, उसका भी तो ख्याल रखो । वह सबूत ?

'हां, वह सबूत !' उसने तस्वीर दूर फेंक दी और वक्रदृष्टि से बड़ी देर तक अधिकारी को घूरता और बड़बड़ाता रहा। फिर उसने कहा—अच्छी बात है, तब तुम उसे फांसी दोगे ? अब मैं तुम्हें ऐसा सबूत देता हूं जो किसीने नहीं दिया होगा । मैं अब मुखबिर हूं ।

इसके बाद उसने एक अलमारी का ताला तोड़ डाला और उसमें से एक छोटी-सी सन्दूकची निकाली। अधिकारी सतर्क हो गए। क्या आश्चर्य है, पिस्तौल या बम से हमला कर दे। बक्स को तोड़कर हरसरन ने एक छोटी-सी शीशी निकाली और उसे अधिकारियों को दिखाते हुए कहा :

'यह बड़ा भारी सबूत है। मैं अभी दिखा दूंगा कि इसमें क्या करामात है। तुम लोग अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहो।' इतना कहकर देखते ही देखते उसने शीशी को मुंह में उंडेल लिया और शीशी फेंक दी।

अधिकारीगण अब समझे और एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। हरसरन हंसने लगा। हंसते-हंसते उसने कहा—बुरा हो तुम्हारा, तुम क्या मुझे यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि उसने मेरी स्त्री को कुमार्गगामिनी बनाया? यह असम्भव है। पर यदि उसने ऐसा किया भी हो तो मैं उसे क्षमा करता हूं। वह देश का प्यारा पुत्र है। मैंने सब कुछ उसे दिया तो स्त्री-पुत्र भी सही।— इसके बाद उसका सर्वांग कांपने लगा और वह वहीं धरती पर गिर पड़ा। अभी तक उसे होश बाकी था। एक अधिकारी ने आगे बढ़कर कहा—यह तुमने क्या किया?

'प्रायश्चित्त! क्योंकि कल रात से मैं उसे विश्वासघाती समझने लगा था! जाओ, तुम्हारा बुरा हो।'

इसके कुछ क्षण बाद ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

मुहब्बत

राजा-रईसों के जीवन कितने विलासमय, वासनापूर्ण और अरक्षित होते हैं, और बहुधा वे खतरनाक घटनाओं के शिकार हो जाते हैं—इसका एक तथ्यपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत कहानी में है। आचार्य का राजा-रजवाड़ों से गहरा सम्पर्क रहा है, अतः इस कहानी में उनकी अनुभूति की स्पष्ट छाप है।

राजा साहब की आंखें हंस रही थीं। उन्हीं आंखों से उन्होंने मेरी ओर देखा, मुस्कराए और मसनद पर उठंग बैठकर मेरी ओर झुककर धीमे स्वर में कहा—देखी मुहब्बत ! मतलब न समझ सकने पर मैंने आंखों में ही प्रश्न किया। राजा साहब ने चार बीड़ा पान मुंह में ठूंसते हुए कहा—आप आंखवाले हैं; देखिए साहब।

राजा साहब बहुत खुश थे। रियासती अदब और शिष्टाचार वातावरण में भर रहा था। कुंवर साहब भी एक कोने में सजे-धजे बैठे थे। जरवफकी शेरवानी, सिर पर मंडील, उसपर हीरों की कलगी, गले में पन्ने का भारी कण्ठा। मगर आंखें नीचे झुकी हुई। राजा साहब की एक-एक बात पर कहकहे पड़ रहे थे, बीच-बीच में मुखरा बी साहबा भी फिकरा कस देती थीं। जिसपर कहकहा तो लाज़िमी था, मगर क्या मजाल कि कुंवर की मूंछों का बाल भी मुस्करा जाए। महफिल में बैठना उनके लिए दरबारी अदब के लिए जितना ज़रूरी था उससे अधिक महाराज के अदब से आंखें नीची रखना भी ज़रूरी था। सरंगियों की उंगलियां सिसकारी भर रही थीं और तबला तड़पकर हाय-हाय कर रहा था। मुझे यह सब १८वीं शताब्दी का सामन्तशाही दृश्य बिल्कुल ही भोंड़ा जंच रहा था। संगीत के नाम पर वह केवल चीख थी और नृत्य के नाम पर उछल-कूद। मगर लोग थे कि छिन-छिन पर वाह-वाह के नारे लगा रहे थे। कहकहों की धूम मची थी और वेश्याओं पर वाहवाही के साथ इनाम, न्यौछावरी की वर्षा हो रही थी। मुस्कराना तो मुझे भी पड़ रहा था। क्या करूं, राजा साहब का इतना लिहाज तो ज़रूरी था। मगर 'वाह' तो मेरे फूटे मुंह से एक बार भी नहीं निकलती थी। अब जो राजा साहब ने मेरी आंखों को एक चुनौती

दी तो मैं चश्मे से घूर-घूरकर ग्रहमक की तरह इधर-उधर देखने लगा। राजा साहब मेरी बेवकूफी पर रहम खाकर मुस्कराकर रह गए।

लेकिन कुछ क्षण बाद ही राजा साहब ने हुक्म दिया—मुहब्बत खड़ी हो।—ग्रौर तब मैंने मुहब्बत को देखा, कुछ समझा भी। कम से कम राजा साहब का दिल तो समझ ही गया। लम्बा, छरहरा, नपातुला बदन, चमकते सोने का रंग, बड़ी-बड़ी मदभरी ग्रांखें, चांदी का सा साफ माथा, भौंरे-सी गुंजनभरी लटें, दूज के चांद के समान पतली भौंहें ग्रौर बिल्कुल सोलह ग्रंगुल की कमर। पैर की ठोकर दी तो घुंघरू बजे, छम, फिर ठोकरें दीं, फिर दीं, ठोकरों की झड़ी लगाई, घुंघरू बजे, छम-छम, छमाछम, छमाछम। छम छमाछम। ग्रौर फिर देखी वह सोलह ग्रंगुलवाली कमर, बल खाती, इठलाती, नागिन-सी लहराती ग्रौर उसपर तैरता वह ग्रछूता यौवन। मदभरी ग्रांखें, तिरछी भौंहें। यहीं पर बस नहीं। कोयल की कूहू। पंचम की तान।

मसनद पर झुककर मैंने राजा साहब के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—देखा महाराज, ग्रब देखा।

राजा साहब ने भौंहें तरेरकर कहा—ग्रब क्या देखा? खाक। ग्रब तो धुनिये-जुलाहे सब देख चुके। सबकी नज़र पड़ चुकी, जूठी हो चुकी।—उन्होंने फिर ग्रपना चांदी का पानदान खोल चार बीड़े पान हलक में ठूंस लिए ग्रौर मेरी तरफ से मुंह फेर लिया।

क्या करूं? देहाती दहकानी ठहरा। राजा साहब को खुश करने का कोई ढंग ही नहीं नज़र ग्राया। मन मारकर मुहब्बत का नृत्य देखने लगा।

दोनों गालों में पान ठूंसे, उसे पेश करते, हंसते हुए एक ने कहा—गज़ल गाग्रो।—बनारस के बबुग्रा साहब ने एक मुट्ठी इलाइचियां पेश करते हुए कहा—जी नहीं, कोई ठुमरी।—मुंशीजी तड़पकर बोले—नहीं सरकार, कोई पक्की चीज़ होने दीजिए।—राजा साहब ने मेरी ग्रोर मुंह करके कहा—ग्राप फर्माइश कीजिए।—मैंने झेंपते हुए कहा—कोई ऐसी चीज़ सुनाइए जिसमें मुहब्बत का दरिया बह जाए।

राजा साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसी का फव्वारा फूट गया। भला राजा साहब हंसें ग्रौर महफिल चुप रह जाए! बा साहबा ने भी फिकरा जड़ा—तो हुज़ूर, इस मुहब्बत के दरिया से प्यास किसकी बुझेगी?

मैंने कहा—प्यास पंछियों की बुझेगी, मगर कोई मर्द-बच्चा डुबकी लगा बैठे तो अजब नहीं।

राजा साहब दुहत्तड़ जांघों पर मारकर उछल पड़े—खूब कहा, खूब कहा!—मुहब्बत झेंपकर झुक गई। कुछ देर में कहकहा का तूफान थमा और मुहब्बत ने एक गज़ल गाई।

जान बची लाखों पाए। राजा साहब खुश हो गए। मैंने समझा, ठीक मुसाहिबी हुई।

दूसरे दिन रात को राजा साहब ने बुलावा भेजा। जाकर देखा, दीवानखाने में राजा साहब और मुहब्बत दोनों ही हैं। पास में राजा साहब के मुंहलगे पेशकार राजा साहब का बड़ा-सा चांदी का पानदान गोद में लिए बैठे हैं।

मुहब्बत ने आधी ताज़ीम दी और सलाम किया। मैंने कहा—मुबारकबादी देता हूं। आप एक ही कमाल हैं।

'जी हां, कल आप नहीं बना सके, सो अब बनाइए,' मुहब्बत ने टेढ़ी नज़रों से देखकर कहा।'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है, आपका फन ही ऐसा है कि जो देखेगा सिर धुनने लगेगा।'

'आख्या! तो इसीसे हुज़ूर कल इस कदर सिर धुन रहे थे!' मुहब्बत ने खास तीखा तीर चलाया था। मैंने झेंप मिटाने को कहा—जी, मैं दहकानी न सही; सारी महफिल ही सिर धुन रही थी।

'शुक्रिया, तो इस बात के हुज़ूर एक मातबर गवाह हैं।'

राजा साहब ने नकली गम्भीरता से कहा—वे सब सिर धुननेवाले सही-सलामत तो हैं न?

मुहब्बत ने कहा—एक वे मुंशीजी तो कल ही मर रहे थे।

राजा साहब पचास को पार कर गए थे। दुबले-पतले, कोई ढाई माशे के लखनवी आदमी थे। रंग पक्का, खोपड़ी गंजी, आंखों में मोटे शीशे का चश्मा, खाने-पीने और कपड़े-लत्तों से असावधान, मगर पक्के पियक्कड़। धुन के पक्के और सनकी।

दो रानियां ज़िन्दा हाज़िर थीं। एक सही मानों में धर्मपत्नी। जो सिर्फ

महलों में धरी रहती थीं। दूसरी तीखी समालोचक, विदुषी और डिक्टेटर।

मेरे राजा साहब से अनेक नाते थे। मैं उनका चिकित्सक तो था ही, मित्र भी था! वे मेरा विश्वास करते थे, दिल खोलकर बात करते थे। अनेक बार मैंने उनके प्राणों की रक्षा की थी, प्रतिष्ठा की थी। बहुत बार राजा साहब के आंसू मैंने देखे थे। मेरे सम्मुख राजा साहब वास्तव में एक निरीह व्यक्ति थे। राजा नहीं।

साल में दो-तीन दौरे मेरे रियासत में लग ही जाते थे। परन्तु इस बार व्यस्त रहने से कुछ देर में जाना हुआ। जाकर देखा, सर्दी से बचने के लिए राजा साहब रज़ाई में लिपटे हुए अंगीठी ताप रहे हैं—पास बैठी है मुहब्बत। वह मुहब्बत नहीं जो पिछले साल देखी थी—हुजूर कहकर पुकारनेवाली, झुककर सलाम करनेवाली। यह तो रानी की गुण-गरिमा से पूर्ण स्त्री थी। उसकी आंखों में गर्व और बातचीत में रानीपन की साफ झलक थी। मैं सुन चुका था कि महाराज के आदेश से कुंवर साहबान उसकी ताज़ीम करते हैं, राजवधू उसे अभ्युन्थान देती हैं। सुनकर ही मेरा मन विद्रोह से सुलग उठा। और जब मेरे वहां पहुंचने पर उसने मुझे ताज़ीम नहीं दी, उल्टे मुझीसे ताज़ीम चाही, तो मैंने उस औरत की तरफ से एकबारगी ही मूंह फेर लिया। मैं उसकी ओर बिना ही देखे राजा साहब से बातें करने लगा।

राजा साहब ने देखा। देखकर मुस्कराए। मुस्कराकर कहा—पहचाना नहीं?

मैंने आश्चर्य का नाट्य करते हुए कहा—नहीं, महाराज!

'मुहब्बत है,' सरल आंखों से उसकी ओर ताकते हुए उन्होंने कहा।

मैंने कहा—ओफ, बिल्कुल ही सूखकर खुश्क हो गई!

राजा साहब ने आंखें मेरी ओर उठाकर कहा—कौन?

'मुहब्बत, महाराज!' मैंने थोड़े दर्द से कहा। महाराज एकदम खिलखिलाकर हंस पड़े, बोले—इतनी मोटी तो हो रही है। आप कहते हैं सूख गई?

मैंने आंखें नीची करके रूखे स्वर में कहा—महाराज शायद खातून का ज़िक्र कर रहे हैं? परन्तु मैंने महाराज से मुहब्बत की बाबत अर्ज़ की।

'खूब हैं आप!' राजा साहब हंसकर बोले—मुहब्बत को मुहब्बत से जुदा करते हैं आप। खैर, अब यह देखिए कि इनका मिज़ाज कैसा है? इस बार तो

मैंने इन्हींके लिए आपको कष्ट दिया है।

अपनी अप्रसन्नता को मैंने छिपाया नहीं। थोड़ा रूखे स्वर में मैंने कहा—महाराज ने इतनी-सी बात के लिए नाहक तकलीफ की। रियासत के डाक्टर और नर्स क्या इतना भी नहीं कर सकते ?

मेरा जवाब राजा साहब को पसन्द नहीं आया। उनका चेहरा उदास हो गया, परन्तु प्रथम इसके वे कुछ कहें, मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने मुहब्बत से कहा—दूसरे कमरे में चलो, देखूं क्या बात है।

स्पष्ट था कि वह मेरी भावना को ताड़ गई। उसकी त्योरियों में बल पड़ गए। जब मैं उसकी परीक्षा कर चुका और चलने लगा तो उसने कहा—कड़वी दवा मत दीजिए। नहीं खा सकूंगी।

मैंने उठकर देखा। मेरी आंखें जलने लगीं।

मैंने कहा—क्यों ?

'मैं कड़वी दवा नहीं खा सकूंगी।'

मैंने जवाब नहीं दिया। गहरी विरक्ति और कुत्सा से मेरा मन भर गया।

'आप स्थानीय डाक्टर को ज़रा बुला लीजिए, मैं उन्हें समझा दूंगा। इनकी चिकित्सा-व्यवस्था हो जाएगी।'

और इस प्रकार डाक्टर साहब का चरण अन्तःपुर में पड़ा। नवयुवक थे। गौर वर्ण था, गोल मुंह और गोल ही आंखें। हर समय हंसकर बातें करना उनका स्वभाव था। जब मेरे ही सामने उन्होंने उस औरत को 'हुज़ूर' कहकर पुकारा तो उस औरत ने साभिप्राय मेरी ओर ताका। उस ताकने का अभिप्राय यह था : देखा, इस तरह बोलना चाहिए।

रियासती व्यवस्था बड़ी विचित्र होती है। अन्तःपुर के उस द्वार पर रात-दिन संगीन का पहरा रहता था। कोई पक्षी भी वहां पर नहीं मार सकता था। परन्तु डाक्टर के लिए रोक न थी। डाक्टर को देखते ही संतरी बन्दूक नीचे करके द्वार छोड़ हटकर खड़ा हो जाता था और डाक्टर एक मुस्कान उसपर फेंककर ऊपर चढ़ जाते। कक्ष में अकेली मुहब्बत और राजा साहब। तबीयत दोनों की खराब।

सर्दी के दिन थे। राजा साहब सुबह ही से धूप तापने की तिमंज़िली छत

पर आरामकुर्सी पर जा पड़ते । वहीं वे पान कचरते रहते । तेल की मालिश होती रहती । कभी-कभी सो भी जाते । मुहब्बत बहुत कम ऊपर चढ़ती थी । टांगों में दर्द था । सीढ़ियां चढ़ नहीं सकती थी । राजा साहब प्रायः दिन-दिन-भर छत पर पड़े रहते और मुहब्बत दिन-दिनभर अपने कमरे में अकेली ।

डाक्टर नित्य आते । पहले देखते मुहब्बत को, फिर ऊपर जाकर राजा साहब को । नीचे उतरकर फिर मुहब्बत से बात करते । बात किस ढंग पर, किस मज़मून की होती थी, इसका तीसरा साक्षी था शारदीय वातावरण, एकांत एकाकी मिलन, वेश्या और वेश्या की पुत्री । राजा बूढ़े, शराबी, सनकी और रोगी तथा गैरहाज़िर । डाक्टर को प्रवेश की स्वतन्त्रता, एकान्त सहवास की स्वतन्त्रता, और चाहे जब तक भीतर रहने की स्वतन्त्रता; एक चमड़े का हैंड-बैग हाथ में ले जाने और ले आने की स्वतन्त्रता । इन सबने घुलमिलकर उस पेशेपन्थी डाक्टर और उस पेशेवर वेश्या को एकसूत्र में बांध दिया । पहले प्रेमोदय हुआ, फिर प्रेमालाप ।

अब दोनों एक थे, पाप और नमकहरामी से भरपूर । निरीह मालिक से विश्वासघात करने को तैयार । कुछ दिन संकेतवार्ता चली । फिर एक दिन खुल-कर बातचीत हुई ।

डाक्टर ने कहा—मुहब्बत, इस तरह कब तक चलेगा ?

'यही मैं कहती हूं ।'

'तब ?'

'चलो, कहीं भाग चलें ।'

एक दिन अवसर पाकर मुहब्बत ने कहा—एक बात कहती हूं ।

'कहो ।'

'किसीसे कहोगे तो नहीं ?'

'नहीं ।'

'जिन्दा न रहने पाओगे ।'

'तो साथ ही मरेंगे । तुम बात कहो ।'

'वह सेफ देख रहे हो ?'

'देख रहा हूं ।'

'उसमें नोटों के गट्ठर भरे पड़े हैं।'

'अच्छा, तुमने देखा ?'

'देखा।'

'लेकिन खज़ाना तो नीचे पहरे में है।'

'यह महाराज का प्राइवेट पर्स है।'

'अच्छा, कितना रुपया है ?'

'कल गिना था, पांच लाख के नोट हैं।'

'सच ?'

'एक मोतियों की माला, कहते थे एक लाख की है।'

'अच्छा !'

'एक हीरे की कलगी है, डेढ़ लाख की है।'

'अरे !'

'और मुट्ठीभर जवाहर-हीरे-मोती हैं।'

'भई राजा का घर है, राजा के घर में मोतियों का अकाल ?'

'सुनो।'

'क्या ?'

'मैं वह सेफ खोल सकती हूं।'

'अरे ! किस तरह ?'

'एक तरकीब है। मुझे मालूम है।' उसने इधर-उधर देखा। डाक्टर ने कहा—क्या चाबी हथिया ली है ?

'नहीं, हरूफ उलट-पुलट होते हैं। कल राजा साहब ने मुझे बताए।'

डाक्टर ने अपने को संयत करके कहा :

'मुहब्बत, तुम जानती हो, मैं तुम्हें कितना चाहता हूं ?'

'खूब जानती हूं !' मुहब्बत ने मुस्कराकर कहा।

'फिर यह दौलत अपनी होनी चाहिए। अभी उम्र बहुत काटनी है और तुम तो बिल्कुल नौजवान हो। इस मुर्दे राजा के पास जैसे कब्र में दफना दी गई। इस दौलत को हथियाकर तो तुम रानी बन सकती हो, सच्ची रानी !'

'ऐसा करना खतरे से खाली नहीं है।'

'लेकिन इस दौलत को यहीं छोड़ जाओगी ?'

'तो क्या जेल काटूंगी ?'

'जेल बेवकूफ काटते हैं।'

'मैं पक्की बेवकूफ हूं।'

'लेकिन मैं ज़रा भी बेवकूफ नहीं।'

'तो तुम यह दौलत लूट लेना चाहते हो ?'

'पहले एक बात बताओ।'

'क्या ?'

'इस सेफ की बात किसीको मालूम है ?'

'सेफ को तो सभीने देखा है।'

'नहीं। रकम ?'

'न। किसीको नहीं मालूम।'

'क्या कुंवर साहब को भी नहीं ?'

'नहीं। उन्हींसे छिपाकर तो यह रकम और जवाहरात रखे गए हैं।'

'किसलिए ?'

'हविश। जवाहरात तो सब रानी साहबा के हैं।'

'उन्हें मालूम है ?'

'नहीं।

'ठीक कहती हो ?'

'परसों स्वयं राजा साहब ने कहा था। इस रकम की कभी किसीके सामने चर्चा भी न करना।'

'और तुम्हें उन्होंने ताला खोलना, बन्द करना भी बता दिया ?'

'दो-एक बार देखा, मैं समझ गई।'

'क्या राजा जानता है कि तुम इसे खोल सकती हो ?'

'नहीं। मैंने कल ज्योंही मज़ाक से हाथ लगाया था, सेफ खुल गया।'

'तो यह हमारा-तुम्हारा भाग्य है, मुहब्बत, मेरे-तुम्हारे बीच ईमान है। मेरी गंगा, तुम्हारा कुरान।'

'कस्म खाओ।'

'खाई भई।'

'कल से चारपाई पर पड़ जाओ; मैं रोज़ आऊंगा, खाली बैग लेकर। और

जितना उसमें समा सकेगा भर ले जाऊंगा। राजा साहब कब ऊपर जाते हैं?'

'चाय-पानी पीकर नौ बजे।'

'मैं दस बजे आऊंगा।'

'लेकिन राजा यदि कभी सेफ खोले?'

'हमें सिर्फ एक हफ्ता लगेगा।'

'इसी हफ्ते में यदि बात खुल गई?'

डाक्टर की आंखों में चमक आई। उसने मुहब्बत का हाथ कसकर पकड़ा और कहा—एक हफ्ते में भी नहीं और उसके बाद भी नहीं। एक काम कर सकोगी?

'क्या?'

'चाय के साथ...' डाक्टर की ज़बान लड़खड़ाई। मुहब्बत ने घबराकर कहा—न भई, यह काम मुझसे न हो सकेगा।

'बेवकूफी मत करो, मैं डाक्टर हूं, अनाड़ी नहीं। शक-शुबहा किसीको न होगा। काम ऐसी सफाई से होगा।'

'अरे बाबा, फांसी पड़ेगी, फांसी!'

'क्या बातें करती हो, मुहब्बत! सिर्फ दो कतरे चाय में डाल दो। चाय तो तुम्हीं बनाती हो?'

'हां, परन्तु उससे क्या होगा? क्या यह ज़हर है?'

'ज़हर तो है लेकिन राजा इससे मरेंगे नहीं। सिर्फ बदहवास हो जाएंगे। उनका दिमाग फेल हो जाएगा।'

'इसके बाद?'

'इसके बाद हमारे लिए अवसर ही अवसर है।'

चतुर डाक्टर ने उस औरत को हिम्मत कायम करने का अवसर दिया और तेज़ी से चल दिया। मुहब्बत एकदम मसनद पर से उठ गई।

राजा साहब यों तो हमेशा ही किसी न किसी शाही बीमारी से मुब्तिला रहे थे। कभी सर्दी, कभी ज़ुकाम; कभी कुछ, कभी कुछ। मगर यह तो उनकी तन्दुरुस्ती के ही अन्तर्गत था। आज एकाएक उनकी तबीयत में परिवर्तन-सा लगा। वे ऊपर धूप में जाने लगे तो सीढ़ियों पर लड़खड़ाकर गिरकर उठे।

ऊपर जाकर आरामकुर्सी पर बदहवास-से पड़ गए।

डाक्टर आए। महाराज को बारीकी से देखा और कहा—रात ज़्यादा ड्रिंक किया गया प्रतीत होता है। आराम फर्माने से कल तक सब ठीक हो जाएगा। उन्होंने राजा साहब के लिए नुस्खा लिखा और भी हिदायतें लिखीं। राजा साहब ने जैसे नींद से जागकर कहा—मुहब्बत को भी देखते जाइए, कैसी है।

'देखता जाऊंगा, सरकार।'

'वे नीचे उतरे। आंखों ही में बातें हुईं। मुहब्बत ने कहा :

'हम मारे जाएंगे, डाक्टर साहब!'

'फिक्र मत करो, हिम्मत रखो।'

'लेकिन मैं यह काम नहीं कर सकती। आज यह दवा मैं नहीं दूंगी।'

'तो मैं कहूंगा कि मुहब्बत ने राजा साहब को जहर दिया है। जानती हो मैं डाक्टर हूं, चाहूं तो अभी आधे घण्टे में हथकड़ियां डलवा दूंगा!' डाक्टर की आंखों में प्रतिहिंसा व्यक्त हो उठी।

मुहब्बत ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम भी नहीं बचोगे डाक्टर; मैं कहूंगी तुमने ही जहर लाकर दिया था।

डाक्टर ने हंसकर कहा—ऐसा कहते ही यह साबित हो जाएगा कि तुमने जहर दिया। अब तुम्हें यह साबित करना रह जाएगा कि डाक्टर ने दिया। वह तुम कैसे साबित करोगी?

मुहब्बत ने आंखों में आंसू भरकर कहा—डाक्टर, रहम करो! मैं बदनसीब औरत हूं।

'तो मैं जो कहता हूं करो। वह सेफ खोलो, जितनी रकम इस बैग में आती है, भर दो। मैं तब तक बाहर देखता हूं कोई आता तो नहीं। मगर पहले सारी ज्वैलरी बैग में रख दो।' डाक्टर ने बाहर की ओर मुंह फेरा, और मुहब्बत ने कांपते हाथों से सेफ को छुआ। लाखों रुपयों की ज्वैलरी और नोट डाक्टर के बैग में भरकर जब मुहब्बत ने डाक्टर के हाथ में बैग दिया तो सूखे मुंह से उसकी ओर देखकर कहा—और आप डाक्टर, मेरे साथ दगा न करेंगे, सब हज़म न कर जाएंगे, इसीका क्या भरोसा है?

मुंह पर एक कुटिल हास्य लाकर डाक्टर ने कहा—इत्मीनान रखो मुहब्बत, हमारी-तुम्हारी मुहब्बत इसके बीच में हैं।—एक प्रकार से बैग उसने झपट

लिया। मुहब्बत ने कहा—और गंगा और कुरान ?

'हां, हां वह भी। लो आज की खुराक,' डाक्टर ने एक छोटी-सी पुड़िया उसकी ठण्डी बर्फ-सी उंगलियों में पकड़ा दी। डाक्टर चला गया और मुहब्बत मूर्छित-सी होकर ज़मीन पर गिर गई।

राजा साहब की हालत बहुत बदतर हो गई। उनमें सर्वथा ज्ञान का लोप हो गया। बदहवासी में वे अंटशंट बकने लगे। होंठ उनके काले और आंखें लाल हो गईं। अपने दोनों हाथों की उंगलियों से वे कुछ ताने-बाने-से बुनने लगे। खाना-पीना समाप्त हो गया। गर्म पानी में घोलकर मीठी शराब देने से उन्हें कुछ चैतन्य आता था। मुहब्बत और डाक्टर ने राजा साहब की सेवा में दिन-रात एक कर दिया। रियासतभर में मुहब्बत एक आदर्श सती स्त्री की भांति प्रशंसित हो गई—कलिकाल में मुसलमान वेश्या होकर ऐसी सेवा-परायण स्त्री भला कहां मिल सकती है ? और डाक्टर ने तो सत्ययुग का उदाहरण उपस्थित कर दिया।

रात-रातभर जब सब नौकर-चाकर, परिजन थक जाते, ये दोनों ही राजा की सेवा में जागते रहते—उन्हें निर्विघ्न-संदेहरहित मृत्यु के द्वार तक अत्यन्त सफलता से पहुंचाते जाते थे।

सेफ खाली हो चुका था। और अब मुमूर्ष रोगी के पास आंखों और इंगितों में इन दोनों व्यक्तियों की जो बातचीत होती उसका मूल विषय होता वह धन जो चुरा लिया गया था और सब डाक्टर के पेट में पहुंच चुका था। मुहब्बत घबराकर सूखे होंठों से कहती—देखना, दगा न करना, तुम्हारे विश्वास पर यह सब किया है। डाक्टर आंखों में ही जवाब देते—इत्मीनान रखो, सब ठीक हो जाएगा।

परन्तु राजा साहब की अवस्था जब सांघातिक रूप धारण कर गई तो डाक्टर ने कुंवर साहब से कहा—अब तो मेरे बूते की बात रही नहीं है, किसी बड़े डाक्टर की सहायता की आवश्यकता है। कल न जाने क्या हो जाए तो मेरा मुंह काला होगा। मैं तो जो सेवा करनी थी, कर चुका।

भला डाक्टर की सेवा में संदेह किसे था !

राजा साहब को सदर शहर के अस्पताल में ले जाया गया। वहां अनेक धुरंधर डाक्टर उनकी देखभाल करने लगे। परन्तु रोग का कारण किसीकी समझ

में नहीं आ रहा था। रोग बढ़ता जा रहा था। और अब राजा साहब की किसी भी क्षण बेहोशी की हालत में मृत्यु हो सकती थी। काशी की पण्डित-मण्डली शिव मन्दिर में तवार्णव के सम्पुट से मृत्यंजय मन्त्र का पाठ कर रही थी। देश-देश के ज्योतिषी क्षण-क्षण पर क्रूर ग्रहों की गतिविधि देख रहे थे। गतिविधि ठीक-ठीक नहीं देखी जा सकी थी तो केवल डाक्टर और मुहब्बत की, जो इस निर्मम हत्या, विश्वासघात और उनके प्रधान अभियुक्त थे।

डाक्टर हताश हुए तो एक दिन पश्चात् कुंवर साहब ने मेरा ध्यान किया। ज़रा-सी ही बात पर राजा साहब मुझे बुला भेजते थे। अब इतना बड़ा काण्ड हो गया और मुझे नहीं बुलाया गया। कुंवर साहब के प्रस्ताव का डाक्टर और मुहब्बत दोनों ने ही विरोध किया। डाक्टर ने कहा—इतने बड़े चिकित्सक हार बैठे, वे आकर अब क्या करेंगे ?—कुंवर साहब ने कहा—मानो कुछ न करेंगे। होनहार होकर रहेगी। पर अपने मित्र को देख तो लेंगे।—मुझे सूचना भेज दी गई।

आकर देखा, अभागा राजा बिछौने पर असहायावस्था में पड़ा है। आंखें आधी बन्द। आक्सीजन गैस से श्वास लेता हुआ दोनों हाथों की उंगलियां जैसे किसी सूत के धागे को लपेट रही थीं। आंखों का रंग लाल अंगारा, टेम्प्रेचर बिल्कुल नहीं, गुर्दों का काम बन्द, दिल की धड़कन किसी भी क्षण धोखा देने-वाली।

सब कुछ देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। और जब मैंने सुना कि पूरे ग्यारह दिन से ऐसा है, तब तो मेरा मन संदेह और आशंकाओं से भर गया।

हर दूसरे घण्टे पर डाक्टर रोगी को संभाल रहे थे। मेरी अवाई सुनते ही वे दौड़े आए और शुरू से आखिर तक रोग का इतिहास सुनाने लगे। एक-दो सम्बन्धी राजा उपस्थित थे। बहुएं, पुत्र, परिजन सभी थे। डाक्टर रोग-विवरण सुना रहा था। बीच-बीच में अनावश्यक हास्य उनके होंठों पर आ जाता था। मेरा सन्देह निश्चय में बदल रहा था। बीच में रोककर मैंने पूछा—ठहरिए, टेम्प्रेचर-चार्ट कहां है, देखूं ?

डाक्टर का मुंह सूख गया। उसने कहा—टेम्प्रेचर-चार्ट तो हमने बनाया ही नहीं।

'क्यों ?' मैंने खूब कड़ाई से प्रश्न किया।

डाक्टर ने हकलाते हुए कहा—टेम्प्रेचर राइज़ ही नहीं हुआ।

'तो बिना ही टेम्प्रेचर के ये डिलीरियम के सांघातिक आसार उत्पन्न हो गए ?'

'जी हां, जी हां,' डाक्टर ने थूक सटककर हंसने की कोशिश की।

मैंने कहा—और आपने इधर ध्यान नहीं दिया ?

'दिया साहब, मैंने······'

मैं संयत न रह सका। गरजकर मैंने कहा—डाक्टर, यह सरासर खून का केस है, मुझे मुनासिब है कि मैं पुलिस को इत्तला दूं।—मैं तेज़ी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मुहब्बत चीख मारकर बेहोश हो गई। डाक्टर मुर्दे की भांति ज़र्द पड़ गया। जूड़ीग्रस्त पुरुष की भांति वह कांपने लगा।

इसी समय राजा ने आंखें खोलीं। उनकी वह दृष्टि स्वाभाविक थी। मैं लपककर उनके पास गया। दोनों हाथों में उनका हाथ लेकर कहा—महाराज, साहस मत खोइए, आपकी जो इच्छा हो, कहिए। उन्होंने इधर-उधर आंखें घुमाईं। क्षीण स्वर में कहा—बड़े······

तुरन्त ही बड़े कुंवर ने उनकी गोद में सिर डाल दिया। राजा की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। मैंने नाड़ी देखी, दिल की धड़कन देखी। भीड़ को तुरन्त हटाया। राजा साहब ने मुंह खोल दिया। मैंने कहा—गंगाजल दीजिए। दो तुलसीदल डालकर एक घूंट गंगाजल उनके मुंह में डाल दिया गया। जल कण्ठ में गया और प्राण नश्वर शरीर से पृथक् हुआ।

उस रियासत में मेरा काम और मेरे सम्बन्ध सब समाप्त हो चुके थे। फिर भी जिस दिन नये राजा को पगड़ी बंधी मुझे हाज़िर होना पड़ा। नये राजा नवयुवक, भावुक और दुबले-पतले लजीले-से थे। सब कृत्य समाप्त होने पर जब मैं एकान्त में मिला तो बातें हुईं। मैंने कहा :

'उस मामले में आपने कुछ किया ?'

'क्या आपको कुछ मालूम था ?'

'मैं निश्चित रूप से सिद्ध कर सकता हूं कि यह अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया गया खून था।'

'परन्तु किसी भी डाक्टर ने ऐसा नहीं कहा।'

'कैसे कहा जा सकता है ! खूनी डाक्टर था। सब कार्य बहुत वैज्ञानिक रीति से हुआ। संदेह की कोई भी गुंजाइश न थी। मुझे तो केवल एक सूत्र मिल

गया, नहीं तो मैं भी नहीं जान सकता।'

'पर, अब तो उन्होंने सब कुछ बता दिया है।' उनका मतलब मुहब्बत से था।'

'सब कुछ?'

'जी, डाके का हाल आप सुन चुके होंगे।'

'नहीं तो, डाका कैसा?'

इसपर नये राजा ने सारा विवरण बताया। मुहब्बत ने राई-रत्ती सब बता दिया था।

मैंने कहा—आपने मामला पुलिस में नहीं दिया?

'कैसे दे सकता था। वे वेश्या अवश्य हैं, पर मेरे पिता ने उन्हें मेरी माता के स्थान पर रखा था। उनके विरुद्ध कुछ भी करना मेरे लिए अशक्य था। यह मेरे खानदान की प्रतिष्ठा और मर्यादा का प्रश्न था।'

'किन्तु दस लाख का डाका और राजपुरुष की जान?' मैंने धीरे से कहा।

युवक राजा ने आंखों की कोर से आंसू पोंछे। बहुत देर हम चुप बैठे रहे। फिर मैंने कहा—रुपया मिलने की कुछ उम्मीद है?

'नहीं।'

'सब क्या डाक्टर लूट ले गया? मुहब्बत को कुछ नहीं दिया?'

'नहीं।'

'डाक्टर कहां है?'

'छुट्टी ली है, शायद तबादला भी करा रहा है।'

'और मुहब्बत?'

'वे यहीं हैं।'

'क्या मैं मिल सकता हूं?'

नये राजा ने देखकर कहा—क्षमा कीजिए। वे बाहर नहीं आती हैं।—युवक राजा की शालीनता अद्भुत थी।

मैंने कहा—राजा मर गया, आप चिरंजीव रहें।

और मैं उठकर चला आया।

अकस्मात्

प्रेम राजपरिवार की मर्यादा को स्वीकार नहीं करता। फिर राजकुमारी का प्रेम ही क्यों राजकुमारों तक सीमित रहे। इस कहानी में एक राजपुत्री की गुप्त प्रेम की ऐसी ही झांकी प्रस्तुत की गई है, जो अत्यन्त सजीव हो उठी है।

दो व्यक्ति सरपट घोड़ा दौड़ाए उड़े चले जाते थे। भयानक दोपहरी, हवा गर्म और धरती ऊबड़-खाबड़, पर सवारों को इसकी चिन्ता न थी। घोड़े फेन उगल रहे थे, सवार भी पसीने से तर थे। दोनों के हाथों में बढ़िया मार्टिन बंदूकें थीं, और दोनों ही मौन थे। चारों तरफ सघन झाड़ी थी, सामने विकट वन, घोड़ों के लिए ठीक रास्ता न था।

सवार ने घोड़ों की रास खींचते हुए कहा—ठहरो राजकुमारी, वह सूअर आगे नहीं गया है, यहीं किसी झाड़ी में छिपा है।

'किस झाड़ी में?' राजकुमारी ने भौंहें मरोड़कर और होंठ चबाकर कहा। उसका मुंह लाल अंगारा हो रहा था, हाथ बन्दूक के घोड़े पर था। वह घोड़े की रास अस्वाभाविक रीति से खींचकर इधर-उधर देखने लगी। घोड़ा वहीं रुककर खूंद करने लगा।

'उस बदनसीब की जान अब बख्श दो कुमारी, वह कायर की भांति तुम्हारे आगे से भाग गया है। वह देखो, सामने वृक्षों की झुरमुट है, पानी भी निकट ही कहीं होगा, वहां चलकर कुछ विश्राम करो, धूप में झुलसकर प्राण निकले पड़ते हैं।' साथी ने विनम्र स्वर में निकट आकर कहा।

'वह कायर की भांति भाग गया है, इसलिए उसे छोड़ देती हूं, परन्तु तुम्हें न छोड़ती।' राजकुमारी ने एक कटाक्ष साथी पर किया, और हंस पड़ी।

दोनों ही शिकारी उन छायादार वृक्षों की ओर बढ़े। दस-पन्द्रह आम-जामुन के घने पेड़ थे, एक पुराना कुआं भी था। वह कभी पुराना बाग रहा होगा, उसकी पक्की चहारदीवारी के ध्वंस यत्र-तत्र दिखाई पड़ते थे। वहां जाकर युवक उतर पड़ा, और सहारा देकर कुमारी को भी उतारा। एक सघन वृक्ष

के नीचे दोनों बैठ गए, घोड़े बागडोर से बांध दिए गए। वे हरी-हरी घास चरने लगे।

राजकुमारी की अवस्था अठारह वर्ष की थी। उसका रंग तपाए हुए स्वर्ण की भांति था। उसके उज्ज्वल दांत मोती की आभा को मात करते थे। बड़ी-बड़ी पानीदार आंखों में आनन्द, मस्ती और गौरव का समुद्र लहरा रहा था। प्रशस्त ललाट उसे राजनंदिनी साबित कर रहा था। फूले हुए सरस होंठ और गढ़ेदार गोल ठोड़ी उसकी दृढ़चित्तता का परिचय दे रही थी। उसका शरीर पुरुष की भांति बलिष्ठ, किन्तु अत्यन्त सुघड़ और वक्षःस्थल लोहे के समान पुष्ट था। वह अंग्रेज़ी काट के बहुमूल्य, किन्तु सादे शिकारी मर्दाने वस्त्र पहने थी। ब्रिचेज़ के ऊपर चुस्त जाकेट और उसपर शिकारी कोट, जिसकी जेबों में कारतूसें भरी थीं, उसके शरीर की आभा को अलौकिक कर रहा था। वह कीमती रेशम की मर्दाने कट की कमीज़ पहने थी, और उसपर मैच करती हुई टाई फहरा रही थी। सिर पर अंग्रेज़ी टोपी थी। उसके बाल भी अंग्रेज़ी कट के थे। पैरों में फुलबूट कसा था, जिसमें चांदी के सुन्दर कांटे लगे थे।

बंदूक और कोट को एक तरफ लापरवाही से फेंककर वह वृक्ष के नीचे फुर्ती से लेट गई। वह निस्संदेह बहुत ही थक गई थी, धूप और भूख-प्यास से वह बेचैन हो गई थी। उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ था, और जोर से सांस लेने से उसके नथुने फूल रहे थे, तथा छाती धौंकनी की भांति उठ-बैठ रही थी। उसने चिल्लाकर कहा—कैप्टन, प्यास के मारे प्राण निकलते हैं, कुछ खिलाओ-पिलाओ। युवक इसी खटपट में था। वह घोड़े के चारजामे से जल-पान की सामग्री, जल और दूध का थरमस निकाल रहा था। उसने हंसकर कहा—अभी लाया कुमारी!

उसने सब सामग्री उसके पास लाकर सजा दी। राजकुमारी ने अस्त-व्यस्त रीति से उसे चट करना आरंभ कर दिया। यह देखकर युवक ने हंसकर कहा—आप तो भूखी बाघिन की भांति खा रही है राजकुमारी!

'और तुम क्या समझते हो—मैं चिऊंटी की भांति खाऊंगी? मैं भूखी बाघिन तो हूं ही।' वह फिर हंस दी। हंसते-हंसते वह लोट गई। युवक उस अद्भुत बाला को देखकर किसी सोच में डूब गया। कोई वेदना उसके हृदय में उठी। एक ठंडी सांस लेकर उसने कुमारी की ओर निराश दृष्टि से देखा, और

कहा—कुमारी, यह हमारा अन्तिम शिकार है, क्यों न ?

'क्यों ? अन्तिम तो अन्त समय में ही होगा।' वह फिर बड़े ज़ोर से हंस दी। युवक की वेदना बढ़ गई। वह चुपचाप कुमारी की ओर देखने लगा। उसके होंठ कांप रहे थे, और आंखों में वही निराशा थी। कुमारी झपटकर उठी, युवक का चुम्बन किया, और फिर हंसते-हंसते लोट गई। युवक ने आगे बढ़कर उसका हाथ चूम लिया।

वह राजमहल के अपने सुसज्जित विशाल कमरे में खड़ी वही अपनी प्रिय मर्दानी पोशाक पहन रही थी। दो दासियां उसकी सहायता कर रही थीं। दो-तीन दौड़-धूप कर रही थीं। वह बीच-बीच में सबसे हंसी करती जाती थी। कभी-कभी एक-आध घूंसा किसीकी सुस्ती देखकर जड़ देती थी। दासी घूंसा खाकर हंसती, झुककर सलाम झुकाती, और दौड़कर आदेश पालन करती थी। यह देख कुमारी खिलखिलाकर हंस रही थी।

दिन ढल चुका था और वह जल्दी में थी। रह-रहकर अपनी कलाई की घड़ी देखती जाती थी। उसकी टाई की गांठ ठीक न बैठती थी, वह गुस्सा हो रही थी।

राजमाता ने सहसा कमरे में प्रवेश करके कहा—यह कहां की तैयारी हो रही है बेटी ?—राजकुमारी हंस पड़ी, उसने कहा—मां, आज बहुत सो गई, बदन सुस्त हो रहा है, ज़रा ड्राइव करूंगी, तब कहीं फुर्ती आएगी।—वह टाई की गांठ बांधने में सफल नहीं हो रही थी। उसने झुंझलाकर दासी को फिर घूंसा जड़ दिया, और हंस पड़ी। दासी भी हंस दी। राजमाता ने कहा—साथ में कौन जा रहा है ?

'कैप्टन योगेन्द्र हैं, क्यों ?' क्षणभर को उसकी उंगलियों की गति रुकी, और उसकी आंखें भी चंचल हुईं। वह माता की ओर देख न सकी। उसने दासी से कहा—देखो, शोफर आ गया है ?

राजमाता ने फिर कहा—यह ठीक नहीं है बेटी, इस लिबास में तुम्हारा घूमना अब अनुचित है। अब तुम बच्चा नहीं हो। पद, मर्यादा और प्रतिष्ठा का तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। वे लोग आए हैं, क्या कहेंगे ? कैप्टन······।

राजकुमारी को मानो एक विषाद की भावना छू गई। परन्तु उसकी टाई की

गांठ ठीक हो चुकी थी। उसने दासी को धकेल दिया, और दौड़कर माता को आलिंगन कर चूम लिया। इसके बाद वह खिलखिलाकर हंस पड़ी, और हरिणी की भांति छलांगें भरती भाग गई।

राजमाता की बात मुंह ही में रह गई। अपनी परम दुलारी बेटी का यह अल्हड़ व्यवहार देख वह मुग्ध हो गई। उसके हृदय में बहुत-सी बातें उदय हुईं। उसने अपने दीर्घ वैधव्य के एक-एक दिन स्मरण किए। वह राजवैभव न था, जिसके बल पर महाराज की मृत्यु के बाद उसने अपना वैधव्य इतनी सरलता से भोगा; यही वह बेटी थी, जो इसकी इकलौती बेटी थी, जिसे महाराज बेटा कहा करते थे, बेटे की भांति जिसका लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा हुई। शिकार करने, निशाना लगाने, घुड़सवारी करने, तलवार और नेज़ा चलाने में, कुश्ती और कसरत में, मोटर चलाने में, वह राज्यभर में सर्वश्रेष्ठ थी। स्त्रियोचित गुण और माधुर्य उसमें ईश्वरदत्त थे। चित्रकला में वह अन्तर्राष्ट्रीय पदक प्राप्त कर चुकी थी। गायन और नृत्य में उसकी मिसाल मिलनी कठिन थी। हास्य, विनोद, उल्लास उसका प्रतिक्षण का धन्धा था। वेदना और निराशा से उसका परिचय था या नहीं, नहीं कहा जा सकता।

राजमाता क्षणभर खड़ी कुछ सोचती रही, फिर उसने दासी को आज्ञा दी—कैप्टन योगेन्द्र बाहर खड़े हैं। ज़रा उन्हें यहां हाज़िर तो करो।

कैप्टन योगेन्द्र ने कुमारी को सीढ़ियां पार करते देखा, और मोटर का दरवाज़ा खोलकर खड़े हो गए। उनकी अवस्था बाईस वर्ष के लगभग होगी। वे चुस्ती फौजी पोशाक पहने थे। उनका रंग अत्यन्त गोरा, बदन छरहरा, रेखें पतली, गठन सुन्दर और खड़े होने की छवि गौरवपूर्ण थी। वे राजवंश से ही सम्बन्ध रखते थे। वे कुमारी के बाडी-गार्ड के कैप्टन और अस्त्र-संचालन के शिक्षक थे। कुमारी आई। उसने कैप्टन की ओर देखकर मुस्करा दिया। कैप्टन ने अदब से सिर झुकाया। राजकुमारी ने कहा—मैं स्वयं ड्राइव करूंगी। कैप्टन, तुम मेरे पास बैठना। इसके बाद उसने पुकारा—शोफर!

शोफर ने दौड़कर कहा—हुज़ूर!

इसी बीच सिपाही ने कैप्टन के निकट आकर कहा—सरकार को श्रीमती महारानीजी याद फर्मा रही हैं।

राजकुमारी ने सुना, चमकी। उसके हाथ मोटर के व्हील पर नाच रहे थे,

उसकी मुस्कान अस्त हुई। कैप्टन ने झुककर कुमारी को सलाम किया, दो कदम पीछे हटा, और तेजी से महल में घुस गया।

कुछ देर कुमारी ने प्रतीक्षा की। इसके बाद उसने मोटर को तीर की भांति छोड़ दिया।

'योगेन्द्र, मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। हमारे कुल की लाज तुम्हारे हाथ में है। मैं तुमसे कड़ाई नहीं कर सकती। तुम्हारी माता मेरी सगी है, तुम-पर भी महाराज का पुत्रवत् स्नेह रहा है, मेरा भी तुमपर वही भाव है। अब तुम हमारी इज्जत की रक्षा करो।' महारानी की आंखों में आंसू आ गए।

योगेन्द्र खड़ा था। वह घुटनों के बल रानी के चरणों में बैठ गया। उसने कातर स्वर से कहा—माता, मैं क्षमा मांगने का अधिकारी नहीं ?

'क्षमा से क्या लाभ होगा ? यदि यह बात प्रकट हो गई, तो कुमारी की सगाई लौट आएगी। फिर हम कहीं मुंह दिखाने योग्य न रहेंगी। तुम्हें त्याग करना होगा योगेन्द्र, मैं तुम्हें पचास लाख रुपये दूंगी। तुम अभी राज त्याग कर यूरोप चले जाओ। अभी, मैं तुम्हें एक घंटे का अवसर भी नहीं देना चाहती।' रानी के मुख पर कठोरता छा रही थी।

योगेन्द्र ने अश्रुपूर्ण लोचन हो कहा—माता, दया करो, तनिक अवसर दो, केवल कुछ घण्टे।

'नहीं, यदि तुम मुझे बल-प्रयोग करने पर विवश करोगे, तो तुम्हीं उसके लिए जिम्मेदार हो। मैं रानी की भांति नहीं, अपनी पुत्री की माता की भांति कहती हूं, तुम अभी राज्य त्याग दो। सब प्रबन्ध यात्रा का प्रस्तुत है, जहाज कल संध्या को पांच बजे छूटेगा, तुम चार बजे बम्बई पहुंच जाओगे। तुम्हारी सीट रिजर्व है। सब आवश्यक सामग्री तैयार है।'

योगेन्द्र क्षणभर सोचने लगा। वह उठकर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे वह तनकर सीधा खड़ा हो गया। उसने कहा—महारानी, मैं आपकी आज्ञा पालन नहीं कर सकता। आप मुझपर राजशक्ति का उपयोग कीजिए। मैं मृत्यु का आलिंगन करने को प्रस्तुत हूं।—वह उत्तेजित हो रहा था।

राजमाता ने संयत स्वर में कहा—यह तो ठीक है, मैं तुम्हें सब भांति का दंड दे सकती हूं। तुम्हारी चुपचाप हत्या भी की जा सकती है। परंतु तुम क्या

राजकुमारी की प्रतिष्ठा की तनिक भी परवाह नहीं करते ? ऐसा करने से तो राजकुमारी के नाम पर धब्बा लगेगा ।

योगेन्द्र ने दीन भाव से सिर नीचा कर लिया । उसने दोनों हाथों से मुंह ढांप लिया । उंगलियों के बीच से उसके आंसू बह निकले । उसने कहा—माता, मैं कुमारी को जीते जी नहीं छोड़ सकता । आप मुझे चुपचाप मरवा डालिए ।

'मैंने तुमसे कहा कि महारानी की भांति नहीं, निरीह कन्या की माता की हैसियत से तुमसे मैं प्रार्थना करती हूं ।' उनके होठ कांपे ।

योगेन्द्र चुपचाप खड़ा रहा । महारानी ने कहा—योगेन्द्र, मैं विधवा हूं, अभागिनी विधवा मां की बेटी की आबरू बचाओ ।

योगेन्द्र तड़प उठा । वह उठ खड़ा हुआ । क्षणभर वह चुपचाप खड़ा रहा । उसने कहा—बहुत अच्छा ! मां, मुझे आशीर्वाद दो, मैं जा रहा हूं ।

'जाओ पुत्र, ईश्वर तुम्हारा मंगल करेगा, तुमने राजवंश की प्रतिष्ठा बचाई है ।'

'क्या मैं माता से मिल लूं ?'

'योगेन्द्र, तुम्हें सीधे जाना है, ट्रेन का समय हो रहा है, क्या वह तुम्हारे लिए खड़ी रहेगी ? तुम्हारा डब्बा तैयार है ।'

'तब मैं सदैव को यह देश त्यागता हूं मां !'

'सदैव को, प्रतिज्ञा करो । वह सामने देवस्थान है, उधर मुंह करके ।' योगेन्द्र ने प्रतिज्ञा की । इसके बाद उसने घूमकर रानी से कहा—मां, मैं आपका दान न ले सकूंगा ।

'क्यों बेटे ?'

'मैंने कुमारी का प्रेम बेचा नहीं, बलि दिया है । कुमारी से कह देना ······अथवा जाने दीजिए । वे चाहे जो कुछ भी समझें ।' वह रानी की ओर देखकर मुस्करा दिया ।

रानी ने कुछ कहना चाहा, पर कह न सकी । योगेन्द्र चल दिया । वह आंखों में आंसू भरे खड़ी रही ।

उसने आंधी की भांति महारानी के कमरे में प्रवेश किया । उसके जूते

कीचड़ में भरे थे, और कपड़ों पर उसके छींटे थे। उसके मुख पर पसीने की बूंदें झलझला रही थीं। वह सीधी महारानी के पास पहुंची। महारानी टेबिल पर बैठी कुछ आवश्यक काग़ज़ों की जांच कर रही थीं। कुमारी ने कहा—मां, आज बड़ी मौज रही, मोटर एक जगह कीचड़ में फंस गई। शोफर उसे न निकाल सका; पहिया स्लिप करने लगा। तब मैंने एक ही धक्के में उसे निकाला। कैप्टन कहां हैं मां? वे देखते, तो कहते कि हां!—उसने इधर-उधर देखा।

रानी की मुख-मुद्रा कठोर और दृढ़ थी। उसने कहा—मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं……

कुमारी ने माता का मुख अपने हाथों से बन्द कर दिया। वह शिशु की भांति उसकी गोद में बैठ गई, और गले में बांहें डालकर कहा—नहीं मां, आज्ञा न दो, जो कुछ कहना है, वैसे ही कहो।—कुमारी को आंखों में आंसू आ गए। वह रानी की मुख-मुद्रा से सशंकित हो रही थी, और कैप्टन की गैरहाज़िरी का मतलब समझने को व्यग्र थी।

प्राणों से प्यारी पुत्री के नेत्रों में आंसू देखकर महारानी विचलित हो गई। कुमारी की आंखों में आंसू कभी किसीने देखे ही न थे। महारानी ने कहा—बेटी, क्या मैं बहुत बड़ी बात कह गई?

उसने उसका मुंह चूमा, और स्निग्ध स्वर में कहा—बेटी, वे लोग आए हुए हैं, विवाह की बात पक्की हो गई है। तुझे इस प्रकार निश्शंक हो बाहर घूमना न चाहिए।

कुमारी ने जल्दी से कहा—किन्तु कैप्टन कहां है?

'वह आवश्यक राजकार्य के लिए कहीं गया है।'

'कहां?'

'बेटी, क्या राजकाज की सभी बातें तुझे जाननी चाहिए? तू सुशीला बेटी की भांति रह।'

'कैप्टन कब तक आएगा मां?'

'नहीं कहा जा सकता।' रानी ने रूखे स्वर में कहा। इसके साथ ही उसने कहा—अब तुझे घूमने की भी इतनी स्वतन्त्रता न मिलेगी, बिना मेरी अनुमति न जा सकेगी।

'मैं नहीं जाऊंगी मां!' कुमारी के होंठ कांपे। उसने हंसना चाहा पर

उसकी आंखों से आंसू ढरक गए। फिर भी वह मां को देखकर हंस दी। महारानी ने पुत्री को खींचकर छाती से लगाया—फिर उसने कहा—बेटी, तू सयानी है, सब कुछ समझती है, तू बेटी नहीं, बेटा है। महाराज ने सदैव तुझे बेटा समझा और माना। परन्तु वास्तव में तू बेटी तो है ही। मैं रानी, महारानी या जो कुछ भी होऊं, एक बेटी की मां हूं। ऐसी बेटी की, जिसके पिता नहीं हैं। इसलिए सब आगा-पीछा सोचना, अपने कुल-गौरव, प्रतिष्ठा, इज़्ज़त-आबरू का ख़याल रखना मेरा कर्तव्य है—और तेरा भी। यदि तेरे किसी काम से इस राजवंश का सिर नीचा हुआ, लोगों को उंगली उठाने का मौका मिला, तो बेटी यह वृद्धा विधवा मां तो जीवित ही मर गई! योगेन्द्र के लिए तेरे मन में क्या भाव है, यह मैं जानती हूं, पर बेटी, वह बात तो हो नहीं सकती। अनहोनी बातों को मन में न लाना ही अच्छा है। ऐसी दशा में योगेन्द्र से ऐसी घनिष्ठता से मिलना भी ठीक नहीं। उसके मन की बात भी मैं जानती हूं, परन्तु मर्यादा और कुल-गौरव प्रथम वस्तु है…!

कुमारी ने बीच ही में बात काटकर कहा—मां, तुम क्या चाहती हो? मैं वही करूंगी।

'यही तो चाहिए बेटी! योगेन्द्र को कुछ दिन के लिए बाहर भेजना आवश्यक था, इसीसे भेज दिया गया है। बाल-काल के सम्बन्ध सदा स्थिर नहीं रहते। नये जीवन में प्रवेश करो। रायगढ़ के राजकुमार सब भांति योग्य हैं, इसी वर्ष उन्हें गद्दी के अधिकार मिलनेवाले हैं, सब बातें तय हो गई हैं, आज वे लोग जा रहे हैं। आगामी मास में विवाह की तिथि निश्चित हो गई है। अब बेटी, वही करो, जिससे कुल-मर्यादा रहे।'

'मैं वही करूंगी मां!' कुमारी इतना कहकर माता की ओर देखकर हंस दी, और तेज़ी से कदम उठाकर चल दी। वह अपने कमरे में आ, द्वार बन्द करके, एक तकिया छाती के नीचे लगा कोच पर पड़ गई।

वह चुपचाप दिल भरकर रोई।

राजमहल में तिल धरने को जगह न थी। विवाह की बड़ी घूमधाम थी। द्वार पर पचासों हाथी, घोड़े, प्यादे इधर-उधर घूम रहे थे। बड़े-बड़े दरबारी इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। मैदान कनातों-छोलदारियों और डेरे-

तम्बुओं से भरा हुआ था। सैकड़ों प्रकार के लोग सैकड़ों कार्य कर रहे थे। सारा नगर सजावट से जगमगा रहा था। राज्य-भर के कर्मचारी वहां हाज़िर थे। प्रधान-मन्त्री और अन्य अमात्यगण अपने-अपने सुपुर्द कामों को यत्न से कर रहे थे। महल के भीतर प्रांगण में, महारानी भद्र महिलाओं से घिरी भांति-भांति की आज्ञाएं दे रही थीं। पल-पल पर संदेश आते थे—भांति-भांति के प्रश्न हो रहे थे। आज ही कुमारी का विवाह था।

संध्या हो चली थी। विवाह-मंडप सजाया जा रहा था। सौ वेदपाठी ब्राह्मण वहां बैठे वेदपाठ और मंगल-स्तवन कर रहे थे। चारों तरफ भांति-भांति के बाजे बज रहे थे। राजपुरोहित विवाह-सामग्री याद करके मांगते और संग्रह करते जाते थे। उनकी पांचों घी में थीं। सेवकगण बड़बड़ाते और काम करते जाते थे।

कुमारी अपने कमरे में अपनी सखियों से घिरी बैठी थी। उसका फूलों से शृंगार हो रहा था। उसका शरीर हल्दी चढ़ने से केले के पत्ते की भांति शोभित हो रहा था। आज वह लाज को समेट रही थी, पर वही चिरअभ्यस्त हास्य उसके होंठों पर था। वह हंसती थी अवश्य, पर उस हंसी में कुछ और ही बात थी। हंसते ही उसके होंठ संपुटित होकर कांप जाते थे, पर उसे लक्ष्य करनेवाला कोई न था। उसे कैप्टन का पत्र मिल गया था। उसने उसका उत्तर भी दे दिया था। योगेन्द्र ने केवल एक लाइन पत्र में लिखी थी :

'चिरविदा राजकुमारी !'

कुमारी ने भी एक पंक्ति में उत्तर दिया था :

'अभी नहीं, रायगढ़ में !'

कुमारी रायगढ़ जाने के सुख-स्वप्न देख रही थी। उसे ससुराल जाने की उतावली थी। उसके मन में जो कुछ था, उसे बलपूर्वक छिपा न सकने पर वह अकारण ही हंस देती थी। सखियां और दासियां इस हास्य पर उसे बनाकर कहतीं—यह ससुराल जाने की हंसी है।—कुमारियां कहतीं—सच ही तो।—इसके बाद वह भी हंसती थी, पर उस हंसी के बाद वह क्या करती थी, यह वहां कोई देख न पाता था।

विवाह हो गया। महारानी ने साठ गांवों का इलाका, दस हाथी, सौ घोड़े, पांच मोटर और बहुत-सा सामान दहेज में दिया। रायगढ़ की छोटी रियासत

के दिन फिर गए, वह तिगुनी हो गई। विदा की बारी आई। कुमारी रत्न-जड़े आभरणों और वस्त्रों से सुसज्जित चलने को तैयार हुई, तो महारानी ने रोकर उसे छाती से लगाया। कुमारी की आंखों में भी आंसू आ गए, पर वह हंस दी। रानी ने उसे छाती से लगाकर वर से कहा—कुमार, मैंने इसे बेटा समझने की चेष्टा की, पर यह बेटी ही निकली। यह सदा हंसती ही रही, पर हमें रुला चली। इसके बिना यह राजमहल शून्य हुआ। पर कुमार, तुम्हें इसका हाथ पकड़ाकर मैं निश्चित हूं। तुम पढ़े-लिखे हो, बुद्धिमान हो, राज्य-भार तुम्हारे ऊपर आनेवाला है, इसे और उसे संभालना। मैं समझूंगी, बेटी देकर बेटा पाया। मैंने तुम्हें कुछ नहीं दिया, सिर्फ बेटी दी है।—रानी की आंखों से आंसू टपक पड़े।

राजकुमार रानी के पैरों में झुके। उनकी आंखों में कृतज्ञता की बूंदें थीं, वे चेष्टा करके भी कुछ न बोल सके। महारानी ने फिर कुमारी से कहा—जाओ बेटी, अपने घर, सौभाग्यवती रहो; पर देखो चंचलता न करना, अकेले ड्राइव न करना, तुम आंधी की तरह मोटर चलाती हो। खबरदार रहना।

राजकुमारी ने एक बार माता से आंखें मिलाईं। उसके होंठों में हास्य झलका, और आंखों से टपटप आंसू गिर पड़े।

वर-वधू दोनों सीढ़ियां पार करके मोटर में आ बैठे। मोटर धीरे-धीरे चली। आगे-आगे निशान थे। गिन्नियां बरसाई जा रही थीं। जय-जयकार ध्वनि बढ़ रही थी।

धीरे-धीरे वह महामायावती बरात चली गई। वह समारोह स्वप्न-सागर में विलीन-सा हो गया।

'कुमारी, रायगढ़ की महारानी, कुललक्ष्मी, मैं तुम्हें बधाई देता हूं। रायगढ़ में तुम्हारा स्वागत है।' राजकुमार ने पत्नी के निकट आकर कहा।

कुमारी ने निस्संकोच मुस्कराकर कहा—मैं आपको धन्यवाद देती हूं, महाराजकुमार।

कुमार ने आगे बढ़कर कुमारी का हाथ पकड़ना चाहा, परन्तु कुमारी हंसकर तनिक पीछे खिसक गई। कुमार ने हंसकर कहा—राजकुमारी, आपकी प्रजा

और सरदारगण आपको अभिवादन देने तथा बधाइयां देने आए हैं, वे सब महल के प्रांगण में हैं।

राजकुमारी हंसती हुई आगे बढ़ी। राज्य के सभी प्रमुख व्यक्ति वहां थे। सबने आगे बढ़-बढ़कर सलामें कीं, नज़रें गुज़ारीं और बधाइयां दीं। कुमारी ने मन्द मुस्कान से सबका स्वागत किया।

राजकुमार ने आगे बढ़कर कहा—मोटर तैयार है, सुन्दर संध्या है, घूमने चलना है?

'चलिए।'

कुमारी चल दी। अभ्यास के अनुसार वह ड्राइव करने आ बैठी। कुमार ने हंसकर कहा—यह क्या? क्या तुम स्वयं ड्राइव करोगी? माता ने क्या कहा है, भूल गईं?

'क्या आप भी माताजी की भांति भय खाते हैं?' कुमारी ने टेढ़ी गर्दन करके कहा।

राजकुमार हंसते हुए बराबर बैठ गए। पीछे दो उच्च अधिकारी आ बैठे। साथ में एक महिला थी।

राजकुमारी के लिए मार्ग अपरिचित थे। राजकुमार उन्हें दायां-बायां बताते जाते थे। कुमारी का शरीर मानो कुछ बेकाबू-सा हो रहा था। वह मोटर चला रही थी, पर उसका ध्यान कहीं अन्यत्र ही था।

कुमार ने उसे लहराते देखकर कहा—'क्या मैं ड्राइव करूं?' 'नहीं, धन्य-वाद!' उसने मोटर की गति बढ़ाई। नगर छूट गया था। मैदान की ताज़ी हवा के थपेड़ों से उसकी अलकावलियां खेल रही थीं। वह आंखें फाड़-फाड़कर कुछ खोज रही थी। गाड़ी वायुगति से उड़ रही थी। कुमार ने भयभीत होकर कहा—धीरे राजकुमारी, धीरे। परन्तु राजकुमारी को उन्माद-सा चढ़ रहा था। वह हंस रही थी, उसकी आंखें भटक रही थीं, वह गाड़ी उड़ाए लिए जा रही थी।

दूर एक मोड़ के पास उसने देखा—योगेन्द्र एक वृक्ष के सहारे खड़ा है। उसके मुख से अस्फुट स्वर में निकला—'कैप्टन!' वह मुस्कराई। गाड़ी चली जा रही थी, उसकी गति धीमी करके उसने कहा—मैं आपको, चमत्कार दिखाती हूं महाराज!

उसके नेत्रों में कुछ विचित्र चमक थी। कुमार देखकर घबरा गए। उन्होंने एक बार फिर उसके हाथ से पहिया लेना चाहा, पर उसने हंसकर कहा—क्षण-भर ठहरिए राजकुमार !—उसने उन्मत्त की भांति इधर-उधर देखा—सौ गज के अन्तर पर सामने एक वृक्ष से सटकर योगेन्द्र खड़ा था। उसने व्याकुल दृष्टि से कुमार और पीछे बैठे व्यक्तियों को देखा। मोटर तीर की भांति जा रही थी। वह वृक्ष मानो उड़कर निकट आ रहा था। सूर्य छिप गया था। पश्चिम में लाल-लाल बादल फैले थे। राजकुमार ने घबराकर कहा—'सावधान !' दूसरे ही क्षण में एक वज्र-गर्जन हुआ। मोटर वृक्ष से टकराई और उलट गई। राजकुमार उछलकर खेत में जा पड़े। राजकुमारी इंजिन के नीचे दब गई। मोटर भक-भक करके जलने लगी। आहत सवारियां चीत्कार कर उठीं।

राजकुमार को बहुत कम चोट आई थी। उन्होंने चारों तरफ देखा, और सहायता को पुकारा, परन्तु वहां कोई न था। राजकुमारी होश में थी, उसने चिल्लाकर कहा—कुमार, आपको ज़्यादा चोट तो नहीं लगी ?—वे दौड़कर आए। कुमारी ने ज़ोर किया और मोटर से अपने को निकाला। इसके बाद ही उन्होंने दूसरी सवारियों को निकलवाया। योगेन्द्र भयानक रूप से कुचल गया था, वह मुंह से रक्त फेंक रहा था। कुमारी लड़खड़ाती हुई उसके निकट जाकर मूर्छित हो गई।

होश में आने पर उसने चारों तरफ दृष्टि डालकर देखा—सभी परिजन उपस्थित थे, डाक्टर लोग चिंतित होकर उपचार में लगे थे। चारों तरफ डोल-कर उसकी दृष्टि माता के मुख पर जाकर अटक गई। उसने मुस्करा दिया। माता निकट बैठकर रोने लगी। कुमारी ने धीरे से मां का हाथ अपने हाथ में लिया। उसने कहा—कैप्टन कहां है मां ?

'वह दूसरे कमरे में है।'

'वह होश में तो है ?'

राजकुमार ने आगे बढ़कर कहा—वह होश में है।

'उसे अभी यहां ले आया जाए।'

योगेन्द्र स्ट्रेचर पर लाया गया। उसकी पसलियां चकनाचूर हो गई थीं, और उसके मुंह से अब भी खून आ रहा था। वह कष्ट से सांस ले रहा था।

उसे देखकर राजकुमारी मुस्कराई। योगेन्द्र भी मुस्कराया। इसके बाद कुमारी ने धीमे स्वर में कहा—कैप्टन, यह हमारा आखिरी शिकार रहा।

'हां कुमारी!' योगेन्द्र ने डूबते स्वर में कहा।

महारानी वहां से हट गई। कुमारी ने सबको हट जाने का संकेत किया, फिर कुमार से कहा—राजकुमार, मुझे आप क्षमा करें। मैं आपको पति-रूप में नहीं ग्रहण कर सकी। मेरी दुर्बलताएं आप क्षमा करें। मेरे बाल-स्वभाव ने मुझे यहां तक पहुंचाया, परन्तु मर्यादा का मुझे पालन करना था। यह घटना अकस्मात् कहकर ही विख्यात होनी चाहिए। राजकुमार, आपको बहुत वधू मिल जाएंगी। इस मूर्खा के लिए दुखी न होना।

राजकुमारी थकित होकर चुप हो गई। योगेन्द्र उल्टी सांस ले रहा था। कुमार ने कहा—क्षमा करना कुमारी, मुझे यदि यह प्रथम से ज्ञात होता······।

कुमारी ने बीच ही में चौंककर कहा—अरे! कैप्टन ने तो तैयारी कर दी।

राजकुमारी के चेहरे पर एक लाली आई। वह अन्तिम उत्तेजना थी। दूसरे ही क्षण उसकी श्वास बन्द हो गई।

दोनों प्रेमी अनन्त नींद में थे।

ठकुरानी

पक तेजस्वी और स्त्री-अधिकारों के लिए लड़नेवाली विवाहिता रानी का एक स्पष्ट चित्र इस कहानी में है। रजवाड़ों के अधिपति अपनी काम-लिप्सा की पूर्ति के लिए पाप और अत्याचारों की कोई परवाह नहीं करते थे। यहां एक ऐसी तेजस्वी शिक्षिता का चरित्र-वर्णन है जिसने अपने अधिकारों के लिए अपने लंपट पति राजा से भरपूर टक्कर ली और अंत में उसे सीधी राह पर आने को विवश किया।

'अन्नदाता ! मैं गरीब ब्राह्मणी हूं।'

'चुप लुच्ची, हां रे भूरासिंह, क्या है ?'

'सरकार ! यही है वह।'

'तू प्याऊ पिलाती है ?'

'जी हां सरकार !'

'तेरा गांव कौन-सा है ?'

'गोराड़ा, महाराज, प्याऊ से कोस-भर दूर है।'

'तेरे कोई है ?'

'सरकार, मैं अकेली दुखिया हूं।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'रामप्यारी !'

'अच्छा, ज़रा आगे को सरककर बैठ जा।' इतना कहकर ठाकुर साहब ने अपना एक पैर उसकी छाती पर धर दिया।

ज्येष्ठ की दुपहरी जल रही थी। गर्म लू चल रही थी। मारवाड़ के ठिकाने के ठाकुर साहब अपने सुनसान बैठकखाने में कुर्सी पर बैठे प्याले पर प्याले शराब उड़ेल रहे थे।

उस गर्मी में उस भयानक मदिरा ने उनके माथे की नसों को तान दिया था, चेहरा और आंखें लाल हो गई थीं, आवाज़ फटे बांस के समान निकल रही थी।

स्त्री की अवस्था बाईस वर्ष के लगभग थी। साधारण सुन्दरता की भड़क उसके समस्त शरीर पर थी—वह मैले वस्त्र पहने अतिशय भयभीत दृष्टि से

भूमि पर पड़ी हाथ जोड़कर ठाकुर साहब से अर्ज कर रही थी । ठाकुर के हुक्म से ज्योंही वह आगे को सरकी कि ठाकुर ने अपने दोनों पैर उसकी छाती पर धर दिए। इसके बाद वे गिलास की शराब को गटागट पीकर बोले :

'हां, रामप्यारी ! तुम हमारी भी प्यारी हो !'

'अन्नदाता ! दुहाई ! आप मां-बाप हैं।' इतना कहकर उसने धीरे से ठाकुर साहब के पैर धरती पर रख दिए और पीछे को सरककर अपने वस्त्र संभालकर बैठ गई।

ठाकुर साहब तैश में आ गए। उन्होंने मुंह तक डाटकर दो गिलास गटागट पीए और फिर अबला को घूरते हुए उठ खड़े हुए और गरजकर बोले—क्या देखता है रे भूरासिंह ! उतार दे दस !!!

भूरासिंह ने अनायास ही उसे अपने बलिष्ठ हाथों में उठा लिया और दूसरे कमरे में ले गया।

वह अर्धमूर्छितावस्था में खून में लथपथ पड़ी कराह रही थी। ठाकुर साहब ने एक हलकी लात जमाकर कहा—क्यों ! ठिकाने आई ?

करुण नेत्रों से चुपचाप ताकते हुए अबला वेदना से तड़प रही थी। ठाकुर ने कहा—बोल ! मेरा हुक्म टालेगी ?

अबला ने कहा—सरकार ! अब तो पत लुट गई, जान बाकी है, वह भी ले लो, आपको अख्तियार है।

ठाकुर साहब ने पैशाचिक हंसी हंसकर कहा—छिनाल ! तब इतना नखरा क्यों किया था ?

स्त्री चुप रही। ठाकुर साहब धीरे-धीरे चल दिए।

'सरकार ! मेरे-आपके बीच गङ्गा है !'

'बेवकूफ, तुझे विश्वास नहीं आता !'

'जिन्दगी निबाहनी आपके हाथ है !'

'कह दिया न कि रजपुरा गांव का पट्टा तुझे दे दिया जाएगा !'

'और मुझे ड्योढ़ियों में रहने को जगह मिलेगी ?'

'जब तक ठकुरानी नहीं आती तब तक तो ठीक है, पर उसके सामने

निबाह होना मुश्किल है; उसका मिज़ाज बेढब है।'

'तब मैं कहीं की न रहूंगी।'

'पर तुझे मालूम है कि मेरे सामने ज़िद किसीकी नहीं चलती, जो कहता हूं उसपर भरोसा कर और मौज कर।'

इतना कहकर ठाकुर ने स्त्री का हाथ पकड़ लिया। मदिरा की गन्ध से स्त्री का सिर भन्ना गया और उसने बलपूर्वक घृणा को रोककर कहा—आप तो सरकार मर्द हैं, पर मैं मुंह दिखाने लायक न रही, यह भी तो सोचिए।

'कम्बख्त ! प्याऊ पर पानी पिलाने वाली से रानी बनी जाती है, रांड ! और नखरे करे जाती है, क्या फिर भूरासिंह को बुलाऊं ?'

'दया करो, नहीं मैं मर जाऊंगी।'

'मरकर अपनी ही जान से जाएगी। जीती रहेगी और मेरी मर्ज़ी के माफिक काम करेगी तो मौज में दिन कट जाएंगे।'

'पर आप यह वादा करें कि आपकी नज़र तो न फिर जाएगी ? आप मुझे दूध की मक्खी की तरह तो निकाल न फेंकेंगे ?'

'तब क्या बुढ़ापे तक मैं तुझे पोसे जाऊंगा ?'

'चार दिन बाद क्या होगा ?'

'नई-नई चिड़ियां फांस-फांसकर लाना, तेरा यही आदर-मान बना रहेगा।'

'हाय ! मुझे यह भी करना होगा ?'

'इसमें दोष क्या है ? तुझे इनाम कम मिला है ? तू तो निहाल हो गई है। इसी तरह मैं उसे निहाल करता हूं, जो मेरी मर्ज़ी के माफिक चलता है।'

'खैर, तकदीर में जो लिखा था वह हुआ। और जो होना है वह होगा। मैं आपके अधीन हूं; आपके बाहर नहीं।'

ठाकुर की बाछें खिल गईं, मद्य की बोतल उंडेली जाने लगी। अभागिनी नारी धीरे-धीरे मन की घृणा रोककर एक गिलास पी गई। उसके बाद ? वह कुछ कहने योग्य नहीं।

शराब के घूंट गटागट पीकर ठाकुर साहब ने धरती में करबद्ध पड़े हुए एक युवक को लात मारकर कहा—क्यों रे गुलाम ! मंजूर करता है; चाबुक

मंगाऊं ?

युवक ने पैरों में सिर देकर कहा—सरकार माई-बाप हैं; चाहे बोटी काट डालिए, पर अन्नदाता ! यह कुकर्म मुझसे नहीं होगा ।

'कुकर्म ! अरे हरामजादे, कमीने, कुकर्म कहता है ! दो सौ रुपये तो ब्याह में नकद दिए, सौ अब गौने में दिए । किसलिए ? गांव की बड़े-बड़े घरों की बहुएं गौना होकर पहले यहां ढोक देती हैं ; तू ऐसा नवाबज़ादा बन गया है !' इतना कहकर ठाकुर साहब ने एक लात युवक के जमा दी ।

युवक ने गर्दन ऊंची करके, ज़रा करारे किन्तु वेदना-भरे स्वर में कहा—सरकार, चाहे जान ले लें, पर जीते जी यह होने का नहीं । आबरू गरीब-अमीर सभीकी है ! आबरू के सामने जान क्या चीज़ है ?

ठाकुर ने गम्भीर गर्जन से पुकारा—भूरासिंह !

एक लठबन्द गुण्डा कमरे में आ हाज़िर हुआ । ठाकुर ने तत्काल आदेश दिया—दे, साले को गोला-लाठी दे ।

देखते-देखते युवक के गोला-लाठी चढ़ा दी गई । ठाकुर ने कहा—कमीने कुत्ते ! तेरे सामने ही उस लुच्ची को नंगी करके बेआबरू करूंगा । भूरासिंह ! उठा तो ला रे सुसरी को !

युवक की आंखें जलने लगीं । उसने तड़पकर कहा—मालिक ! तुम्हारा नमक तो खाया है, पर यह याद रखना कि मुझे बनिया-बामन न समझना । यदि मेरी इज्ज़त पर हरफ आया, तो मैं खून पी जाऊंगा ; इसे याद रखना । मुझे मारते-मारते आप चाहे टुकड़े कर दें, सब सह लूंगा, पर मेरी औरत पर जो हाथ लगा देगा, उसीको जान से मार डालूंगा; चाहे पीछे फांसी ही लग जाए । मुझे सेठ लोगों की तरह अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है ।—इतना कहकर युवक ने इतने ज़ोर से अपना होंठ काट डाला कि खून निकल आया ।

ठाकुर युवक के भाषण से क्षण-भर के लिए सहम गया । इसके बाद उसने खूंटी से चाबुक लेकर युवक की खाल उधेड़नी शुरू की । एक भयानक आर्तनाद से दिशाएं कांपने लगीं । नर-पिशाच ठाकुर ने, जब तक युवक बेहोश होकर न गिर पड़ा, अपनी मार बराबर जारी रखी ।

इसके बाद उसने भेड़िये की तरह गुर्राकर कहा—भूरासिंह । उठा ला उस बदज़ात को, देखें कौन उसे मेरे हाथों से बचाता है !—साक्षात् प्रेत-दूत की

तरह भूरासिंह उधर को लपका।

रात्रि के गहन अन्धकार को भेदकर, दिये के धुंधले प्रकाश में बढ़ते हुए नर-पिशाच भूरासिंह को लठ लिए भीतर घुसता देखकर वृद्ध नाइन और उसकी नवागता वधू के प्राण सूख गए। बेचारी सुबह से दोनों भूखी बैठी थीं—अन्न का दाना भी उनके कण्ठ से उतरा न था। प्रातःकाल ही से उसके लड़के को ड्योढ़ियों में बुला लिया गया था और वह अब तक लौटा न था। उसपर क्या बीती होगी, इसकी दोनों असहाय नारियां भांति-भांति की कल्पना कर रही थीं। नववधू का गौना होकर कल ही आया था। पति के उसने अच्छी तरह दर्शन भी नहीं किए थे। फिर भी वह अपढ़, देहाती, अबोध बालिका हृदय की धड़कन को रोककर क्षण-क्षण पति की प्रतीक्षा कर रही थी। वृद्धा की बात तो कही क्या जाए, जिसने बीस वर्ष से उसीको देखकर गरीबी और बुढ़ापा काटा था। भूरासिंह को देखकर दोनों सकते की हालत में हो गईं। उसने घुसते ही कहा—बहू ड्योढ़ियों में जाएगी।—वृद्धा पर वज्रपात हुआ। उसने लपककर बहू को छाती में छिपा लिया। जिस अनुनय और करुणा की दृष्टि से उसने वज्र-पुरुष भूरासिंह को देखा, उससे पत्थर भी पानी हो जाता; पर उसने अपने बलिष्ठ बाहुओं से बालिका को खींचकर उठा लिया। उसी क्षण कदाचित् बालिका मूर्छित हो गई और एक शब्द भी उसके मुख से न निकला। वृद्धा पीछे दौड़ी, पर एक लात खाकर वह वहीं ढेर हो गई। भूत भूरासिंह अभागिन, अरक्षिता बालिका को लेकर उसी अन्धकार में विलीन हो गया। पृथ्वी पर कौन उसका रक्षक था? लोग कहते हैं, परमेश्वर सबकी रक्षा करते हैं, पर इन नर-पिशाचों की नित्य की करतूतों को न जाने क्यों परमेश्वर हाथ पर हाथ धरे बैठे देखा करता है!!!

रात के ग्यारह बज गए थे। अभागिनी बालिका उस अंधेरे और सुनसान कमरे में धरती पर अत्यन्त उदास बैठी थी, जिसमें वह कैद की गई थी। उस अधेड़ औरत के सिवा—जो उसे दिन में दो बार खाना दे जाती थी—तीसरे व्यक्ति की सूरत उसे तीन दिन से देखना नहीं नसीब हुआ था। हर बार अच्छे खाने उसके लिए वह रख जाती थी, और फिर उठा ले जाती थी। बालिका

इतनी भयभीत थी कि उसने न खाना छुआ। और न पानी पिया, एक प्रकार से वह अधमरी पड़ी थी। वह रह-रहकर चीख पड़ती थी।

ऐसे कमरे में बन्द होने का ख्याल ही अत्यन्त भयंकर है। वह कमरा मानो इन अभागिनी स्त्रियों को जिन्दा कब्र में गाड़ देने, दुनिया से एकदम किनारे ले जाने के लिए बनाया गया था। वहां न किसीके चीखने-चिल्लाने की और न किसी अन्य प्रकार के बचाव की गुंजाइश थी।

मनुष्य कामासक्त होकर कैसी बुराइयां कर बैठता है, लालसा कैसा खेल खिलाती है, और वासना कैसे-कैसे पागलपन के काम करा बैठती है—यह बात बहुत कम लोग जानते हैं।

धीरे-धीरे बालिका ने अपनी परिस्थिति पर विचार करना शुरू किया। वह कभी ज़ार-बेज़ार रोने लगती, कभी सोच-विचार और चिन्ताओं से अधीर हो जाती। कभी वह साहस बटोर भागने की जुगत सोचती। परन्तु व्याघ्र के मुख में फंसी हुई हिरनी के लिए यह कहां तक सम्भव था! फिर भी वह साहस करके उठी, उसने अपने बिखरे हुए कपड़े संभाले, और वह चारों ओर कमरे में चक्कर काटने लगी। उसने एक बार खूब ज़ोर से चिल्लाकर देख लिया।

एकाएक एक पदध्वनि सुनकर उसने चौंककर पीछे को देखा, साक्षात् पिशाच-रूप ठाकुर खड़ा था। उसने दोनों हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए कहा—आ-आ-प्यारी कबूतरी······। बालिका अतिशय भयभीत होकर इस तरह भीतर को भागी कि दीवार में टक्कर खाकर गिर पड़ी; रक्त की धार बह चली। वह मूछित-सी हो गई और उसका सिर चकराने लगा। उस यमपुरी जैसे अंधेरे कमरे में एक विशालकाय पिशाच को देखकर वह धरती से चिपट गई। कामान्ध पुरुष ने अपने वज्र हाथों से उसे अनायास ही उठा लिया। उस कुमारी समान, नववधू, मूछिता और रक्त में लथपथ असहाय अबला की उसने निश्शंक होकर पत लूट ली और उसे वहीं धरती में मूछित छोड़, चला आया।

'आप ऐसा नहीं करने पाएंगे।'

'तुम मेरी जोरू हो या मैं तुम्हारी जोरू हूं?'

'यह तो आप जानिए, पर मैं आपकी विवाहिता पत्नी हूं।'

'फिर मुझपर हुक्म किसलिए चलाती हो ?'

'मैं हुक्म नहीं चलाती, सिर्फ कुमार्ग में जाने से आपको रोकना चाहती हूं।'

'मैं लुगाई का ग़ुलाम नहीं हूं।'

'ग़ुलाम तो मैं भी नहीं समझती।'

'तब रोज़-रोज़ का झंझट क्यों ?'

'आप सज्जन और आबरूदार रईस की तरह रहिए।'

'क्या तुम मुझे सज्जन बनाओगी ?'

'अवश्य।'

'तुम्हारी इतनी मजाल !'

'जी हां।'

'मैं दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकूंगा।'

'आपकी ऐसी हैसियत नहीं है !'

'मैं रियासत का मालिक हूं।'

'हरगिज़ नहीं, आप उसके मुन्तज़िम हैं; मालिक रियाया है, जो पसीना बहाती है।'

'तो रियाया को खज़ाना लुटा दूं ?'

'अगर उसे ज़रूरत हो तो लुटा दो, पर अपनी मौज-बहार में नहीं लुटा सकते।'

'वाह, यह खूब कही, यह तुम्हारे बाप का खज़ाना नहीं है।'

'बाप के खज़ाने में स्त्रियों का हक नहीं होता, यह मेरे पति का खज़ाना है, और उसपर मेरा पूरा हक है।'

'ऐसी हकवाली बहुत देखी हैं।'

'अच्छी बात है, अब मुझे देखिएगा।'

'तुम्हें शायद अपने बाप का घमण्ड है।'

'मुझे किसीका घमण्ड नहीं है।'

'तुम इतनी मुंहज़ोर हो, ऐसा मालूम होता तो मैं तुमसे ब्याह ही न करता।'

'आप ऐसे व्यभिचारी, लम्पट, शराबी और असभ्य होंगे, यह मेरे पिता को मालूम होता तो वे भी आपसे मेरा ब्याह हरगिज़ न करते।'

'मैं कहता हूं कि सीधे-सादे घर की बहू-बेटी की तरह रहो, वरना छोड़ दूंगा —बाप को लेकर रहना।'

'बहू-बेटी की तरह ही रहूंगी, विश्वास रखिए; पर आपको भी इज़्ज़त-दार रईस की तरह रहना चाहिए। रियाया की बहू-बेटियों को अपनी बहन-बेटी की तरह समझना चाहिए। शराब को मूत्र समझकर त्यागना चाहिए। पढ़ने-लिखने, रियासत की देख-भाल और गांवों की उन्नति में मन लगाना चाहिए। तमाम लुच्चे-लुङ्गाड़े टुकड़-कुत्तों को पास से हटा देना चाहिए।'

'मैं कह चुका, मेरे जो मन में आएगा वह करूंगा; मुझपर तुम्हारा हुक्म नहीं चलेगा।'

'मैं भी तो कह चुकी हूं कि आप मनमानी न करने पाएंगे। आपको सभी बुरी बातें छोड़नी होंगी और आदतें बदलनी पड़ेंगी।'

'अगर मैं न छोड़ूं तो क्या करोगी?'

'जो उचित होगा।'

'क्या मुझसे लड़ोगी?'

'अगर आवश्यकता हुई।'

'मैं बड़ा ज़ालिम हूं!'

'आइन्दा ज़ालिम न रहने पाओगे!'

'मैं तुम्हारी चाबुकों से खाल उड़ा डालूंगा।'

'तब यही आपके साथ किया जाएगा।'

'क्या कहा?'

'यही कि आपकी खाल भी चाबुक से उड़ाई जाएगी।'

'और यह कौन करेगा?'

'मैं आज ही उसका बन्दोबस्त कर लूंगी।'

'तुम औरत हो या चण्डी?'

'मैं आपकी धर्मपत्नी हूं।'

'मैं तुम्हें चुनौती देता हूं। जो कर सको, करो। देखूं, कैसे औरत मुझ-पर कब्ज़ा करती है।'

'जो आज्ञा, अब आप जा सकते हैं।'···

'रामसिंह !'

'बाई जी राव।'

'अपने कितने आदमी यहां हैं ?'

'कुल सोलह हैं।'

'पिताजी को लिख दो, आठ मज़बूत विश्वासी गोरखा और भेज दें। और प्रत्येक को छः महीने की तनख्वाह पेशगी दे दें।'

'जो हुक्म।'

'और सुनो।'

'जी।'

'रामप्यारी हवेली के भीतर कदम न रखने पाए। यदि आए तो उसे नंगा करके चाबुकों से पिटवा दो और बाहर निकाल दो।'

'जो हुक्म।'

'सरकार का इस मामले में कोई हुक्म तामील न किया जाए।'

'बहुत अच्छा।'

'दो आदमी सरकार के पीछे हर समय रहें; और वे कब क्या करते हैं, कहां जाते हैं—निगाह रखें।'

'जो हुक्म !'

'कोई और नई बात है ?'

'बात तो बड़ी संगीन है, परन्तु...'

'फौरन कहो।'

'अपना नाई...हाल में मुकलावा (गौना) करके लाया था। सरकार ने बहू को कल उठवा मंगाया...रात-भर बड़ा हो-हल्ला मचा। नाई दो-तीन दिन बन्द रहा। उसे बहुत मारा भी गया। वह ए० जी० जी० से फरियाद करने जा रहा था। उसे पांच हज़ार रुपये देकर चुप किया है। सरकार ने हुक्म दे दिया है कि नाई के घर से हवेली तक पक्की सड़क बनवा दी जाए। वह दुमंज़िला मकान भी उसे बख्श दिया है। गांव में इस बात की बड़ी चर्चा है। सरकार की बड़ी बदनामी हो रही है।'

'हूं, अभी ए० जी० जी० को मेरी तरफ से तार दे दो, मैं स्वयं मिलना चाहती हूं।'

'आप स्वयं ?'

'हां, हां, सरकार कब तक लौटेंगे ?'

'अभी तीन-चार दिन तक तो लौटते नहीं। नाईवाला मामला ठण्ठा पड़ जाए तो आएंगे।'

'अच्छी बात है, मेरी मोटर ठीक कर रखो और तार का जवाब आते ही खबर दो।'

'जो आज्ञा।'

'और सुनो, मेरे आगे-पीछे सरकार भीतर की हवेली में न घुसने पाएं, पहरा बैठा दो। अगर ज़बर्दस्ती करें तो गोली मार दो।'

'जो हुक्म !'

आबू के मनोरम शृंग पर ए० जी० जी० एक सुन्दर कमरे में विचार-सागर में गोता मारते टहल रहे थे। उनके जीवन में यह अनहोनी घटना थी कि रियासत की पर्दानशीन रानी तत्काल उनसे मिलना चाहती है ! अवश्य कुछ भारी बात है। इतने में बैरा ने कहा—रानी साहिबा हाज़िर हैं।

साहब एकदम बाहर निकलकर गाड़ी तक आ गए और आदरपूर्वक रानी को भीतर ले आए। रानी साहिबा चुपचाप कमरे में आ गईं।

क्षण-भर दोनों चुप रहे। रानी ने ही बात छेड़ी—आपको इस मुलाकात पर आश्चर्य होगा ?

'बहुत कुछ, मेरी ज़िन्दगी में यह पहला ही ऐसा मौका है। पर आपको ऐसी साफ़ अंग्रेज़ी बोलती देखकर मैं और भी हैरान हो रहा हूं। मैं नहीं जानता था कि राजपूताने के सरदारों की महिलाएं भी ऐसी शिक्षित होती हैं।'

'आप शायद मेरे पिताजी को जानते हों ?'

'उनका नाम क्या है।'

'दीवान बहादुर''सी० आई० ई० वे'''रियासत के दीवान हैं।'

'ओह, आप उनकी पुत्री हैं ? वे मेरे बड़े दोस्त, बड़े मुरब्बी हैं। तब तो आप-से मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई। अब आप मुझपर उतना ही विश्वास कीजिए, जितना अपने पिताजी पर। जो बात हो, बेखटके कहिए। मुझसे जो कुछ बन सकेगा, करूंगा। कहिए, आपने कैसे कष्ट किया है ?'

'धन्यवाद ! मैं जानती थी कि आप पिताजी के मित्र हैं, उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर मुझे आपकी सहायता लेने को कहा भी था। मैंने भरसक चेष्टा की, पर रियासत डूबा चाहती है।···लाचार आपके पास आई हूं···मेरी आपसे एक प्रार्थना है।'

'कहिए !'

'मैं चाहती हूं कि रियासत 'कोर्ट आफ वार्ड्स' कर ली जाए।'

'वाह ! यह कैसी बात ? अभी तो ठाकुर साहब को अधिकार मिले कुल तीन साल हुए हैं।'

'पर इन्हीं तीन सालों में क्या कुछ नहीं हो गया !'

'आप मुझे खुलासा तो समझाइए।'

'बहुत-सी बातें तो कहने के लायक ही नहीं—उनकी शराबखोरी, व्यभिचार और फ़ज़ूलखर्ची में रियासत नष्ट हो रही है। सारा खज़ाना खाली हो गया। कई गांव गिरवी रखे गए। तीन-चार लाख कर्ज़ा हो गया है। तिसपर भी उनके वही रंग-ढंग हैं। लुच्चे-लफंगे घेरे पड़े रहते हैं, रियासत-भर में किसीकी बहू-बेटी की आबरू बचानी मुमकिन नहीं। रोज़ ये कुकर्म होते हैं। रियाया तंग हो गई। सब जगह बदनामी फैल रही है।'

'आपने समझाया नहीं ?'

'बहुत कुछ, पर बात बहुत बढ़ गई है। आप जानते हैं, हिन्दू-स्त्रियों को हिन्दू-लॉ कुछ अधिकार नहीं देता, और रईसों के घर तो स्त्रियां पैर की जूतियां समझी जाती हैं। लोगों की नज़र में वे रानियां हैं, पर उनकी मिट्टी ख्वार है। कदाचित् आप हमारी तकलीफों को महसूस भी नहीं कर सकते। हमें छाती पर पत्थर रखकर इन रईसों के व्यभिचार इन्हीं आंखों से देखने पड़ते हैं ; उनका प्रबन्ध तक करना पड़ता है।'

'यह आप कहती क्या हैं !'

'जनाब ! बहुत-सी बातें हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश गवर्नमेंट से नहीं है ; इसलिए गवर्नमेंट उनपर विचार ही क्यों करने लगी ? स्त्रियों पर रियासत में जो जुल्म होते हैं, उन्हें तो रोकने का कोई उपाय ही नहीं है। न कानून, न पिता का घर, न ससुराल उन्हें मदद देता है—वे सोलहों आना उस रईस की पिशाच-प्रवृत्ति पर निर्भर रहती हैं, जिसकी नस-नस में पाप-

वासना, शराब और कमीनी हरकतें हैं। श्रीमान् ! मैं आप ही से यह पूछती हूं कि यदि कोई रईस ऐसा ही लुच्चा हो—उसमें ऐसी नीच आदतें हों जिनसे सारी प्रजा तंग आ गई हो—पर आपके पधारने पर स्वागत-सत्कार खूब कर दे, राज-भक्त भी बना रहे, खिताब भी लेता रहे, तब आप उसे क्या बुरा समझेंगे ? मुगलों के ज़माने में भी बादशाह रईसों से सिर्फ अपनी वसूली का ख्याल रखते थे, वे कैसा ज़ुल्म करते हैं, इसकी ओर उनका ध्यान न था।'

'रानी साहिबा ! आपकी बातों का मुझपर बड़ा असर हुआ है। मैं इस-पर विचार करूंगा। परन्तु यह तो आप भी मानेंगी कि इन सब बातों को ज़ाहिर में नहीं लाया जाता ; खासकर स्त्रियां चुपचाप सहती रहती हैं। फिर गवर्नमेंट करे भी क्या ? और आप अगर नाराज़ न हों तो मैं कहूंगा, यह विषय गवर्नमेंट पर निर्भर करने का है भी नहीं। यद्यपि हिन्दू-लॉ स्त्रियों के अधिकारों में संकुचित है, पर सन्तान के अधिकारों पर उसमें बहुत काफी विस्तार किया गया है। अगर स्त्रियां हिम्मत करें, अपनी सन्तान का पक्ष लेकर ऐसे रईसों से लड़ें, तो उन्हें गवर्नमेंट बड़ी सहायता कर सकती है। कारण, रियासत हमेशा रईस के खानदान की बपौती होती है। यदि गवर्नमेंट को यह यकीन हो जाए कि रईस की हरकत से वह रियासत इस तरह नष्ट हो रही है कि उसके खान-दानी हकों में खराबी आने का अन्देशा है, तो गवर्नमेंट निस्सन्देह हस्तक्षेप करेगी।'

'मैंने भी यही विचार किया है। मैं अपनी सन्तानों के पक्ष में आपसे अपील करती हूं कि आप रियासत को कोर्ट आफ वार्ड्स कर दें। ठाकुर साहब उसकी रक्षा के योग्य नहीं हैं।'

'आप मेरी पुत्री के समान हैं, आपके हित के सभी पहलुओं पर मैं विचार करूंगा। रियासत को कोर्ट आफ वार्ड्स करने से रियासत का भला नहीं होगा। आप स्वयं ही सोचें कि आज़ादी एक चीज़ तो है। ब्रिटिश गवर्नमेंट इस बात के पक्ष में भी नहीं है। इसलिए, जब आप कहती हैं तो मैं कड़ी धमकी रियासत को कोर्ट आफ वार्ड्स करने की दूंगा तो, पर वह कोरी धमकी ही होगी। मैं समझता हूं इससे आपका काम सिद्ध हो जाएगा यदि आप ज़रा बुद्धिमत्ता से काम लेंगी।'

'आपपर मैं पूरा भरोसा करती हूं, और मैं आपका बड़ा बल समझती हूं।

यह तो नामुमकिन है कि मैं अन्य स्त्रियों की तरह सब कुछ देखूं। मैं इस रईस को ठीक करूंगी और रियासत को नष्ट न होने दूंगी। आप कृपा कर मेरे सदुद्देश्य का ख्याल रखें।'

'अवश्य, मैं पूरा ख्याल रखूंगा। आपसे मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। आपसे मैं फिर कहता हूं कि आप अपने पिता की तरह ही मुझपर विश्वास रख सकती हैं, आपके किसी भी काम आने पर मैं बहुत प्रसन्न होऊंगा।'

रानी साहिबा ने खड़ी होकर साहब को धन्यवाद दिया और विदा हुई।

पोलिटिकल एजेण्ट ने बन्दर के समान लाल मुंह को ऊपर उठा और बिल्ली के समान कंजी आंखों से घूरकर कहा—ठाकुर साहब, बैठ जाइए, बड़ी बुरी खबर है।

'खैर तो है हुजूर ! उस दिन पार्टी में भी तशरीफ नहीं लाए। बड़ी इन्तज़ारी थी। हुज़ूर के लिए सब तरह का खास इन्तज़ाम···'

'मुझे इसका खेद है। परन्तु अभी तो जो बात मैं कह रहा था, उसपर गौर करना होगा। ए० जी० जी० साहब का फर्मान आया है; उन्होंने लिखा है कि रियासत कोर्ट आफ वार्ड्स कर ली जाएगी।'

ठाकुर साहब की फूंक निकल गई। उन्होंने धम्म से कुर्सी पर बैठकर कहा—किस कसूर पर, सरकार ?

'आपकी फिज़ूलखर्ची और बदचलनी की शिकायत पहुंची है। रियासत आपके हाथ से ले ली जाए, इस बात की हिदायत है और मेरी राय पूछी गई है।'

'मगर हुज़ूर ! शिकायत की किसने ?'

'किसीने भी की हो, झूठी तो नहीं है। मेरे ख्याल में तो आपको सब लेखा-जोखा तैयार करना चाहिए।'

'तब क्या हुज़ूर भी अपनी रिपोर्ट मेरे खिलाफ देंगे ?'

'आप जानते हैं, मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर कुछ भी नहीं कर सकता, और इस बात से भी आप इनकार नहीं कर सकते कि मैंने आपको बारहा चेतावनी दी है।'

'तब क्या हुज़ूर ने ही शिकायत की है ?'

'नहीं, खास रानी साहिबा ने।'

'रानी साहिबा ने ?'

'जी हां, वे खुद आबू जाकर साहब से मिली हैं।'

'खुद मिली हैं ? आप कहते क्या हैं !'

'आश्चर्य तो यह है कि आपको अपने घर की इतनी बड़ी बात का पता नहीं, तब रियासत का भला क्या पता रखते होंगे !'

'यह तो बड़ा गजब हुआ।'

'आप तैयार रहें।'

'आपको मेरी आबरू बचानी पड़ेगी !'

'मैं तो कह ही चुका हूं···मेरी ताकत से बाहर की बात है।'

'पर मैं आपसे किसी तरह बाहर नहीं हूं,' यह कहकर ठाकुर साहब कुर्सी से खिसककर साहब के पैरों पर गिर गए। और एक संकेत के बाद हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

साहब ने गम्भीर बनकर कहा—मैं कोशिश करूंगा, पर वचन नहीं दे सकता। आपको उचित है कि अब भी सावधान हो जाएं और रानी साहिबा से मेल कर लें, वरना पछताएंगे।

'आपके कान में कोई बुरी बात न पड़ेगी,' यह कह और लम्बा सलाम कर ठाकुर साहब चले आए।

क्रोध और क्षोभ से पागल हुए, होंठ चबाते ठाकुर साहब हवेली की तरफ चले। कमरे में से भरा हुआ पिस्तौल निकालकर उन्होंने जेब में रखा और ड्योढ़ियों में लपके।

ड्योढ़ियों पर गोरखे सिपाहियों का पहरा था। उनमें से एक ने आगे बढ़कर अदब से कहा—सरकार के लिए भीतर जाने का हुक्म नहीं है। आप बाहर के दीवानखाने में विराजें।

'किसका हुक्म ? क्रोध से अधीर होकर ठाकुर साहब ने कहा।

'रानी साहिबा का।'

'मैं कौन हूं, जानते हो ?'

'जी हां सरकार, आप रईस हैं, मालिक हैं।'

'फिर यह गुस्ताखी ?'

'गुस्ताखी कुछ नहीं हुजूर ! रानी साहिबा के हुक्म की तामील है। हम लोग उन्हींके नौकर तो हैं न ?'

'हटो, दूर हो !'—इतना कहकर ठाकुर साहब ज़बर्दस्ती भीतर घुसने लगे।

गोरखा ने बन्दूक सीधी करके घोड़े पर हाथ रखकर कहा—इसी क्षण पीछे कदम हटाइए, वरना गोली मारता हूं, यही हुक्म है।

ठाकुर साहब अकचकाकर पीछे हट गए। उन्होंने होंठ काटते हुए कहा—अच्छा, हुक्म ले आओ।

'सरकार, परचा लिख दें, जवाब आ जाएगा।'

ठाकुर साहब ने परचा लिखकर भीतर भिजवा दिया। थोड़ी देर में वह वापस आ गया। पीठ पर लिखा था—तलाशी लेकर आने दो।

तलाशी का नाम सुनकर ठाकुर साहब पहले तो उबल पड़े, पर चारा ही क्या था ? सुसराल की तनख्वाह पर नौकर रखने का स्वाद अब मिला। विवश हो उन्होंने तलाशी दी। जेब से पिस्तौल बरामद करके गोरखे ने रानी साहिबा से अर्ज़ की। रानी ने रामसिंह को बुलाकर कहा—सरकार को भीतर आने दो और पिस्तौल को ए० जी० जी० के सामने पेश करके सब माजरा बयान कर दो। दोनों गोरखों को बतौर गवाह साथ ले जाओ। सरकार का इरादा मेरा खून करने का था, यह साबित करना होगा।

ठाकुर साहब भीतर पहुंचते ही स्त्री के कदमों पर गिर गए और गिड़गिड़ाकर कहा—पिस्तौल की बात को यहीं रखो, वरना गज़ब हो जाएगा। मैं तुम्हारी मर्ज़ी के अनुसार करूंगा, मुझे माफ करो। तुम जो कुछ चाहोगी वही होगा ; बल्कि कोर्ट आफ वार्ड्स की जगह कोर्ट आफ रानीजी बना दो। मैं रियासत से वाज़दावा देता हूं···तुम जैसा चाहो, प्रबन्ध करो।

रानी ने कहा—मैं आपकी बात पर विश्वास करती हूं। मैं आपको एक मास का अवसर देती हूं···इस बीच में यदि मैं देखूंगी कि आप इस समय के वचन को पाल रहे हैं तो इस पिस्तौल-काण्ड को दर-गुज़र कर दूंगी। अभी रामसिंह इसे सील-मुहर करके और दोनों गोरखों के बयान लेकर अपने कब्ज़े में रखेगा।

अनेक खुशामदें करके ठाकुर साहब बाहर निकले।

'रथ वहीं रोक दो। इसमें कौन हैं ?'

'रामप्यारीजी हैं।'

'उन्हें बाहर निकालो।'

'सरकार का हुक्म है कि……'

'रानी साहिबा का हुक्म है कि इन्हें जहां देखा जाए, नंगा करके कोड़े लगाए जाएं।'

'मगर सरकार……'

'उन्हें फौरन बाहर निकालो…' इतना कहकर एक गोरखे ने पर्दा खींच लिया। रामप्यारी बढ़िया ज़री की पोशाक पहने बैठी थरथर कांप रही थी। क्षणभर में उसे नंगा कर दिया गया और चाबुक की मार पड़ने लगी। अभागिनी नारी रोती-कलपती वहां से भाग गई।

'ठहरो, इस वक्त सरकार कचहरी कर रहे हैं, मुलाकात नहीं होगी।'

रामप्यारी बदहवास, चोट और अपमान से नागिन की तरह चपेट खाकर कचहरी में बढ़ गई थी। नौकर के उपर्युक्त वाक्य सुनकर उसने ज़ोर से नौकर का गला पकड़कर दबा डाला और दांत किटकिटाकर बोली :

'तेरी और तेरे सरकार की ऐसी-तैसी। दुष्ट, हत्यारा, पापी ! पहले इज़्ज़त उतारता है, पीछे यों छोड़ देता है। आज मैं उसका खून पीऊंगी।' वह पहरे-दार को धकेलकर कचहरी में घुस गई।

सब लोग हैरान थे। रामप्यारी ने उन्मादिनी की तरह पत्थर हाथ में लेकर गालियां बकती दरवाज़ों के कांच फोड़ने, और मेज़-कुर्सी उलटनी शुरू कर दीं। पापीहृदय ठाकुर हक्का-बक्का हुआ देखता रह गया। उसने समझाने की चेष्टा की, तो वह उसपर टूट पड़ी। दाढ़ी और मूंछों के बाल उखाड़ लिए। ठाकुर साहब कचहरी छोड़ भागे…अमले लोग मेज़ के नीचे छिप गए। बड़ी मुश्किल से रामप्यारी को कब्ज़े में किया गया।

रामप्यारी ने ए० जी० जी० के यहां मुकदमा दायर कर दिया। ठाकुर साहब को दस हज़ार रुपया नकद देना पड़ा। इस समय रानीजी ही रियासत की सर्वेसर्वा हैं।

फिर

इस कहानी में परस्पर लिखे पत्रों के माध्यम से मानव-मन की सुन्दर-सुकोमल भावनाओं का हृदयग्राही चित्रण किया गया है।

सू······

यह मदमाती चार दिन से आई है, पर मिली आज है। ओह ! देखने में नशा; छूने में नशा; बातों में नशा; आंख, कान और नस-नस में नशा। मूर्तिमती मदिरा है। भयानक, अति भयानक किन्तु मायामयी ! प्यारे, मैं तो विमूढ़ हो गया हूं। जगत् में जो कभी न देखा था, न चखा था—अरे ! कल्पना और आशा से बिलकुल दुर्लभ—दुर्घट ! छलिया, तू कब से पी रहा था चुपचाप और नीरव ! न कभी कहा, न भेद खुलने दिया। यही आश्चर्य है कि अब तक मैं इसके बिना कैसे जीवित रहा ! यह जगत् ही कैसे जी रहा है ? वाह रे वसन्त ! कैसी वायु बह रही है ! वह लज्जावती कुसुम-कलियों के घूंघट को चीरती हुई, उन्हें खिलखिलाकर हंसाती हुई उनके हृदय का सारा रस एक ही सांस में पीकर मेरे घर में घुस पड़ी है। यह कैसी सुन्दर है ! अरे, कितना आलस्य इसने बखेरा है। तुम क्या जाग्रत् रहते हो इस वसन्त में ? यह असम्भव है ! आंख तो खुलती ही नहीं। मैंने कह दिया है, समझा दिया है।

आ प्यारी नयनों बसे, पलक ढांप तोहे लूं !
ना मैं देखूं और को, ना तोहे देखन दूं !!

वाह रे स्वाद ! लाख प्राणों को देकर मैं इसकी एक बूंद लूंगा। और, और और, अरे ! हाय ! हाय !! सब, सब, सब ! क्या इतना ही है ! और एक बूंद भी नहीं रहा, मैं नहीं मानूंगा, इससे न चलेगा। मैं स्वयं घड़े का मुंह खोलूंगा, मैं स्वयं पीऊंगा। हां, ज़ोर-ज़ुल्म, छल-बल, सब तरह छककर, तृप्त होकर और फिर इसीमें एक गोता लगा लूंगा—मैं डूबूंगा, चाहे लाख बार मरना पड़े।

हे प्यारे ! तुम आओ तो, इस वसन्त में कैसा स्वाद है, कैसा रस है, तुम

देखो तो ! मेरी शपथ ! मेरे प्राणों की शपथ, आओ, आओ, आओ !

तुम्हारा,

—प०

प्रिय !

पोस्टमैन ने धीरे से द्वार खटखटाया। मैं धीरे से उठा और तुम्हारा वासंती पत्र ले लिया ! यह अभी ज़रा सोई है, रातभर…! हाय रे दुःख, पर ईश्वर का धन्यवाद है, रात कट गई है। पत्र में इतनी महक किस इत्र की है ? मैं नहीं पहचान सका, इस समय मेरी बुद्धि कुण्ठित हो रही है ! शायद आजकल में यह सदा को जा रही है……! फिर पता नहीं, कितनी फुर्सत मिलेगी ! क्या तुम्हारे घर में वसन्त इतने ज़ोर-शोर से आया है ? मैंने तो द्वार-खिड़कियां बन्द कर रखे हैं। इसमें वसन्त की उस उन्मादिनी वायु के झोंकों को सहने की शक्ति कहां है ? उससे उसकी अवशिष्ट हड्डियां खड़खड़ा उठती हैं। उसके रूखे, मैले और उलझे हुए बाल और भी उलझ जाते हैं, परन्तु वाह, देखो कैसा अद्भुत योग है। तुम्हारा पत्र फूट-फूटकर हंस रहा है और मेरा मन फूट-फूटकर रो रहा है ? सामने यह मानो तटस्थ समाधिलीन-सी हम दोनों मायाग्रस्त मूर्खों को चुपचाप देख रही है। ये उन्मीलित नेत्र, शुष्क ओष्ठ और प्रत्येक श्वास में सूखे पत्ते की तरह कांपता हुआ हृदय कितने कष्ट, कितने संयम, कितने दुस्समय का द्योतक है ! तुम सोचोगे, यह बड़ा दारुण दुःख है, पर मैं सोचता हूं, यह गनीमत है। यह भी अब इस भाग्य में कै घड़ी और है !

यह पत्र, मस्ताना पत्र, तुम्हारे हृत्तन्त्री की गति में लय मिलाकर कैसा मोहक अनन्त संगीत गा रहा है, पर कैसे कुसमय ! चुप ! अरे चुप, उसकी नींद खुल जाएगी, वह विकल हो उठेगी, वह कराहेगी, वह तड़पेगी, वह जल, एक बूंद जल मांगेगी। वह दाह, वेदना और अदृष्ट दर्शन से छटपटा जाएगी। यह इतना उन्माद, इतना रस, इतना मद ! अरे प्रिय ! अब इस कुसमय में और नहीं, तुम इन सबको उस आनन्दलोक में बैठकर अकेले पियो, पर मुझे अभी माफ करो !

तुम देखनेभर का (?) मुझे न्योता देते और धिक्कार के योग्य बात तो यह है कि मैं उसके लिए लालायित भी हूं। पर भाई, तुम्हीं पियो, छको।

मैं छक तो नहीं, पर चख ज़रूर चुका हूं। केवल चखना या छकना तो भाग्या-धीन है। मुझे तुमपर डाह नहीं, वसन्त के प्रति भी नहीं। पुराने पत्ते झाड़ना और नई कोंपल खिलाना उसका स्वभाव है। परन्तु प्यारे! इस समय तो यह मद मेरे लिए सिरके के समान है। समय ही तो है। प्रति वर्ष वसन्त आता है, पत्तों को बखेरता और फूलों को खिलाता है और न जाने क्या-क्या उत्पात करता है। तुम खिले फूलों का रस छककर पियो। मैं अब तक बिखरे पत्तों को बटोरने का प्रयत्न कर देखूं।

तुम्हारा

—सू०

पुनश्च—

देखो, सम्भव है, पत्र से प्रथम तार ही पा बैठो।

—सू०

सू०······

हाय! अकेले रह गए? तार और पत्र एक के बाद दूसरे वज्र की तरह टूट पड़े। क्या करूं, क्या मरूं? तुमने मुझे लिखा भी नहीं, कहा भी नहीं। वे पद-चिह्न मेरे बिना देखे ही अनन्त में विलीन हो गए? ओस की बूंद की तरह? इतनी जल्दी! हाय रे भाग्य! और मैं क्या कर रहा था? प्रिय! प्रिय! मुझे लज्जा आ रही है! मेरी छाती फटी जा रही है! अब कैसे रहोगे? कैसे सहोगे? मैं ही वहां कहां आऊंगा? किस मार्ग से वे गईं? बता सकोगे? बताना पड़ेगा! मैं आऊंगा। उन्हें फिरा लाऊंगा! न होगा, देख ही आऊंगा। क्या इतना भी अशक्य है? जीजी! जीजी! क्या तुम सुन रही हो? मुझे आशा थी, हम लोग आकर फूल-से बच्चे को गोद में लेकर चूमेंगे और तुम्हारा आशीर्वाद ग्रहण करेंगे! भाई! अरे मेरे बन्धु! माता ने अन्तिम बार अपने हृदय के समस्त स्नेह से पाली हुई यह जीवित कुसुम-कलिका 'मुझे सौंपी थी। वह मैंने तुम्हें संभाल दी थी—जैसे चिड़िया अपने बच्चे को वृक्ष के खोखले में रखती है। बता, वह कहां है बन्धु! मित्र की धरोहर की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। प्यारे! तुमने अवश्य ही उस रत्न को संभालकर रखा होगा? मेरे

विश्वासी ! विश्वासघात न करना ! मैं आता हूं !

—प०

प्रिय !

बड़ा सुख है, अब मैं रात-दिन चाहे जब निस्संकोच रो लेता हूं । कोई सुननेवाला नहीं, देखनेवाला भी नहीं ! सन्नाटे की रात में नितान्त दूर टिम-टिमाते तारों के नीचे, स्तब्ध खड़े काले-काले वृक्षों के नीचे घूम-घूमकर मैं रात-भर रोता रहता हूं । यह मेरा अत्यन्त सुखकर कार्य है । इसमें मेरा बड़ा मन लगता है । और इस पवित्र रुदन के लिए ये स्थान उपयुक्त भी हैं । निकट ही गीदड़ रो रहे हैं । कुत्ते भी कभी-कभी रो पड़ते हैं । घुग्घू बीच-बीच में रोने का प्रयत्न करता है; परन्तु मेरे रुदन का स्वर तो कुछ और ही है, वह अन्तस्तल की प्राचीर-भित्ति को विदीर्ण करके एक नीरव लहर उत्पन्न करता हुआ नीरव लय में लीन हो जाता है ! उसे देखने की सामर्थ्य किसमें है ? नींद अब नहीं आती है । दो महीने रात-दिन सोता रहा हूं । अब नींद से हिसाब साफ है । हां, चटाई पर औंधा पड़ जाता हूं और आंख बन्द कर चुपचाप कुछ सुनने की चेष्टा करता हूं । तब रात्रि के गंभीर अंधकार को विदीर्ण करके एक अस्फुट ध्वनि सुनाई देती है और मैं विवश होकर उसमें स्वर मिलाकर विहाग या मालकोश की रागिनी में रुदन-गान करने लगता हूं । आंसुओं के प्रवाह में रात्रि भी गलने लगती है । तब हठात् वह उसी विमल परिधान में आती है और पहले वह जैसे बलपूर्वक मेरे काग़ज़-पत्र उठाकर मुझे सोने पर विवश करती थी, उसी तरह मेरे उस संगीत को उठाकर रख देती है । पर हाय ! अब मैं सो नहीं सकता ! आंख फाड़कर देखता हूं तो अकेला रह जाता हूं । मैं शेष रात्रि इस वृक्ष के नीचे, उस वृक्ष के नीचे घूम-घूमकर काट देता हूं ।

—सू०

सू०······

न कहने योग्य बात को कैसे कहूं ? परन्तु नस-नस में रमी हुई बात को बिना कहे कैसे रहूं ? तुम्हारा यह सुख देखने-सुनने की वस्तु नहीं । इसका अन्त हो, यह भस्म हो । युक्ति और तर्क बहुत हैं । भावनाओं की नदी उमड़ रही है,

स्मृतियां हिलोरें ले रही हैं, परन्तु सबके ऊपर तुम तैर रहे हो ! मैंने तुम्हें छोड़ ग्रौर कब किसे देखा है ? मेरे प्यारे बन्धु, मुझे आज भी सब तरफ से अन्धा बनकर तुम्हींको देखने दो। अतीत के महागर्त में तो विश्व की समस्त विभूतियां हैं, पर वर्तमान क्षणभंगुर जन्तु वहां जाने से प्रथम वहां की सत्ता ही क्या रखती है ? उधर का ध्यान छोड़ो। उस दिन तुमने मेरा अनुरोध माना था, आज मेरी इस विद्युल्लहरी को मानो। वह चम्पे की कली के समान कोमल और कच्चे दुग्ध के समान स्वच्छ बालिका भाग्य-बल से तुम्हारे लिए प्रस्तुत है। वह इसकी सगी बहिन है। प्यारे ! परम प्यारे बन्धु ! तिनके का आसरा रहते इच्छापूर्वक मत डूबो। जीवन का मध्य युवावस्था है, वह क्षणभर के लिए अधम प्राणी को स्वर्ग के अक्षय भंडार से दी गई है। उसे यों नष्ट न करो। मैं क्या कहूं ? मुझे भय है, मैं निष्ठुरता कर रहा हूं। परन्तु मैं इस बात को जानता हूं। बोलो—क्या तुम इसका अनुरोध रखोगे ?

तुम्हारा,

—प०

प्रिय !

तुम्हारे पत्र का प्रत्येक अक्षर मूर्तिमान काल की तरह सिर पर मंडरा रहा है। इससे कैसे रक्षा होगी, कब वज्र-प्रहार होगा ? कौन जानता है। भावना की बरसात में लालसा की क्षुद्र नदी उमड़ चली है। संयम का अपूर्ण पुल टूट-कर बहा चाहता है ! बहाव की दूसरी कोर पर वह एक चट्टान की काली-काली कूट-शिखा दीख रही है। वहां से लोक-लाज मुझे पुकार-पुकारकर सावधान कर रही है, पर आत्मवेदना से अंग-संचालन तक मेरे लिए अशक्य है, पर, पर—हे भगवन् ! क्या यह संभव है ? ओफ ! कैसी तेज़ी से वह कृष्णकूट निकट आ रहा है ! इस भीषण प्रवाह में अब एक ही धक्के में सब समाप्त है।

जीवन अभी है, बहुत है। हृदय-द्वीप में भी अभी काफी स्नेह है—सब नहीं जल पाया है, परन्तु···परन्तु—हे मित्र ! मुझ दीन को पतित न करो—तरसाओ मत ! ठहरो, मैं मृत्यु या जीवन, दो में से एक वस्तु को चुन लेता हूं !

—सू०

सू०……

खेद है, सम्मिलित न हो सका; मेरी पत्नी ने सब कुछ वर्णन किया। मेरी अभिलाषा मन ही में रही, परन्तु अब बहुत शान्ति मिली। क्यों? क्या तुम्हें कुछ भी सुख मिला? देखो जगत् का काल-चक्र। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन। परन्तु धन्य है वह शक्तिमान प्रभु, जिसके महाराज्य में सब रोगों की औषधि, सब दु:खों का प्रतिकार, सब वेदनाओं की शान्ति है। वस्त्र फटता है, उसे सीए बिना तो नहीं चलता। जीवन में ठोकरें लगती हैं—उठना और फिर चलना मर्द का काम है! फिर ग्लानि क्यों? फिर गुप्त पाप से प्रकट पाप उत्तम है। इन्द्रियां कब धोखा दें, कब प्रबल हों, क्या ठिकाना है? उद्वेग की शान्ति शरीर-धर्म है। शोक-संताप, सुख-दु:ख, शरीर और जगत् के साथ है। सहो और आगे बढ़ो। जगत् के युद्ध में साथवाले आत्मीय योद्धा गिरते हैं, पर शेष योद्धा आगे बढ़ते हैं। तुम भी बढ़ो। प्रारब्ध के चक्र में जो क्षण-भर भी खड़ा रहकर सोच-विचार में पड़ेगा—पिस जाएगा। इस चक्र के निस्तार की गति तो चले ही जाना है।

—प०

प्रिय!

उसकी स्मृति बलपूर्वक हृदय से निकाल फेंकी। बड़ी कसक है, जैसे एक पसली छाती से उखाड़ फेंकी हो! ग्लानि और अनुताप की हिलोरें हाहाकार करती उठती हैं, पर वह निरपराधिनी है! वह अनाथा, असहाया, दीन-हीन, दुखिया अपनी स्वाभाविक सरलता और नैसर्गिक विश्वास को लेकर मेरे पास आई। उस दिन जब शीत-तुषार से कम्पित पल्लव की तरह उसने अपना कण्टकित हाथ बढ़ाया, मैं कुछ सोच ही न सका—मैंने उसे पकड़ लिया!

क्षमा! ओ स्वर्गवासिनी! क्षमा! अधम, निरीह, नर-पशु पर क्षमा!! शोक-समुद्र में एक बूंद स्वाति-जल की पड़ी! दूध में मिश्री की तरह यह मुझमें घुल गई है। सब घाव सूख गए, सब कसक मिट गई! इस संजीवन स्पर्श को पाकर बहुत दिन बाद आज फिर सुख-निंदिया आई है!!!

—सू०

सू०......

कब से तुमने नहीं लिखा ! जीते हो या मरे । क्या नवीन रस में जगत् को भुला बैठे ? उस अवसर पर मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन न कर सका, इसके लिए बारम्बार क्षमा-प्रार्थी हूं। अवसर ही ऐसा था। तुम्हें देखने की बड़ी ही लालसा है। एक ही रस, चाहे जैसा हो, मुंह फेर देता है। 'मीठो भावे लौन पै, मीठे हूं पै लौन।' अब कुछ क्षण लता से पिण्ड छूटे और खुली हवा लगे ! पर यह तो ऐसी लिपटी है कि हड्डियों तक घुस गई है। मद है तो मद—परन्तु पेट भरे पर, इधर पेट का प्रश्न कुछ विकट हो चुका है। तुम्हारी कैसी गुज़रती है, लिखो ! पिछली बात के लिए नाराज़ न होना—शीघ्र ही मिलूंगा।

—प०

प्रिय !

मैं अच्छा हूं, पर मुझे यह सहन नहीं होता कि तुम मुझे मनाओ। इससे मैं बहुत बेचैन हो उठता हूं। जैसे जंगली पशु अपने घावों को चाट-चूटकर आराम कर लेते हैं, वैसे ही मैं भी अपने हृदय के सब घावों को आराम कर लेता हूं। मुझे उसकी आदत पड़ गई है। फिर मेरे पास एक ऐसी तेज़ शराब है जो हर वक्त मुझे गर्क रखती है। कसक तो कभी मुझे मालूम ही नहीं होती। तुमने मुझे ठगा। खैर, मैं तुम्हारे लिए अपनी आशा के कच्चे डोरे को इतना मज़बूत समझता था कि इतराता था, पर तुमने उसे तोड़ दिया। अगर मैं औरत होता तो तुम्हारे मर्दपन पर धिक्कारता ; क्या मर्दों की कुदरती शक्ति ऐसी होनी चाहिए ? सांस के झटके से टूट जानेवाले प्यार की आशा का अभागा तार तो सिर्फ प्यार के ही घमण्ड पर बांधा जाता है। कोमलता का तो यह स्वाभाविक ही घमण्ड है कि वह अपने को कठोरता से सदा ज़बरदस्त समझती है। कोई सजीव कठोरता तो उनके सम्मुख तनकर खड़ी रह ही नहीं सकती।

मैं तुम्हें प्यार के पत्र अब इसलिए नहीं लिखता कि अब मैं अपने प्यार के बचे-खुचे रस को बहुत ही किफायत से खर्च करना चाहता हूं। मैंने उसे बुरी तरह लुटाया है। वह किसीके पल्ले कम पड़ा है—पर बिखरा बहुत है। अभी तो मरने में देर है। इस सबको खर्च कर दूंगा तो जीऊंगा कैसे ? युग बीत गए—उसे तो कभी लिखा ही नहीं। वहां तक डाक जाती ही नहीं। पर जब भी

वह आती है, मानो कहीं गई ही न थी। बातचीत और प्यार का जो प्रसंग चलता है, वह प्रारम्भ और समाप्ति से रहित, सिर्फ मध्य भाग से समझो। मध्य भाग से ! हाय, तुम नहीं समझोगे। उधर गए हुओं से तुम्हारी मुलाकात ही नहीं है। तभी तो तुम ऐसी तुच्छ बातें ज़बान पर ले आते हो ! मुझे ज़रा उधर जाने दो, मैं प्रमाणित कर दूंगा कि मैं तुम्हारे लिए कितना उदार हूं !

—सू०

सू०······

किस लोक की तरफ तुम्हारा लक्ष्य है ? और तुम सर्वथा प्रत्यक्ष इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष ज्ञान की अपेक्षा किस कल्पित लोक को देख रहे हो ? तुम अमर, अविनाशी, अलिंग और लीन आत्मा के विषय में कौन-सी भ्रान्त धारणा कर रहे हो ? सुख से आंख मूंदे रहे हो—दुःखवाद में पड़े हो, वह न अनुरक्ति है, न विरक्ति। तुम्हारा विज्ञानवाद क्या यही है ? रूप-सुधा पियो, ज्ञान को लात मारो, उन्मत्त रहो, अवशिष्ट दिन यों व्यतीत करो। देखो, कैसा वह रूप है, इसे हवा में खुला छोड़, तुम किस भावना में डूबे बैठे हो। वह ठण्डा और बर्बाद हुआ जाता है !

—प०

प्रिय !

यह उन्मत्त हास्य तो मुझे मार डालेगा ! बिजली चमकती है और बादल रोते हैं ! किसी भी तरह मैं इसके साथ नहीं हंस सकता। हास्य मेरे लिए हास्यास्पद है। वह समाप्त हो चुका। इतने घाव ? इतनी वेदनाएं ? इतना भार लेकर किससे हंसा जाता है ? जब मैं हंसता था, तब किसकी मजाल थी कि उसे रोक सके ! मास्टर के हज़ार डांटने पर भी हंसी नहीं रुकती थी। पिता बार-बार कहते थे—अरे बेटा, इतना नहीं हंसा करते ! हाय ! वे दिन गए ! वे दगाबाज़ दिन इस गढ़े में ढकेल गए, अब क्या होगा ? मेरा हृदय रो रहा है, मानो उसमें नासूर हो गया है, जिसमें से रुदन का अटूट झरना बह रहा है। जागरण की अपेक्षा स्वप्न में सुख मिल रहा है। वास्तविक वस्तु की अपेक्षा कल्पना मीठी दीखती है। आह ! उस अनन्त में इतनी दूर—वह क्या चमक रहा

है। अवश्य ही वही है—पर इस अधम पार्थिव शरीर को लेकर मैं वहां जा कैसे सकता हूं? वह स्वर, जो प्रति क्षण सुनाई देता है. कैसे इन चर्म-चक्षुओं से देखा जाए! इस आत्मा का शरीर से विच्छेद कब होगा? कब ज्ञान की धाराएं जगत्-भर से अपने ध्येय को ढूंढ़ लाएंगी—कब, कब, कब?

चमकती हुई बिजली के बीच से झरझर बरसते बादल तो बड़े सुन्दर दीख पड़ते हैं; किन्तु जब वह हंसती है, तब मैं रोता हुआ क्यों नहीं अच्छा लगता? फिर भी उसमें इतना सुख मिलता है। उस दिन इसे देखते ही हर्ष के मारे लोहू नाच उठा था। देखते-देखते पेट ही नहीं भरता था। पर आज इससे डरता हूं। इसकी वे कटोरी-सी आंखें भूखे शेर की तरह मेरी ओर घूरा करती हैं। हाय! इतनी प्यास इसे किस रस की है? मैं भी तो जवान हुआ था। शायद इतनी प्यास मैंने कभी नहीं देखी थी। मेरे पास सदा ही रस का टोटा रहा, पर अब तो दिवाला है। लोग कहते हैं कि मैं अघा रहा हूं, पर मैं रेत फांककर जी रहा हूं। तुम कहते हो रूप! अरे, यह रूप तो धूप है। धूप क्या सदा शरीर को सुहाती है? उसके लिए समय चाहिए, ऋतु चाहिए, और शरीर चाहिए। ग्रीष्म की यह धूप क्या मेरे जैसे घायल के तापने की वस्तु है? मैं मानता हूं स्नेह है, बहुत है। पर मानो वह किसी अछूत का छुआ जल है; पीने की तरफ प्रवृत्ति ही नहीं होती। या कोई दारुण रोग-पुंज नहीं बुझने देता। कहीं मन नहीं लगता, कुछ अच्छा नहीं लगता।

—सू०

सू०……

पत्र पढ़कर इच्छा हुई कि सीधा आऊं और फिर हम दोनों उस प्राचीन बाल-काल की तरह गंगा-स्नान करने चलें, किन्तु लौटें नहीं, वहीं रह जाएं।

तुम्हारे दुख का यह दुर्धर्ष विषय मेरे समझने का विषय शायद नहीं। तुममें रूप है, गुण है, धन है, ऐश्वर्य है, परी-सी सुन्दर स्त्री है…! हाय! यह पाकर तुम मृत्यु-कामना की ओर इतनी तीव्रता से बढ़ रहे हो कि भय लगता है! क्या मृत्यु ऐसी सुखकर वस्तु है? जगत् को देखा कि जो कुछ तुम्हारे पास है, उसीकी प्राप्ति में असफल हो, लोग मृत्यु-कामना करते हैं, पर तुम उन्हें पाकर भी मृत्यु-कामना करते हो। यह क्या बात है? यह मृत्यु-सुन्दरी कौन है? किस

प्यारी की यह दूती है ? यह किस अभिसारिका से मिलाएगी ? बोलो, फिर हम तुम दोनों ही चलें ! चलो !

—प०

प्रिय !

मेरे दुःख का कोई खास कारण नहीं है, पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दुःख मेरे शरीर और आत्मा में नहीं है। मैं उसके प्रवाह में किसी अतर्क्य शक्ति से गिर गया हूं और बहा चला जा रहा हूं ? कहां जाकर इस प्रवाह का अन्त होगा, अब विधाता ही जान सकता है ! मुझे कुछ प्रिय नहीं; मेरे मन का कहीं ध्रुव नहीं; किसी बात, किसी कार्य में उत्साह नहीं ; किसी वस्तु में रस नहीं; ऐसा मालूम होता है, मेरा कहीं कोई नहीं है ! और जीवन तेजी से समाप्त हो रहा है ! पता नहीं, एक ही घटना ने क्या जादू कर दिया। शरीर के स्थान पर शरीर, आत्मा के स्थान पर आत्मा हाजिर हैं; वैसा ही माधुर्य, वैसा ही इन्द्रिय-जाल और उनकी साधना-सामग्री, किन्तु मानो जीवन-तत्त्व नहीं रहा है। तब अनायास ही जो प्रवाह प्राप्त था—वह इतनी चेष्टा, सावधानी और अभिलाषा होने पर भी छिन्न-भिन्न ही दीखता है। सच पूछो तो मैं वासना का पशु, वासना की नदी में, वैतरणी में, बीच धारा में पड़ा उस पार जाने का घोर प्रयत्न कर रहा हूं। यह जानते हुए भी कि उधर, उस पार नरक ही है।

हाय ! कहां गई वह पवित्रात्मा—मेरे दुःख, दरिद्रता, और जीवन के कठिन संग्राम की संगिनी, विपत्ति की ढाल, मेरे शरीर और हृदय की स्वामिनी ! छाया की भांति उसकी स्मृति मन-मन्दिर में बैठी है—अभी बैठी है। सोचा था निकालने को, परन्तु वह भूल थी ! कहां है वह ? क्या वहां जाना और उसे बुलाना दोनों ही शक्ति से बाहर—असम्भव है ? पर मैं आशा न छोड़ूंगा। मैं उस घड़ी की प्रतीक्षा में हूं। सच कहो, क्या ऐसा कोई लोक है, जहां कोई किसीकी प्रतीक्षा करता रहता है ? वहां क्या निष्ठुर, निर्मम, वज्र-पुरुष भी जा सकते हैं ! कहो मित्र ! तुम्हारा ज्ञान, अनुभव और विचार-शक्ति क्या कहती है ? आशा दिलाओ तो मैं कुछ और भी जल्दी करूं।

—सू०

प्रिय !

दुपहरी के सूर्य की तरह उस ज्वलन्त रूप को एक क्षण भी देखना मेरे लिए अशक्य है। उसे मैंने उसके पिता के पास भेज दिया है। वह हंसती हुई गई है, उसी तरह, बल्कि उससे भी अधिक ज़ोर से ! मुझे मोह लेने की सफलता का गर्व उसके होंठों और नेत्रों में मस्ती भर रहा था; और यौवन का गर्व उसकी छाती से फूटा पड़ता था। अब कहां तक इसके सम्मुख तनकर सीधा खड़ा होता ? वह देखो, पीत निष्प्रभ मुख, उन्मीलित नेत्र, प्रकम्पित प्रश्वास और समाप्त जीवन—प्रिय बन्धु, अब मुझे यही जी भरकर देखने दो ! मैं आनन्दलोक में जा रहा हूं, जिसकी न परिधि और न रूपरेखा है। धीरे-धीरे चारों ओर एक ज्योति फैल रही है। मन और इन्द्रिय अब भार-से जंचते हैं। मैं इस अतर्क्य भावना में एक लहर की तरह विलीन होना चाहता हूं। मेरी परिचित कंठ-ध्वनि निकट ही निकट सुनाई दे रही है ! निश्चय ही वह कहीं निकट है ! मुझे उसकी खोज करने दो, और किसीसे मेरी न पटेगी ! मुझे रूप नहीं, यौवन नहीं, प्यार नहीं, रस नहीं—यह कुछ नहीं चाहिए—मुझे चाहिए मेरी वही श्री, वही महाकल्याणी, मेरी सहधर्मिणी और मेरे दुख, दरिद्रता, रहस्य और भीतर-बाहर की सङ्गिनी !

कल मेरा उसकी खोज में प्रस्थान है, क्षमा करना। हमारे बचपन से अब तक का सब हिसाब-किताब बेबाक। उस लोक में अवश्य ही मिलेंगे। ओम् शान्ति !

—सू०

विशेष—

अपनी समस्त सम्पत्ति मैंने उसके नाम कर दी है और उसकी अभिभाविका तुम्हारी पत्नी है। कागज़ात रजिस्ट्री से तुम्हारे पास जा रहे हैं। कृपा कर उसके प्रति दया और क्षमा का व्यवहार रखना। मेरे अनुरोध अपनी पत्नी से भी कह देना।

—सू०

प्रणय-वध

इसमें प्रणय के वध का एक अन्तःसंघर्षमय चित्र दिया गया है ।

ओ प्यारी !
तुम अब विश्वासघातिनी हो ।
उस मुझसे ?
जिसकी नस-नस में तुम थीं ।
बस एक रात में ?
उस अन्धकार के तुच्छ पटल में,
यद्यपि मैं—
लौट रहा था अति प्रभात में आतुर ।

जब से
वह रूप-राशि अपनी तुमने,
जो मेरी थी—
उस तस्कर को दे डाली,
जो मरा पड़ा है निकट द्वार के देखो !
देखो यह तेज़ छुरा,
जिसे मैं अभी धार दे लाया हूं—
जिससे तुम्हें कष्ट कम हो,
अब,
सुन्दर सूर्योदय तुम देख सकोगी कभी नहीं

सन्नाटा है ।
अब कौन यहां बैठा है ?
जो सुने तुम्हारा क्रन्दन ?
श्रान्त ग्रामवासी सब सुखद नींद सोते हैं ।

प्रिये !
मरने से पहले,
तुम्हें देखने आ न सकेगा कोई ।

क्यों व्यर्थ छटपटाती हो ?
मैंने जब सोता पाया,
दोनों मृणाल भुज बांध दिए धीरे से ।
दोनों में पद-पद्म बांधे हैं दृढ़ता से शय्या में ।

प्रिये !
अब सोओ चिर-निद्रा में ।
जैसा वह घृणित कीट सोता है ।
किन्तु,
प्रेम मधुर है,
और तुम तो मेरे लिए मधुर से कहीं अधिक थीं ।
पर,
वह प्यारा कैसा था ?
जिसको,
मेरी आंखें अन्धी करने को चरण-धूल दे डाली,

ज़रा, इन अधरों का मधुरस तो दो ।
जो अति प्यारे हैं,
हा हन्त ! किन्तु विश्वासघात कर चुके ।
उस चिर प्रयाण से पहले,
बस एक बार फिर आत्मसमर्पण कर दो ।
यद्यपि तुम अब अन्ध नरक-पथ पर हो,
पर, जीवन का उत्कृष्ट गहन आनन्द तुम्हें प्रकटित है ।

ओ प्राणाधिक ! ओ अल्प वयस्का ।
ओ अस्फुट कुन्दकली, प्यारी ।

सदा फूल की तरह यत्न से रखा था मैंने तुमको,
किन्तु अब;
इन बातों में क्या है ?
उसके प्रति—
जिसके जीवन की घड़ियां इति हो चुकीं

मैं मारूंगा।
पर भीत न होना,
ओ प्राण-वल्लभे !
यह मृत्यु तुम्हें कुछ उतना कष्ट न देगी।
जितना तुमने,
इस एक रात के लिए दिया मुझ पति को।
निर्दयी कहो,
यदि साहस हो—
तुम।
जिसने क्षणिक स्वाद के लिए मेरे जीवन को नष्ट किया।

देखो तो प्यारी !
उसे खुले द्वार में देखो,
वे स्वर्ण-किरण रवि की कैसी सुन्दर हैं।
दूरस्थ नील-गिरि-शिखा देखती हैं वे,
वे पीले-पीले पके सुगन्धित मधुर आम झुक-झूम रहे हैं।
ये तुमने सींचे थे।
ये पके मधुर फल लदे वृक्ष तो देखो।
किन्तु तुम्हारे लिए नहीं।

ये हिमगिरि शुभ्र शिखा।
नीलाम्बर में कैसी शोभित हैं।

देखो,
ओ प्यारी, देखो,
अब ये ग्रीष्म घास से तप्त हुई पिघलेंगी।
पर हाय !
तुम सदैव की भांति न देख सकोगी ! !

बस, अब से आगे,
यह जगत् तुम्हारे लिए समाप्त हुआ।
अब अनन्त तक—
तुम्हें अकेले निश्चल सोना होगा।
हां, तुम्हें,
जो एक रात भी सो न सकी थी,
यद्यपि मैं सूर्योदय से पूर्व आ रहा था ही।

वह पड़ी छिन्न-भिन्न टूटी वीणा।
वे बिखरे हैं शृंगार दिव्य।
और जिसने उन्हें छुआ था—
वह खण्ड-खण्ड निश्चेष्ट पड़ा है यह।

सम्पूर्ण रात्रि वह उल्लसित आनन्द मद्य पीकर था।
इस प्रभात में किन्तु वही उल्लास मुझे भी मिला।
जब,
इस कृपाण की धार हृदय के पार गई।
सीधी रेखा बनी।
मेरे इन शिशिर-विकम्पित हाथों ने उस उष्ण रक्त-धारा में घुलकर सुख-स्पर्श अनुभूत किया।

ओ प्यारी !
तुम्हें वेदना होगी।

पर प्रेम-बिन्दु का अन्तिम स्वाद यही है।
जब तक जीवित हो, सुन लो,
हां, ये घुंघराली मृदु अलकावलियां ?
मैं वज्र मूर्ख था निश्चय,
जो प्यार किया इस रूप-सुधा को और अकेला एक रात को छोड़ दिया।
ओ परम सुन्दरी !

यह शीतल लौह फलक,
ओ पुण्य गन्धिनी प्यारी !
इस कुसुमविनिन्दित तन को,
क्षणभर में सर्वाङ्ग शीत कर देगा।
अरे ! नहीं।
इन अधर-पल्लवों का एक चुम्बन एक मधु चुम्बन दो।
अब भी इनमें कुछ रस है।
ये झूठे ये उच्छिष्ट अभागे,
वैसे ही दीख रहे हैं।
जैसे कल तक देखे थे।

वह अनुज तुम्हारा लौट रहा होगा अब।
पर्वत-पथ से उत्सुक दर्शन का प्यासा।
पर, जब देखेगा मृतक तुम्हें।
और मुझे पास में सोते।
वह क्या समझेगा ?
क्या वध करने से पूर्व मुझे—
वह जगा-जगाकर पूछेगा ?
'यह खेल कौन-सा खेला।'

इसीलिए,
मैं सोऊंगा।

इसी सेज पर निकट तुम्हारे निस्पन्द हृदय के
तब,
जब मृत्यु तुम्हें शीतल कर देगी।
जब यौवनपूर्ण हृदय यह
और चपल अधर,
स्तब्ध और शीतल होंगे।
ऐसे—
फिर मेरे उष्ण स्वास भी उन्हें गर्मा न सकेंगे।

धीरे से,
यह छुरा तुम्हारे मृदुल गात्र के आरपार होगा।
फिर वहां शीघ्र पहुंचेगा—अन्तस्तल में,
जहां—तड़पती स्मृतियां—मधुर और कटु,
चिर शान्ति-लाभ कर रुदन समाप्त करेंगी।
प्रेम-विजय का पुरस्कार अप्रतिम प्राप्त कर,
गहरी निंदिया सोऊंगा।
फिर प्यारी ?
दुःस्वप्नोत्थित निर्बोध युग्म प्रेमी हम।
मिल प्रेम-सुधा पीवेंगे।

टार्च-लाइट

इस कहानी में चरित्र-दौर्बल्य और कुत्सा का एक अच्छा विश्लेषण है ।

दुर्भाग्य एक अपरिसीम और अपर्याप्त वस्तु है । वह मनुष्य के जीवन का बहीखाता है । उस बहीखाते में मनुष्य के जीवन के पुण्य ही नहीं, चरित्र-दौर्बल्य और कुत्सा का एवं मानसिक कलुष का भी लेखा-जोखा आना-पाई तक हिसाब करके ठीक-ठीक लिखा जाता रहता है । लोग कहते तो यह हैं कि यह दुर्भाग्य मनुष्य पर लादा गया बोझा है, परन्तु सच पूछा जाए तो यह मनुष्य की पाप-कमाई की पूंजी ही है । पाप के विषय में भी एक बात कहूं, लोग पाप की गठरी को बहुत भारी बताते हैं । मेरी राय इससे बिलकुल ही दूसरी है । वह न तो उतनी भारी ही है जिसे लादने को कुली या छकड़ागाड़ी की आवश्यकता है, न वह —जैसा कि लोग कहते हैं—ऐसी ही है कि जो केवल मरने के बाद परलोक में ही खोली जाएगी, मरने तक उसे मनुष्य लादे फिरेगा । वह तो शरीर में हाथ-पैरों के बोझ के समान है जिसे आदमी बड़े चाव से लादे फिरता है और कभी भी उकताता नहीं है । वह चाहे जब उसकी एक चुटकी का स्वाद ले लेता है और उसके तीखे और कड़वे स्वाद पर उसी तरह लट्टू है जैसे वह अन्य नशे-पानी की चीज़ों के कुस्वाद पर । नशे-पानी की चीज़ों से पाप में केवल इतना ही अन्तर है कि नशे-पानी की चीज़ें महंगे मोल बिकती हैं परन्तु पाप मनुष्य के जीवन के चारों ओर बिखरा पड़ा है और उसे जितना वह चाहे बटोरकर अपने कन्धों पर लाद लेने से रोकने के लिए कोई मनाही नहीं है । उसपर कोई चौकीदार-जमादार-सिपाही पहरा नहीं दे रहा है । वह हवा-पानी से भी अधिक सस्ता और सुलभ है । इसीसे मानव स्वच्छन्द भाव से युग-युग से उसके सेवन का अभ्यासी रहा है । परन्तु अभी यह चर्चा यहीं तक रहे, फिलहाल आप हमारी कहानी सुनिए ।

एक दिन सन्ध्या समय अकस्मात् ही विनय की उससे भेंट हो गई । विनय के लिए यह साधारण घटना थी । जीवन के पौर पर ही उसे विधुर होना पड़ा,

पत्नी का पाप पति का दुर्भाग्य हो जाता है। उसी दुर्भाग्य ने विनय को स्वाभाविक नहीं रहने दिया। इन्द्रियों की भूख की ज्वाला ने उसे इधर-उधर देखने ही न दिया। जो मिला उसने खाया, जो बचा फेंक दिया। यौवन था, वेतन था, विदेश था और निर्मम सैनिक जीवन था, जिसका व्यवसाय ही हिंस्र है। वहां कोमल भावुक जीवन कहां? वैसी-वैसी न जाने कब कितनी टकराईं, चूर-चूर हुईं और फेंक दी गईं—विस्मृत भी कर दी गईं।

परन्तु यह छुई भी न जा सकी! भावना की भित्ति ही उसकी रक्षक बनी। असहाय बालिका दुर्भाग्य की चक्की में पिसी हुई अज्ञात वैधव्य का सूनापन माथे पर लिए, नवयौवन के ज्वर को स्कूल की पुस्तकें पढ़-पढ़कर दूर किया चाह रही थी। यही सबने कहा था: स्त्रियों का सौभाग्य-दुर्भाग्य पुरुषों के सौभाग्य-दुर्भाग्य के समान क्षण में बदलनेवाला नहीं। वह अपना नारी-भाव उसी अपरि-पक्वावस्था में जान गई थी और अपने दुर्भाग्य की अमिट-अशुभ छाया से भी वह अभिज्ञ थी। वह चुपचाप रोगी पिता की दैनिक परिचर्या पूरी कर, मृत माता के लिए एक बूंद आंसू बहाकर स्कूल जाती, धरती पर दृष्टि दिए कोमल तलुओं के मृदुल चिह्न पक्की चमचमाती नागरिक सड़कों पर बनाती हुई अन-धिकारिणी-सी। क्योंकि वे सड़कें वास्तव में उसके लिए नहीं, मोटरों पर, बग्घियों पर चलने वालों के लिए थीं। स्कूल से लौटती बार तारकोल की गर्मी से उसके तलुए झुलस जाते थे। घर पहुंचकर पिता की आंख बचा वह अपनी ही गोद में लेकर उनपर प्यार के हाथ फेरती। केवल यौवन के स्वप्न की सूचना की ही उमंग ने उसे यह अनुभूति दी थी कि सौभाग्य यदि होता तो कोई इन तलुओं पर इसी भांति सुखस्पर्श करता।

पति को उसने स्पर्श तो किया था पर तब वह युवती नहीं, बालिका थी। पति के साथ का मर्म उसने तब जाना नहीं। अब यौवन ने, शिक्षा ने, संसार ने और भावुक स्वप्नों ने पति की करोड़ों कोमल और प्रिय मूर्तियां उसके सामने नित्य बनानी और बिगाड़नी प्रारम्भ कर दीं। बहुत बार वह उन मूर्तियों के साथ खेलकर हंसी, रूठी, मचली। और उनके टूट जाने से फूट-फूटकर रोई। धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि मन के भोजन से ठोस शरीर की तृप्ति नहीं होती। शरीर के लिए ठोस पति चाहिए—सशरीर पति।

विनय से ज्योंही उसका अकस्मात् साक्षात् हुआ, उसने पहली ही दृष्टि

में उसकी भूखी आंखों की याचना को जान लिया। उसने चाहा, याचक को कुछ देकर सुखी करना चाहिए। उसने यह भी अनुभव किया कि कुछ देने से कुछ मिलेगा भी, सम्भवतः सुख। परन्तु उसकी संस्कृत आत्मा ने तभी उसे साव-धान कर दिया कि नहीं, नहीं। ऐसा लेन-देन किसी भी स्त्री-पुरुष में हो नहीं सकता जब तक वे पति-पत्नी न हों। उसकी भीरुता, शील और संस्कार सब मिलकर उसकी प्रवृत्ति का विरोध कर उठे। इधर विनय की याचना सीमा लांघ गई। वह अपने सम्पूर्ण पौरुष को अनादृत करके निरीह भिखारी की भांति दीन वचनों पर उतर आया। कहिए, वह सरल, तरल, कोमल बालिका अब क्या करे? देने ही के लिए जिस सम्पदा का भार वह लिए फिर रही है, उसे याचक सामने पाकर कैसे न दे? फिर याचक की प्रिय मूर्ति, जिसके दर्शन ही से संचारीभाव का उदय होता है, और उसकी आतुर-आकुल प्रार्थना, वेदना-प्रदर्शन की ज्वाला का दाह, आंखों की गर्म पानी की बूंदें! कहिए आप? सामने घर को आग में जलता देखकर हाथ में पानी-भरा घड़ा रहते कौन उसे आग में झोंक देने के लिए आनाकानी करेगा? कौन पात्रापात्र का विचार करेगा?

परन्तु लड़की ने सत्साहस किया, दान का बोझा लादे ही रही। विनय में ले डालने की जितनी आतुरता थी, दे डालने की उससे अधिक आतुरता हृदय में रखकर भी उसने कुछ दिया नहीं—दान का बोझा ढोती ही रही। और एक दिन विनय से उसकी जी भरकर बातें हो गईं।

'क्या डरती हो मुझसे?'

'जिसे प्यार किया जाता है क्या उससे कोई डरता है?'

'तो दूर-दूर क्यों?'

'दूर तो तुम्हीं हो।'

'तो तुम मेरे निकट आती क्यों नहीं?'

'कैसे?'

'क्या मुझपर विश्वास नहीं?'

'फिर वही, जब डर नहीं तो विश्वास क्यों नहीं?'

'विश्वास करती हो?'

'क्य नहीं!'

'तो मेरे निकट आओ, इतने निकट कि हम-तुम दो न रहें।'

'किन्तु कैसे ?'

'बाधा क्या है ?'

'यही कि तुम मर्द हो, मैं औरत।'

'मर्द के लिए औरत और औरत के लिए मर्द है।'

'नहीं, नहीं।'

'तब ?'

'पति के लिए पत्नी, पत्नी के लिए पति।'

'अच्छा, यह बात है ?'

'क्या यह इसके योग्य है ?'

'ओह, क्या बुरा मान गईं, परन्तु सुना है मर्द ही तो पति होता है।'

'नहीं।'

'तब ?'

'पति ही पति होता है।'

'कैसे ?'

'मर्द जगत् में बहुत हैं, पति केवल एक है। वह है तब भी है, नहीं है तब भी है !'

'और मर्द ?'

'वह है तब भी नहीं, और नहीं है तब भी नहीं।'

'किन्तु...'

'किन्तु क्या ?'

'मर्द ही में पति की भावना की जाती है।'

'नहीं, पति में मर्द की भावना की जाती है।'

'तो स्त्री को पहले पति चाहिए पीछे मर्द ?'

'हां।'

'और यदि पति पीछे मर्द न निकले ?'

'तो लाचारी है। वह रहे ही नहीं, तब भी लाचारी है।'

'आह, तुम्हारे मन में पति के लिए इतनी वेदनां है ?'

'पति के लिए नहीं।'

'तब ?'

'तुम्हारे लिए !'

'मेरे लिए नहीं।'

'मैं तुम्हें प्रेम करती हूं।'

'क्या मुझसे भी अधिक ?'

'हां।'

'तब दूर-दूर क्यों ?'

'कह तो दिया।'

'समझ गया, मैं आज से मन-वचन-कर्म से धर्मपूर्वक तुम्हारा पति बनता हूं।'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'यह कोई मर्यादा नहीं है।'

'तब मर्यादा क्या है ?'

'यह सब जानते हैं।'

'तुम चाहती हो कि मैं नियमपूर्वक तुमसे विवाह कर लूं ?'

'यदि यही चाहूं तो ?'

'मुझे स्वीकार है।'

'तो मैं मन-वचन से तुम्हारी दासी।'

'नहीं, रानी।'

'रानी भी सही।'

'तो प्रिये, अब ?'

'नहीं, नहीं।'

'अब क्यों नहीं ?'

'जब तक दुनिया मुझे पति-स्वरूप में तुम्हें न दे दे।'

'किन्तु वह झूठा दिखावा है, मैं आज देवता, नक्षत्र और दिवंगत गुरुजनों के समक्ष तुम्हें पत्नी-भाव से ग्रहण करता हूं, लाओ हाथ दो।'

'नहीं, ऐसा न करो।'

'यह मर्यादा से विपरीत नहीं है प्रिये, ऐसा सदा होता आया है।'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं।'

'नहीं प्रिये, देवता साक्षी है, यह स्तब्ध रात्रि, नदी का यह शीतल उपकूल, यह चांदी-सी रेती और आकाश में हंसते हुए तारे। आओ मेरे निकट...।'

'नहीं, नहीं।'

'आओ!'

'नहीं, नहीं, नहीं।'

'आओ!'

'नहीं, नहीं।'

'आओ!'

'नहीं।'

'आओ, आओ...।'

'न-न-हीं...।'

'आ-आ-आ-आ-ओ...'

और इस प्रकार उसका देन-लेन प्रारम्भ हो गया। वह अधिकाधिक बढ़ता ही गया। जहां विश्वास है, प्रेम है, परस्पर की एकता है, वहां देन-लेन बढ़ेगा क्यों नहीं। वह बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया। कलरव करते हुए पक्षी, कलकल करती हुई लहरें, टिमटिमाते तारे और चांदी के समान अमल रेती उनके लेन-देन की साक्षी रहीं। मानव-जनपद के सामने इस लेन-देन का हिसाब रखने की उन्हें फुर्सत नहीं ही मिली। और एक दिन अचानक उसने देखा : उस लेन-देन में असमानता-सी आ गई है। उसे एक दिन अचानक ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने—जो यह समझती रही थी कि वह देती ही रही है—जो लिया है उसका भार कुछ बढ़ रहा है। थोड़े दिनों में संदेह मिट गया। उसने जो दिया था वह सब बट्टे खाते गया। और उसने जो लिया उसके भार से वह एक दिन अधमरी हो गई।

उसने डरते-डरते विनय से कहा :

'यह बोझ बढ़ता ही जा रहा है, यह तुम्हारा प्रेमोपहार है। इसे सबसे कह दो। कोई यह न समझे कि चोरी की है।'

विनय ने सिगरेट के धुएं का बादल बनाते हुए कहा—चिन्ता न करो,

चुटकी बजाते इस बोझ को कहीं कूड़े के ढेर में फेंक दिया जाएगा।

पर बोझा उसे ढोना पड़ा। कूड़े के ढेर में नहीं फेंका गया। वह उसे ढोते-ढोते थक गई, पीली पड़ गई, कमज़ोर हो गई। किसीकी भी उसपर नज़र न पड़े इसके लिए उसने बड़े-बड़े झूठ, जाल, असत्य और न जाने क्या-क्या किए। वह अब विनय के जितने पास आना चाहती वह दूर हटता। जब बोझे की बात चलती, कहता—फिक्र न करो। वह झुंझला भी उठता, खीझ भी उठता, डांट भी देता। उसे रोना पड़ा—पहले छिपकर, सिसक-सिसककर, दहाड़ मारकर, पछाड़ खाकर, धरती पर सिर पटककर।

परन्तु कुछ हुआ नहीं।

एक दिन स्कूल से आकर उसने देखा कि घर में अंधकार है, सन्नाटा है, दिया जला नहीं है। पिता को उसने पुकारा—पर जवाब नहीं मिला। दिया जलाकर देखा और उसका सारा रक्त पानी हो गया।

उसने देखा, बूढ़े पिता ने अपनी महायात्रा उसकी गैरहाज़िरी ही में कर ली है। उसका मृत शरीर पड़ा है। उसने कठिनता से अपने को मूर्छित होने से रोका। वह आंखें फाड़-फाड़कर मृत पिता के विकृत मुख को देखने लगी। उनकी अधखुली निस्पंद आंखें देख वह उस सूने अंधेरे घर में भय से चीख उठी।

परन्तु यह सब निरर्थक ही था। जीवन एक कठोर सत्य है। वह भीति, भावुकता और करुणा के वशीभूत नहीं होता। उसने आंसू पोंछे, एक गहरी सांस ली। उसने टार्च-लाइट हाथ में ली और वह विनय के घर की ओर चली। सड़क, गली और रास्ते उसने पार किए। आते-जाते जनों के उसे धक्के खाने पड़े, पर वह अंधेरी-अशुभ गलियों में हाथ से टार्च की लाइट फेंकती हुई आगे बढ़ती गई।

गली के किनारे पर से देखा। सामने बिजली की रोशनी और गैस के हंडों से गली जगमगा रही है। बैंड बज रहा है। बहुत-से स्त्री-पुरुष बढ़िया वस्त्र पहने एकत्र हैं। चांदी के वर्क लगे पान बांटे जा रहे हैं। ग़ुलाबजल छिड़का जा रहा है। वह आगे बढ़ी। घोड़े पर दूल्हा था। उसने टार्च की लाइट दूल्हे पर फेंकी। वह विनय था। क्षणभर को उसका सिर घूम गया। परन्तु अकस्मात् ही उसकी वेदना और विस्मृतियां मुस्करा उठीं। एक मुस्कान की

झलक उसके होंठों पर आई। विनय ने देखा। धीरे से झुककर एक साथी मित्र से कहा—यह इस वक्त यहां क्यों ?

मित्र ने पूछकर बताया। यह कहती है, पिता मर गए, उनकी अकेली लाश घर पर पड़ी है। विनय ने क्षण-भर सोचा और मित्र के कान में एक बात कही। मित्र उसे एक ओर अंधेरे में ले गया। एक कागज़ का टुकड़ा उसकी मुट्ठी में पकड़ा दिया और भर्त्सना के स्वर में कहा—इस मौके पर तुम्हारा यहां रहना आज ठीक नहीं था। इसे लो, और अपना काम करो।

मित्र तेज़ी से फिर भीड़ में मिल गए। उसने टार्च-लाइट से देखा, उसकी मुट्ठी में एक सौ रुपये का नोट था। कह नहीं सकते, उसने उसे अस्पृश्य समझकर फेंक दिया या वह उसके बोझ को न संभाल सकी, वह नोट वहीं उसकी मुट्ठी से गिर गया। उसने हाथ के टार्च को नीचे झुका दिया। रौशन नहीं किया। वह अंधेरी, सूनी, गंदी और ऊबड़खाबड़ गलियों को पार करती, ठोकर खाती, गिरती, उठती अपने घर की ओर चली गई, जहां उसका एकमात्र आधार पिता चुपचाप महानिद्रा में सो रहा था।

धरती और आसमान

कलाकार जो एक असफल गृहस्थ है किन्तु सफल कलाकार। वह कला की सफलता में व्यस्त रहकर पत्नी को अभाव की दुनिया में घसीटता चला जाता है। वह सदा आदर्श के आसमान पर विचरण करता रहा, और कभी अपनी जीवन-संगिनी की ओर देखा भी नहीं—जो धरती पर रह रही है और अभाव में जिसका जीवन घिस गया है। और अब एकाएक वह उसे देखता है, पति की दृष्टि से नहीं, कलाकार की दृष्टि से। कहानी में यही तथ्य वर्णित है।

पूरनमासी का पूरा चांद आसमान पर अपना उज्ज्वल आलोक फैला रहा था और धरती जैसे दूध में नहा रही थी। दिनभर लू के थपेड़ों ने आग बरसाई थी और इस समय ठण्डी हवा बह रही थी। स्निग्ध चांदनी थी, शान्त वातावरण। दूर एकाध पक्षी मन्द ध्वनि कर रहा था।

पति ने आज दिनभर कड़ा परिश्रम किया था, कई अधूरे स्केचों में रंग भरा था; एक मूर्ति को खत्म किया था; कुछ नई रेखाएं चित्रित की थीं। इस समय वह छत के खुले सहन में आरामदेह पलंग पर पड़ा सुदूर नक्षत्रों की, जिनकी आभा उज्ज्वल चन्द्रलोक से फीकी पड़ रही थी, ध्यानमग्न देख रहा था। वह शिल्पी था, कलाकार था, भावुक था, मनीषी था। जीवन के पचास साल उसने कला की साधना में लगाए थे। आज वह लोक-द्रष्टा था, दिव्य-द्रष्टा था, विश्व-द्रष्टा था। उसकी गहन कल्पनाएं ब्रह्माण्ड के उस पार तक जाती-आती थीं; उसकी तूलिका शत-सहस्र जनों को जीवन का संदेश देती थी। उसके अपने ही व्यक्तित्व में अखिल ब्रह्माण्ड समाया हुआ था, विश्व का सुख-दुःख आज उसका अपना सुख-दुःख था। वह अपने लिए बहिर्मुख था, विश्व के लिए अन्तर्मुख। वह अपने को नहीं देख पाता था, विश्व पर उसकी दृष्टि केन्द्रित थी।

और इस समय शान्त-स्निग्ध चन्द्रमा के उज्ज्वल-धवल आलोक में अबाधित रूप से वह उन करोड़ों मील दूर अवस्थित टिमटिमाते नक्षत्रों के निकट जा पहुंचा था। वह सोच रहा था, इन नक्षत्रों में क्या सचमुच इसी प्रकार प्राणियों का

वास है जिस प्रकार हमारी पृथ्वी पर ? वहां का भी वातावरण क्या लोगों के हंसने-रोने और व्यस्त नागरिक कोलाहल से परिपूर्ण है ? वहां भी क्या बच्चों की पौध उगती है ? वहां भी क्या, ऐसा ही है जैसाकि यहां ; कुछ बच्चे गुलाब के फूल के समान सुन्दर, सुहावने, उत्फुल्ल, कुछ सूखे, मुरझाए, झुके हुए, कुत्सित और निष्प्राण ? कहीं सुख, कहीं दुःख ; कहीं हास्य, कहीं रुदन ; कहीं प्रकाश, कहीं अन्धकार; कहीं बहुत और कहीं कुछ भी नहीं ? ऐसा ही क्या वहां भी है ? परन्तु उस सुख-दुःख से परिपूर्ण जीवन-काल में केवल यह प्रकाशमान टिमटिमाता रूप ही क्यों दीखता है ? चन्द्रमा के मृगलांछन पर उसकी दृष्टि जब गई, वह सोचने लगा, क्या ये चन्द्रलोक के पर्वत हैं या सूखे समुद्र ? वहां क्या अभी जीवन है ? लोग कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ, उसके अनुमान ही तो हैं। अभी कोई चन्द्रलोक गया तो है नहीं । यह चन्द्रलोक, शुक्र, बृहस्पति, सप्तर्षिमण्डल, ध्रुव ! क्या कभी इस धरती के मनुष्यों का चरण स्पर्श करेगा इन्हें ? या ये सब असहाय जन भूख, प्यास और अभाव से जर्जरित होकर ही मर जाएंगे ।

उसकी विचारधारा बदली । वह सोचने लगा, क्या अभावग्रस्त होकर मरने ही के लिए मनुष्य ने जीवन धारण किया ? जीवन तो अभाव का नाम नहीं है। फिर जीवन अभाव से परिपूर्ण क्यों है ? जीवन को समाज-नियन्ताओं ने सीमित किया है संयम से। इसी संयम ने उसे अभावों से भर दिया है । भूख लगने पर वह उस पड़ोसी का अन्न छीनकर नहीं खा सकता जिसके पेट-भर खाने पर भी बहुत बच रहा है, क्योंकि वह संयम की मर्यादा में बंधा है । प्यास से तड़पने पर, शीत से ठिठुरने पर और जीवन के सम्पूर्ण अभावों से वह अपने चारों ओर फैली हुई विश्व-सम्पदाओं को नहीं भोग सकता, क्योंकि वह संयम के सूत्र में बंधा है।

वह स्टेशन पर जाता है । लम्बी यात्रा है । तीसरे दर्जे के डिब्बों में भेड़-बकरी की भांति ठसाठस आदमी भरे हैं । फर्स्ट और सेकंड क्लास के डिब्बे खाली हैं, वहां गद्देदार सुखद सीट हैं। सरसर चलते पंखे हैं। सुख है, आराम है, सुविधा है, इसीकी उसे चाह है । पर वह भीड़ और गन्दगी से भरे तीसरे दर्जे के डिब्बे में जबर्दस्ती घुस रहा है, इसके लिए लड़ रहा है, मनुष्यता से गिर रहा है। क्यों नहीं वह उन सुखद खाली फर्स्ट और सेकंड क्लास के डिब्बों में जा बैठता, जहां सब कुछ है ? क्यों वह अभाव में मृत्यु ढूंढ़ता है, भाव में जीवन नहीं ? केवल इसीलिए कि वह संयम-पाश में बंधा है । उसके पास तीसरे दर्जे का ही टिकट है । अब

वह सुभीता होने पर भी उन सुखद फर्स्ट क्लास और सेकंड क्लास के डिब्बों में नहीं बैठ सकता, इसका विचार ही नहीं कर सकता।

पति की विचारधाराएं धरती से आसमान तक विचर रही थीं। वह अपने में खो रहा था। वह सोच रहा था—इसी तरह तो मनुष्य, जिसे जीवन मिला है, मृत्यु को ढूंढ़ लेता है। कितना उसका दुर्भाग्य है! कितनी उसकी मूर्खता है! फिर उसका ध्यान उन सुदूर नक्षत्रों की ओर गया। उस चांदी के थाल के समान क्षण-क्षण पर विकसित होते हुए चन्द्रमा की ओर गया। शीतल, मन्द पवन ने बेला के फूलों की महक लेकर उसके मन में गुदगुदी उत्पन्न कर दी।

पत्नी भी पास के पलंग पर लेटी हुई थी, बहुत देर से। आज उसे भी बहुत परिश्रम करना पड़ा। नौकर बीमार हो गया था। सारा घर और बर्तन साफ करने पड़े थे। बच्चों का नहलाना और उनके कपड़े भी धोना पड़ा था। नौकर के लिए अलग पथ्य बनाना पड़ा था। तीसरे पहर कुछ उसकी मिलनेवालियां आ पहुंची थीं, उनके जल-पान-आतिथ्य की व्यवस्था करनी पड़ी थी। आज पूर्णिमा थी, उसका उपवास था। वह इन सब कामों से थक गई थी, उपवास से कमज़ोर हो गई थी। अभी उसने यत्किंचित लघु आहार लिया था। वह इस स्निग्ध चांदनी रात में इतनी थकान के बाद इस सुखद पलंग पर आराम पाकर बहुत-सी बातें सोच रही थी। बच्चे सब शीतल वायु के थपेड़ों से सुखद नींद का आनन्द ले रहे थे। दिन-भर की घर-गृहस्थी की खटखट, चखचख, बकझक के बाद इस समय के निर्द्वन्द्व वातावरण में उसे कुछ शान्ति मिल रही थी। फिर भी उसका मस्तिष्क शान्त न था। धोबी उसकी नई साड़ी फाड़ लाया था। उसकी धुलाई के हिसाब में पैसे काटने थे। दूधवाले का सुबह ही हिसाब करना था। बच्चों की फीस देनी थी। नौकर तो कल भी काम न करेगा। सारे बर्तन योंही पड़े थे। ओफ, सुबह उसे कितने काम हैं! रुपये तो अगले हफ्ते मिलेंगे। कल वह इन सबको रुपये देगी किस तरह? एकाएक उसे याद आया। अरे, राशन भी तो कल ही आना है। कैसे आएगा? जैसे उसका सारा आराम हवा हो गया। उसने बेचैनी से करवट ली। फूल के थाल के समान चांद पर उसकी नज़र गई। बड़ी देर तक वह उसे देखती रही। फिर उसने आंखें बन्द कर लीं। वह सोच रही थी, आज मेह-मानों के सामने उसे कितना नीचा देखना पड़ा! पड़ोसी से कांच के गिलास मांग-कर शर्बत पिलाना पड़ा। एक बार वह घर के सारे अभावों पर विचार कर गई।

इतनी बड़ी गृहस्थी और इनका यह हाल ! न जाने किस उधेड़-बुन में रहते हैं। तनिक भी तो ध्यान नहीं देते। सब मुझे ही भुगतना पड़ता है। वह सोच रही थी, उलझन, बोझ और जिम्मेदारी के सम्बन्ध में, उस अभाव के सम्बन्ध में जो उसे चारों ओर से दबोचे हुए थे, उसपर लद रहे थे।

एकाएक पति ने कहा—अहा, क्या इन नक्षत्रों में भी मनुष्य-लोक है ? वहां भी क्या प्राणियों का निवास है ? क्या कभी इस पृथ्वी के मनुष्य वहां आ-जा सकेंगे ? न जाने कब से कितने वैज्ञानिक इन नक्षत्र-मण्डलों से सम्बन्ध स्थापित करने की जुगत में हैं। मंगल और चन्द्रलोक में जाने के लायक तो सुना है, राकेट बन गए हैं। किराया सस्ता हो तो ज़रा राकेट में बैठकर हम लोग चन्द्रलोक की सैर कर आएं। सुनती हो, चलोगी तुम ?

पत्नी अपने विचारों में डूबी हुई थी। वह समझी थी पति सो गए हैं। उसने उनके आराम में दखल देना ठीक नहीं समझा। वह चुपचाप अपनी चारपाई पर आ लेटी थी, और अपने विचारों में डूब-उतरा रही थी। उसने पति की पूरी बात नहीं सुनी। जो सुनी वह ठीक-ठीक नहीं समझी। पति जग रहे हैं, यह जानते ही उसने जैसे एकाएक सावधान होकर कहा—क्यों जी, घर में एक भी कांच का गिलास नहीं है। बड़ी खराब बात है। आए-गयों के सामने कितना शर्मिन्दा होना पड़ता है !

पति की सारी ही विचारधारा छिन्न-भिन्न हो गई। नक्षत्र-मण्डलों से उसके सम्पर्क समाप्त हो गए। विज्ञान की विश्वव्यापिनी प्रक्रिया अन्तर्हित हो गई। उसने पत्नी के थके हुए, सूखे, नीरस, उदास मुख की ओर देखा, उसकी टूटी चारपाई और चारपाई की फटी चादर को देखा। अपनी सारी गरीबी से भरी हुई गृहस्थी का एक समूचा चित्र उसकी आंखों में बन गया। पत्नी के इस एक छोटे-से वाक्य ने जैसे उसकी सारी ज्ञान-गरिमा को चुनौती दी हो। वह लज्जित-सा, मर्माहत-सा, अपराधी-सा, भयभीत-सा चुपचाप पत्नी की चिन्ताकुल दृष्टि को देखने लगा, जिसमें अभाव ही अभाव था, थकान ही थकान थी, व्यथा ही व्यथा थी, चिन्ता ही चिन्ता थी।

उसके मुंह से बोल नहीं निकला। उसे हठात् याद आया, विवाह के समय जब शुभदृष्टि की रस्म अदा हुई थी, तो इसी दृष्टि में शुक्र नक्षत्र जैसा तेज और उज्ज्वल आलोक देखकर किस प्रकार उसके शरीर का रक्त-बिन्दु नाच उठा था,

उसका अस्पष्ट जीवन-पथ आलोकित हो उठा था। वही दृष्टि आज इतनी सूनी हो गई! आज उसपर नज़र पड़ते ही मन दर्द से कराह उठा। उसने और ध्यान से पत्नी को देखा। उसकी साड़ी मैली और फटी हुई थी। दिन-भर काम-काज करने के बाद भी उसने उसे बदला नहीं था, इसलिए नहीं कि उसने आलस्य किया या वह फूहड़ थी। दूसरी धोती उसके पास थी ही नहीं। उसके बाल भी रूखे थे। उनमें न तेल डाला गया था, न कंघी की थी। उस मैली-फटी साड़ी में, रूखे और उलझे हुए बालों के नीचे उसका सूखा मुंह, मुरझाए हुए होंठ, चिन्ताकुल आंखें—उस टूटी चारपाई पर बिछी फटी चादर पर लेटा हुआ उसका जीर्ण शरीर उसने देखा।

हठात् उसके मन में एक बात आई : आह! अपने जीवन में अपनी तूलिका से मैंने इतने चित्र बनाए, जीवन को इतना रंग दिया, लेकिन यह जो जीवित चित्र मैंने बनाया है, इसपर तो मैंने ध्यान ही नहीं दिया। इसके सम्मुख मेरे अब तक के बनाए हुए सारे चित्र हेय हैं, सब निर्जीव हैं, सब नकली हैं, असत्य हैं। उनमें सौन्दर्य है, प्रकाश है, रंगीनी है, पर जीवन कहां है? वे जीवित कहां हैं? जीवित चित्र केवल यही मैं बना पाया हूं।

निस्संदेह यह चित्र मेरा ही बनाया हुआ है। मेरी यह पत्नी वह नहीं है जो अब से बीस साल पहले ब्याह कर आई थी। यह तो मेरे द्वारा बनाई हुई मूर्ति है। इसे बनाने में मुझ कलाकार के बीस वर्ष लग गए, निस्सन्देह बीस वर्ष! इन बीस वर्षों में उसके गुलाबी चमकदार गालों को पीला पिचका हुआ बनाया गया, उन-पर झुर्रियों की रेखाएं अंकित की गईं। इन नेत्रों का मादक, तेज कटाक्षों का विद्युत्प्रवाह धो-पोंछकर इनमें अमिट सूनापन पैदा किया गया। प्रेम का आमन्त्रण-सा देनेवाले इन सरस होंठों को सुखाकर उन्हें फीका किया गया। उन्नत युगल यौवनों को ढहा दिया गया। अब वे उसके अतीत यौवन के एक प्रामाणिक इति-हास बन गए थे। उसकी वह मृदुल-सुचिक्कण अलकावलियों को जंगली झाड़ियों का रूप दे दिया गया था।

आप कह सकते हैं कि यह तो रूप को कदरूप कर दिया गया। सो इससे क्या मेरी कला सदोष होगी? कलाकार सौन्दर्य के उन्माद का चित्रण करने का ठेकेदार नहीं है, वह कदरूप भी सर्जन करेगा। उसका काम मदिरा की बोतल भरना नहीं, सत्य के दर्शन करना है, सत्य को मूर्त करना है—वह सत्य जो

शताब्दियों-सहस्राब्दियों से होता आ रहा है, होता रहेगा। यहां तो उसकी कला है। मैंने यही किया।

पत्नी की ओर पति ने प्यार-भरी चितवन से देखा। यह चाहता था कि अपनी इस कृति को, जिसे उसने प्रकृति पर विजय पाकर बनाया है, प्यार करे। परन्तु वह उस समय थकान से चूर-चूर होकर सो गई थी। वह गहरी नींद में सो रही थी।

वह चौंक पड़ा। ओह! यह गहरा विश्राम तो इस जीवित चित्र की एक भिन्न ही रेखा है, इसका तो मैंने विचार ही नहीं किया था। मैं सोच रहा था कि इस अप-रूप को जीवन मैंने दिया। परन्तु अब समझ रहा हूं कि यह जो उसके व्यस्त जीवन के बीच-बीच में ऐसे ही गहरे विश्राम के विराम निरन्तर बीस वर्ष तक होते रहे, उसीने उसमें जीवन कायम रखा है। वह लज्जित हुआ। ठीक, ठीक यह त्रुटि रह गई। उसके माथे में रेखाएं पड़ गईं। वह सोचने लगा, इस विराम का तो चित्रण शायद न हो सकेगा। फिर जीवन से उसका सामंजस्य कैसे स्थापित हो पाएगा?

वह कुछ भी निर्णय न कर पाया। वह पति भी था और कलाकार भी। इस समय पति भी कुछ सोच रहा था और अपनी पराजय पर लज्जित भी हो रहा था, परन्तु कलाकार गम्भीर था। वह और भी गहरी बात सोच रहा था। वह सोच रहा था, कला के अपने दृष्टिकोण के सम्बन्ध में। वह सोच रहा था कि यही गहरा विश्राम यदि चिरविश्राम में परिवर्तित हो जाए तो फिर मेरी यह मूर्ति मेरी कला की प्रतिष्ठा-भूमि पर अप्रतिम रहेगी तो?

पति ने उसके विश्रान्त-अभिशप्त मुख पर दृष्टि जमाई। उज्ज्वल कौमुदी का विस्तार करता हुआ चन्द्रमा, सुदूर गगन में टिमटिमाते तारे सभी देखते रह गए।

कलाकार ने मूर्ति की प्रतिलिपि तैयार की। इस भय से कि कहीं काल उसकी रेखाओं में हस्तक्षेप न कर दे, उसने पत्थर ही पर हस्तक्षेप किया। प्रतिलिपि उसी पति की पत्नी थी—वही सूखे होंठ, सूनी दृष्टि, बुझी हुई चितवन, ढले हुए गाल और परास्त यौवन। इस मूर्ति में कलाकार ने अपनी कल्पना का एक कमाल किया था। उसने मूर्ति में उस चिरविश्राम को अप्राप्य अंकित किया था और उसकी गहरी आंतरिक भूख मूर्ति की पलकों में सजा दी थी। इस प्रतिकृति का नाम रखा उसने—'धरती और आसमान।'

नहीं

इधर आचार्य ने कुछ नई पद्धति पर कहानी लिखना आरम्भ किया था, जो सम्भवतः हिन्दी में सर्वथा नया प्रयोग है। इसमें न कथानक है, न चरित्र-चित्रण, न घटनाएं; केवल भाव है। भावों का आवेश नहीं है, विचारों के आधार पर एक स्थापना की गई है। 'नहीं' ऐसी ही कहानी है। यह कहानी 'शरत्' के एक-दो वाक्यों पर आधारित है।

परन्तु, दक्षिणा ने कहा—नहीं !

'नहीं क्यों ? यह भी कोई बात है भला ?' भोलानाथ ने क्रोध से फूत्कार करके नथुने फुलाकर कहा।

'नहीं, ऐसा हो नहीं सकता,' दक्षिणा ने सहज, शान्त और स्थिर स्वर में कहा और फिर वह उठकर धीरे से चल दी। उसकी 'नहीं' में न तो विद्वेष की जलन थी और न क्षमा का दम्भ था। उसके नीचे झुके हुए पलकों के भीतर एक नीरव संयम झांक रहा था। आप ही कहिए भला, एक दिन जिसे उसने अपना अमल, धवल, कोमल, नवीन केले के पत्ते के समान शोभायुक्त अछूता कौमार्य पूर्ण समर्पित किया था, अपने प्राणों के उल्लास को लेकर जिसे पागल की तरह प्यार किया था, जिसकी आंखों में आंखें डालकर जीवन की सार्थकता को समझा था, अब उसीके प्रति निर्मम कल्पना कैसे कर सकती थी ? उसने तो उसी दिन, उसी क्षण सबकी निगाह से ओझल उसके सब दोष चुपके से धो-पोंछ करके साफ कर दिए थे। ऐसा क्रुद्ध शोकाकुल हाहाकार का भाव तो उसके शान्त हृदय में उठा ही नहीं।

भीतर आकर उसने देखा, वृद्धा माता चुपचाप निश्चल बैठी हैं। उसने मां के पास आ स्निग्ध स्वर में कहा—यह क्या मां, अभी तक चूल्हा नहीं जला ? आज रसोई नहीं बनेगी क्या ? बाबूजी के दफ्तर जाने का तो समय भी हो चुका। हरिया गया कहां ?

उसने आकुल नेत्रों से इधर-उधर हरिया की खोज की। और फिर उसकी दृष्टि मां के ऊपर आ टिकी। वे उसी तरह पत्थर की मूर्ति की भांति स्थिर

चुप बैठी थीं। क्षण-भर उसने मां को देखा, फिर स्थिर गति से रसोई की ओर चल दी। परन्तु इसी समय भोला बाबू लम्बे-लम्बे डग भरते भीतर आकर क्रोध और आवेश में कांपते हुए बोले—कहे देता हूं दाखी, सब बातों में तेरी ही नहीं चलेगी। उसे सज़ा देना मेरा काम है, मैं उसे ऐसा मज़ा चखा दूंगा कि जिसका नाम! अरे वाह, मेरी फूल-सी बेटी के साथ यह धोखाबाज़ी! इसीलिए मैंने उसे खर्च देकर विलायत भेजा था? ऐसा पाजी, रास्कल! मैं उसे जेल की हवा न खिलाऊं तो भोलानाथ नहीं। और खर्चे की डिग्री तो हुई रखी है।

भोला बाबू की गले की नसें ऊपर को उभर आईं और चेहरा विकृत हो गया। परन्तु दक्षिणा ने एक शब्द भी मुंह से नहीं कहा। पिता की बात सुनने को एक पग भी रुकी नहीं, वैसे ही शांत भाव से रसोई में चली गई।

वृद्धा ने कहा—हुआ, अभी तुम जाकर स्नान-पूजा से निपट लो; तब तक मैं थोड़ा जलपान बनाए देती हूं। अब इस समय रसोई तो बन नहीं सकती। मैं भी देखूंगी, मेरी बेटी के भाग्य पर पत्थर मारकर कौन कैसे सुख से बैठता है!

पत्नी की बात से भोला बाबू को बहुत सहारा मिला। बेटी ने जो उनके रोष का साथ नहीं दिया, उसकी खीझ पत्नी के इस समर्थन से बुझ गई। उन्होंने थूक निगलकर कहा—देखूंगा, देखूंगा!

और वे आगे की बात कह न सके। पत्नी रसोईघर में चली गई थी। हरिया साग-तरकारी लेकर आ गया था। भोला बाबू और कुछ न कहकर स्नान-गृह में घुस गए।

उसी दिन तीसरे पहर दक्षिणा को अन्ना दीदी ने पकड़ा। 'अन्ना दीदी' दक्षिणा के मुंह से निकला अन्नपूर्णा कोमलतम संस्करण है। अन्नपूर्णा विधवा है, दो बच्चों की मां है। उसके पति बहुत ज़मीन-जायदाद छोड़ गए हैं। वह पढ़ी-लिखी, दुनिया-देखी चालीस साल की आयु की महिला है। उसने पति के साथ विश्व-भ्रमण किया है, स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा सुनी और की है। वह स्त्री-स्वातन्त्र्य की बहुत बड़ी समर्थक है। स्त्रियों की सभा-सोसाइटियों में उसका आना-जाना है। दक्षिणा ने जो उसके नाम का यह कोमलतम संस्करण किया है, सो खूब प्रसिद्ध हो उठा है। अब तो सभी लोग उसे अन्ना दीदी के नाम से ही पुकारते हैं। अन्ना दीदी जैसी पठित और प्रगल्भा रमणी है, वैसी

ही मिष्टभाषिणी और स्थिरमति भी है। लोग उससे विवाद-बहस करने का साहस ही नहीं कर सकते, उसकी बात चुपचाप मान लेते हैं। परन्तु जिस अन्ना को बहुत लोग इतना मानते हैं, आदर करते हैं, वह दक्षिणा का मन से आदर करती है। स्नेह की बात जुदा है और आदर की जुदा। अन्नपूर्णा जैसी महिला कच्ची आयु की मितभाषिणी दक्षिणा का जो इतना आदर करती है, उसका कारण है कि दक्षिणा के गौरव को उसने पहचान लिया है। वह जानती है, वह कुसुम-कोमल बालिका कैसी ज्ञानवती है, स्त्रीत्व के तेज से परिपूर्ण है। उसमें कितना गौरव है।

अन्ना दीदी को दक्षिणा की मां ने बुला भेजा था। अपने मन की व्यथा और आग दोनों ही उसने रो-रोकर अन्ना को बता दी। उसने सुबकियां ले-लेकर कहा—अन्नपूर्णा! भला तुम्हीं कहो, मेरी बेटी के साथ यह अन्याय, क्या मैं चुपचाप सह लूं? तुम तो बहुत पढ़ती हो, सभा-सोसाइटियों में जाती हो, स्त्रियों के अधिकारों और स्वार्थों की बड़ी हिमायती हो, क्या मेरी दक्षिणा उस जानवर का ऐसा अन्याय चुपचाप सहन कर लेगी? अरे, मेरी फूल-सी बेटी पर वह सौत लाया है, सौत!

अन्नपूर्णा को वृद्धा का अभियोग समर्थन-योग्य प्रतीत हुआ। वृद्धा की मांग सर्वथा उचित थी। दक्षिणा की ओर से क्षतिपूर्ति और निर्वाह का मुकदमा अवश्य होना चाहिए। अन्नपूर्णा उससे सहमत हुई। परन्तु जब उसने दक्षिणा की 'नहीं' को 'हां' में परिणत करने का मन ही मन संकल्प कर लिया, उसने वृद्धा से एक शब्द भी नहीं कहा, चुपचाप उठकर दक्षिणा के पास गई।

दक्षिणा पिता की बैठक साफ करने में लगी थी। वह इधर-उधर बिखरी हुई पुस्तकों, कागज़ों और सामग्री को सहेजकर ठिकाने से लगा रही थी। उसकी साड़ी मैली थी, बाल रूखे थे और होंठ सूख रहे थे। पिता को जलपान कराकर जब वह मां को किसी भी तरह खाने के लिए राज़ी न कर सकी तो उसने स्वयं भी निराहार रहने का तय कर लिया।

अन्ना ने आते ही कहा—सुन दक्षिणा, यह तो मैं जानती हूं कि पुरुष के भोग की जो वस्तुएं हैं उनकी जाति की तुम नहीं हो···

'यही तो दीदी, इसीसे तो मैं सोचती हूं, इसमें उनका ऐसा कुछ अपराध भी तो नहीं है, पर बाबूजी यह बात समझते ही नहीं हैं!'

'फिर भी मैं तुझसे यह पूछने आई हूं कि आखिर लोगों की निन्दा-प्रशंसा की अवज्ञा करने का तेरा साहस कहां तक स्तुत्य है !'

'नहीं दीदी, साहस नहीं, तुम तो जानती ही हो कि मैं एक कमज़ोर और असहाय नारी हूं, मैंने कभी भी अपने को शक्तिवान समझकर घमण्ड नहीं किया।'

'यही तो। पर यह तो तुम जानती ही हो कि नारी के लिए पुरुष को पाना कितना कठिन है, इसीसे तो पुरुष को पाकर स्त्रियां सौभाग्यवती कहाती हैं।'

'क्यों नहीं, मैं यह भी जानती हूं कि नारी के लिए पुरुष को पा जाना जितना कठिन है, पुरुष के लिए स्त्री को पा जाना उतना ही आसान है।'

'यहां तक तो कुछ हानि नहीं थी दाखी, पर पुरुषों को पा जाना स्त्री के लिए जितना कठिन है उतना ही उसका गंवा देना भी है।'

'है तो, और पुरुष के लिए स्त्री का पा जाना जितना आसान है, उतना ही खो देना भी है,' दक्षिणा ने एक फीकी मुस्कान होंठों में भरकर कहा।

अन्नपूर्णा हंसी नहीं। उसने कुछ कठोर होकर कहा—यह तो बहुत भारी वैषम्य है। कैसे हम इसे सहन करेंगी ?

'दीदी, सहन न करेंगी तो क्या लड़ेंगी ? जो प्यार और आदर की वस्तु है, उससे लड़ाई कैसी ?'

'प्यार और आदर अपने स्थान पर हैं।'

'हां, प्यार और आदर का स्थान तो उनका सम्पूर्ण ही व्यक्तित्व है, दीदी !'

'पागलपन की बातें हैं, सम्पूर्ण व्यक्तित्व नहीं, केवल कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व।'

'ओह दीदी, तुम भी सौदा करने लगीं ! कहीं प्यार भी हिसाब-किताब से माप-तोलकर होता है ?'

'नहीं होता, पर मैं कहती हूं कि स्त्री-पुरुष के बीच में प्यार ही तो एक चीज़ नहीं है, और भी कुछ है।'

'दीदी, तुम जो कुछ कहना चाहती हो, मैं सब जानती हूं। तुम अधिकार की लड़ाई लड़ने की सलाह दे सकती हो। तुम नर-नारी के समान-अधिकार-तत्त्व की पण्डिता हो, परन्तु···'

'परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। मैं कहती हूं, दाम्पत्य-युद्ध में स्त्री की विजय माननी होगी। पुरुष बहुत मनमानी कर चुके। मेरा यह दृढ़ मत है कि पति-पत्नी के अधिकार समान हैं। तुम स्त्री होकर स्त्रियों की तरफ से इस दावे का

प्रतिकार कर रही हो।'

'मैं प्रतिकार नहीं कर रही दीदी, न मैं यह कहती हूं कि वह सत्य नहीं है। परन्तु तुम नाराज़ न होना, इस सत्य को सत्य-विलासी दल के नर-नारी के मुंह ने भांति-भांति के आन्दोलन करके ऐसा गन्दा कर दिया है कि उसे छूने में भी घिन होती है।'

'घिन कैसे होती है, तनिक सुनूं तो ?'

'तुम्हारा तो सब देखा-सुना है दीदी, सुनोगी क्या ! विलायत के ही लोगों को देखो, वे कैसी आज़ादी से प्रेमाभिनय करके कितने उल्लास से विवाह करते हैं ! उनके बीच तो माता-पिताओं के माध्यम की परम्परा नहीं है। स्वेच्छा है, प्रेम है, ठोक-बजाकर किया हुआ सौदा है, फिर क्या कारण है कि तनिक-तनिक-सी बातों पर, छोटे-छोटे कारणों को लेकर वहां विवाह-विच्छेद हो जाते हैं। वहां की अदालतों के लिए, समाज के लिए, स्त्री के लिए, पुरुष के लिए वह एक मामूली बात हो गई है। कहो तुम दीदी, क्या उन्हें ऐसा करने में तनिक भी चोट नहीं लगती ? कहीं इतना-सा भी दर्द नहीं होता ? मैं कहती हूं, यही यदि उनका सत्य-प्रेम है, यदि यही पति-पत्नी के समान अधिकार का सच्चा रूप है, तो यह छूने क्या, आंखें उठाकर देखने के भी योग्य नहीं। मुझे तो यह आश्चर्य है कि वे लोग अपनी सभ्यता का गर्व किस बूते पर किया करते हैं।'

अन्ना दीदी की आंखों में आंसू भर गए। यह उसकी हार के आंसू थे; उसे जवाब नहीं सूझ रहा था। दक्षिणा सूखे मुंह और सूखे होंठों से अन्ना दीदी की ओर देखती रही, उस दृष्टि को सहन न कर उसने दक्षिणा को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया। वह बहुत देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती रही। बड़ी देर बाद उसने कहा—कैसे सहेगी दीदी, मेरे पास शब्द नहीं, कैसे तुम्हें सान्त्वना दूं।

दक्षिणा बहुत देर चुपचाप अन्नपूर्णा की गोद में लेटी रही, फिर उसने सिर उठाकर कहा—दीदी, जल्दी-जल्दी आया करो। दो मिनट ठहरो, मैं चाय बनाती हूं। मां को कुछ खिला-पिला दो, कल से उन्होंने एक बूंद पानी तक नहीं पिया है।

'अरे, इसीसे तेरा मुंह···ठहर मैं रसोई में जाकर चाय और जलपान बना लाती हूं।'

'तुम यहां ठहरो दीदी, मैं जाती हूं।'

परन्तु दोनों साथ ही साथ रसोई में जाकर चाय का सरंजाम जुटाने में व्यस्त हो गईं।

पन्द्रह बरस बाद। पुरानी सारी दुनिया बदल चुकी थी। जीवन-उषा की रक्ताभ पीत प्रभा ढलती दुपहरी में बदल चुकी थी। पुरुष की लोलुप दृष्टि जिसलिए नारी को परेशान करती है, लज्जा को पीड़ित करती है, आज उससे तो दक्षिणा को मुक्ति मिल चुकी थी। इतने दिन बाद एकाएक पति ले जाने के लिए आए थे। उन्होंने एक अनुतापपूर्ण पत्र लिखकर दक्षिणा को अपने असहाय जीवन से सूचित किया था और यह भी लिखा था कि उनके जीवन में अब केवल दक्षिणा की दक्षिणा शेष है।

दक्षिणा के हृदय में एकान्त-मिलन की ज़रा भी व्यग्रता न थी। फिर भी ढलते हुए यौवन और तब से लेकर अब तक के दैहिक क्रम-विकास पर आज अपरिचित रूप ही से उसका ध्यान आकर्षित हो रहा था। उन दिनों की वह चाह अब न थी। आंखें चार होते ही आंखों के कोनों से निकलती आग की चिंगारियां बुझ-बुझाकर राख हो गई थीं, वह राख भी आंसुओं से घुलकर कहां की कहां पहुंची थी। पन्द्रह वर्ष की मूक वेदना, आत्म-संयम और चिरदमन की जो रेखाएं उसके मुख पर अंकित हो गई थीं, वे तो दूर से पढ़ी जा सकती थीं। सो अब अन्ना दीदी ने लपकते हुए आकर उससे कहा—यह क्या ? सन्ध्या होने को आई, तूने न कपड़े बदले, न बाल बनाए। उठ, मैं चोटी गूंथ दूं। अम्मा होती तो क्या इसी भांति···

अन्ना दीदी की आंखें भर आईं। परन्तु दक्षिणा ने सूखी आंखों से उसकी ओर देखकर कहा—नित्य ही तो ऐसी ही रहती हूं दीदी, इस बेला मुझे बाल संवारने की आदत नहीं।

'न सही, पर आज तो !'

'आज क्यों ?'

'तू ऐसी बच्ची है, फिज़ूल बक-बक न कर ! उठ, चोटी गूंथ दूं।'

'चोटी गूंथना है तो गूंथ दो दीदी, परन्तु इससे लाभ ?'

'लाभ ? इतने दिन बाद वे आए हैं, सो ऐसे वेश में मिलेगी तू !'

'पर मुंह तो बदल नहीं सकूंगी।'

'न सही, पर कपड़ा-लत्ता...'

'व्यर्थ है दीदी, जिस रूप का प्रयोजन और आकर्षण दोनों ही खत्म हो चुके, अब उसे कृत्रिम रूप से सजाकर उन्हें यदि धोखा दूं तो क्या यह अच्छी बात होगी ?'

'धोखा क्या ?'

'कि नहीं, अभी खत्म नहीं हुआ, यही दिखाकर।'

'ओह, किन्तु...'

'किन्तु क्या दीदी, कहो तो—स्त्री की देह ऐसी तुच्छ चीज़ है कि उसके रूप-सौष्ठव को छोड़कर उसका और कोई उपयोग ही नहीं ?'

अन्ना दीदी रो दी। अन्ना नहीं, उसका चिरवैधव्य रो उठा। उन्होंने कहा—दाखी, इन भाग्यहीन पुरुषों की अभिलाषाओं की बात न पूछ। तुझे दुनिया की तरफ नहीं देखना हो तो मत देख; परन्तु आदमी की ओर तो देख, उसके दुर्भाग्यपूर्ण, अपूर्ण और असंयत व्यक्तित्व को तो देख।

'सो तो मैंने अपने जीवन में देखा ही है, दीदी।'

'तो देख, भाग्य-दोष से हो या स्त्री-जाति में जन्म लेने के कारण, हमें अपना जीवन उत्सर्ग के मार्ग पर तो ले जाना ही है। यह शृंगार जो हमें करना पड़ता है सो क्या अपने लिए ? इसे क्या हम अपनी आंखों देखती हैं ?'

'नहीं, तुम्हारी बात मानती हूं, हम अपने इस शृंगार को अपनी आंखों से नहीं देखतीं, पुरुष की आंखों से देखती हैं; परन्तु दीदी, तुम्हारा जो यह उत्सर्ग है सो सत्य नहीं। मैंने इसे कभी नहीं माना है, अब भी नहीं मानूंगी।'

'क्यों भला ? क्या तू समझती है, हम लोगों में उत्सर्ग होने का बल है ही नहीं ?'

'क्यो नहीं, बहुत है।'

'तो फिर ?'

'फिर ? उत्सर्ग का बल होने ही से क्या होता है दीदी, प्रवृत्ति होनी चाहिए, अन्तःप्रेरणा होनी चाहिए। निराशा और आंसुओं से भीगकर भी कहीं उत्सर्ग होता है ?'

'तू समझती है कि स्त्रियों में उत्सर्ग की प्रवृत्ति ही नहीं है ?'

'प्रवृत्ति है, पर यह प्रवृत्ति उनके भीतर जो नारी की जागरित सत्ता है न, उसकी पूर्णता से नहीं, शून्यता से उत्पन्न होती है। उससे न तो नारी-जाति का कभी भला हुआ, न वे पुरुष का ही कुछ भला कर सकीं!'

'दाखी, मैं तो समझती रही हूं कि त्याग, उत्सर्ग और प्यार सब एक ही वस्तु हैं और उत्सर्ग स्त्री का स्वभाव है।'

'नहीं दीदी, स्वभाव नहीं, अभाव है। भाग्य ने तुम्हें चिरवैधव्य दिया दीदी, तुम्हें त्याग और विसर्जन का जीवन अपनाना ही पड़ा। अब तुम्हीं कहो, इसमें तुम्हें कितना तप करना पड़ा? कितनी निष्ठा खर्च करनी पड़ी? अब तुम मुझसे क्या कहना चाहोगी कि जीवन का श्रेय वैधव्य है, जहां तप है, त्याग है, उत्सर्ग है?'

'ओह? नहीं, नहीं, मैं यह कभी न कहूंगी। मैं तो कहूंगी, वैधव्य की अपेक्षा तो स्त्री के लिए एक हिंस्र पशु की पत्नी बनने में कहीं नारीत्व की सार्थकता है।'

'तो दीदी, तुम्हारी यह बात जितनी ही सत्य है, उतनी ही भयानक भी है। यह तुम्हारे उस समान अधिकारों की परम्परा से बिल्कुल ही पृथक् सत्य है। और मैं उसे ठीक सत्य स्वीकार करती हूं।'

अन्ना दीदी ने बहुत आंसू बहाए। स्नेह से दक्षिणा को अंक में भर लिया। कहा—दाखी, तेरा सत्य मैंने इतने निकट रहकर भी कभी नहीं समझा। पर आज समझा। तेरे पति ने जो तेरा तिरस्कार किया, तुझे धोखा दिया, उसकी जो तूने कभी किसीसे शिकायत नहीं की और संसार-भर के युग के मानव-स्वीकृत इस सम्बन्ध के प्रति जो तूने इतनी ज़बर्दस्त अवज्ञा की, उसका भेद भी जाना, परन्तु दाखी, अविचार से केवल एक ही पक्ष क्षतिग्रस्त नहीं होता, दोनों ही पक्षों को आघात लगता है। उस दिन जब तुझे दुलहिन के रूप में तेरे पति ने पाया था, तब उसने अपने सौभाग्य की ओर देखा ही नहीं था। आज उसे यह सूझ आई है, सो तू शृंगार करके, जो खत्म हो चुका, 'अभी है, वह अभी है' यह प्रमाणित करके उसे धोखा देना नहीं चाहती; सत्य रूप में जो है, उसके सामने जाना चाहती है, सो ठीक है।

'यही बात है, दीदी। जो क्षणभंगुर है, उसकी ओर पुरुषों को देखने का चस्का लग गया है। वे इस सिल की अपेक्षा उस फूल को ज्यादा पसन्द करते

हैं। सत्य क्या है, इसकी जांच का मापदण्ड तो उनके पास है ही नहीं। परन्तु हम स्त्रियां तो जानती हैं कि जीवन चाहे जितना भी क्षणभंगुर हो उसका सब कारबार स्थायित्व को लिए हुए है। और इसीसे हमारे लिए उस फूल की अपेक्षा यह सिल-लोढ़ा ही अधिक सत्य है। इसके जल्दी सूखकर झड़ जाने का भय नहीं है।'

'सो आज उस सिल-लोढ़ा ही की पूजा का पवित्र दिन है?'

'कौन जाने, तुम तो जानती ही हो दीदी, पुरुषों को इसकी आदत नहीं।'

'तेरी जैसी स्त्रियां पुरुषों को ऐसी आदत डाल देती हैं जो युग-युग तक उनका भला करती हैं। तूने पति को अब तक दिया ही है, उससे कभी कुछ लिया नहीं। पिता के इतना कहने पर भी डिग्री के रुपये नहीं लिए।'

'तुमसे तो कुछ छिपा रहा नहीं, दीदी। मां और बाबूजी के न रहने पर तुम्हीं एक रहीं जिसका मुझे सहारा रहा।'

'पर मुझसे भी तो तूने कभी एक धेला नहीं लिया। तूने कुली-मज़दूरों के कपड़े सी-सीकर गुज़र की, पर जिस पुरुष ने पति होकर त्याग दिया, उसका अन्न मुंह में देकर, उसीके दिए वस्त्र पहनकर आबरू बचाना स्वीकार नहीं किया।'

दक्षिणा इस बार रो दी। उसने कहा—दीदी, इतनी ओछी बनने से पहले तो मैं कुएं में कूदकर मर जाना अच्छा समझती।

◇ ◇ ◇

आचार्य चतुरसेन का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य हमारे यहां से एक पुस्तकमाला के रूप में प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत कहानी-संग्रह उसका तीसरा खण्ड है। आशा है, इस संग्रह की प्रत्येक कहानी आपको रुचिकर होगी। राजपाल एण्ड सन्ज़ का सदैव यह प्रयास रहा है कि उत्कृष्ट प्रकाशनों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया जाए; और यह सब आपके हार्दिक सहयोग पर ही निर्भर है। यदि आप कथा-साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हैं तो हमारा कथा-साहित्य मंगवाकर पढ़िए अथवा पुस्तकों का चुनाव करते समय हमें लिखिए। हम आपकी हर सम्भव सहायता करने का प्रयास करेंगे।

आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेन (जन्म २६ अगस्त, १८९१ ई०) चालीस वर्षों तक निरंतर साहित्य-साधना करते रहे। फलतः गुण और मात्रा दोनों दृष्टियों से हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में उनकी देन महत्त्वपूर्ण है।

वे बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे। साढ़े चार सौ कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने बत्तीस उपन्यास तथा अनेक नाटक लिखे। साथ ही गद्यकाव्य, इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, स्वास्थ्य-चिकित्सा आदि विभिन्न विषयों पर भी उन्होंने लेखनी चलाई। उनकी प्रकाशित रचनाओं की संख्या १८६ है। इसके अतिरिक्त वे ५२ रचनाएं अप्रकाशित छोड़ गए हैं। उनका कथा-साहित्य हिन्दी के लिए गौरव है।

आचार्यजी की गणना आधुनिक युग के श्रेष्ठ लेखकों में होती है। २ फरवरी, १९६० को सत्तर वर्ष की अवस्था में आपका देहान्त हो गया। हिन्दी-साहित्य आपका चिरऋणी रहेगा।

○○○